राजभाषा हिन्दी

स्वरूप और नीति

(Official Language Hindi: Nature and Policy)

हिमांशी सक्सेना

राजभाषा हिन्दी : स्वरूप एवं नीति

राजभाषा हिन्दी : स्वरूप एवं नीति

(Official Language Hindi: Nature and Policy)

हिमांशी सक्सेना

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5596-0

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिंदी भाषा–'भारत' देश की भौगोलिक सीमाओं तथा उसके लिए प्रयुक्त होने वाले नामों (विशेषणों) में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। ब्रह्मवर्त, भारतखण्ड, जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा भारत इसके पुरातन नाम हैं। हिन्द तथा हिन्दुस्तान शब्द भी इसकी संज्ञा के रूप में प्राचीनकाल से ही व्यवहृत होते रहे हैं। ये दोनों शब्द वस्तुतः ईरानी सम्पर्क से व्युत्पन्न हुए हैं। इनमें भी हिन्दी शब्द को विद्वानों ने हिन्दुस्तान की अपेक्षा पुरातन माना है। पारसियों की प्राचीनतम धार्मिक पुस्तक 'दसातीर' में 'हिन्द' शब्द का उल्लेख मिलता है। पं. रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार ईरान के लोग, महर्षि वेदव्यास के समय में ही इस देश को हिन्द कहने लगे थे। ईरान के शाह गस्तस्य के काल में महर्षि वेदव्यास के ईरान जाने का उल्लेख मिलता है।

'हिन्दी' शब्द के प्रचलन के प्रसंग पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। मुसलमानों के आगमन तक भारत में भाषा के लिए 'भाषा' या 'भाखा' शब्द प्रचलित थे। ये शब्द 1800 ई. के बाद तक प्रचलन में रहे। जहाँ संस्कृत ग्रन्थों की टीका को 'भाषा-टीका' कहा गया है, वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने हेतु नियुक्त होने वाले लल्लू लाल एवं सदल मिश्र को 'भाषा मुंशी' या 'भाखा मुंशी' कहा गया है। मुसलमानों के आगमन (13वीं-14वीं शताब्दी ई.) के साथ मध्यप्रदेश की जनसामान्य की बोली (भाषा) के लिए हिन्दी, हिन्दवी,

हिन्दुई प्रभृति नाम प्रचलित हुए।

वर्तमान में सिनेमा,साहित्य,मीडिया,इंटरनेट,मोबाइल,बाजार,प्रचार आदि के माध्यम से नई हिंदी का निर्माण हो रहा है। इस नए रूप का स्वागत होना चाहिए और इसे अपनाने में किसी तरह की रूढ़िवादिता या परम्परा को आड़े नहीं आने देना चाहिए। किसी भी भाषा या धर्म के प्रचार-प्रसार में संचार माध्यमों का विशिष्ट योगदान रहा है। विकास हमेशा पुरातन के मोह त्याग की मांग करती है। जो भाषा जितनी लचीली और उदार होगी वो नए परिवर्तन और चुनौतियों के साथ भी खुद को खड़ा और टिकाए रखेगी, उसकी जीवनशक्ति उतनी ही अधिक होगी बाजारीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद संस्कृति को हिंदी का शत्रु नहीं मित्र समझना चाहिए। हिंदी का वर्तमान और भविष्य निसंदेह बहुत उज्ज्वल नहीं है पर अन्धकार से भरा भी नहीं है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**हिन्दी : उत्पत्ति एवं विकास**	**1**
	हिन्दी का निर्माण-काल	2
	हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति	5
	विशिष्ट अर्थ	9
	आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)	11
	भारत की भाषा समस्या और हिन्दी	16
	मानकता की आवश्यकता	25
	'वर्तनी' शब्द का इतिहास	26
	मानकीकरण संस्थाएं एवं प्रयास	27
	हिन्दी भाषा का विकास	28
	धर्म-समाज सुधारकों का योगदान	44
	कांग्रेस के नेताओं का योगदान	45
2.	**राष्ट्रभाषा और हिन्दी**	**53**
	बोली, विभाषा, भाषा और राजभाषा	55
	राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा	56
	राजभाषा हिन्दी की विकास-यात्रा	57
	स्वतंत्रता के बाद	57

हिंदी भाषा और उसकी अस्मिता 66
हिन्दी शिक्षण योजना 76
यांत्रिक साधनों की व्यवस्था 76
3. राजभाषा हिन्दी का वैश्विक प्रसार 86
दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी 99
हिन्दी शिक्षा संघ 99
अमेरिका में हिन्दी 103
अमरीका के भारतीय और हिन्दी 104
सूरीनाम में हिन्दी 108
नेपाल में हिन्दी 113
फिजी में हिन्दी 114
गुयाना में हिन्दी 116
4. हिन्दी साहित्य का स्वरूप 118
इतिहास 118
आदिकाल 119
रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग 130
अद्यतन काल 130
काव्य साहित्य 131
प्रयोगवादी युग की कविता 134
हिंदी-काव्य में राष्ट्रीय विचारधारा 135
5. राजभाषा हिन्दी का मानक स्वरूप 137
मानक भाषा का अभिप्राय 138
मानक हिंदी की विशेषताएँ 139
भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया 147
6. व्यावहारिक बोलचाल के रूप में राजभाषा हिन्दी का स्वरूप 153
पश्चिमी हिन्दी 154
पूर्वी हिन्दी 154
बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी 155
प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण 156
खड़ी बोली 157

बुंदेली का इतिहास 166
7. भारत की राजभाषा नीति 193
शब्दावली निर्माण 194
राजभाषा अधिनियम 207
आचरण पक्ष 213

1

हिन्दी : उत्पत्ति एवं विकास

संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। ऋग्वेद से पहले भी सम्भव है कोई भाषा विद्यमान रही हो परन्तु आज तक उसका कोई लिखित रूप नहीं प्राप्त हो पाया। इससे यह अनुमान होता है कि सम्भवत: आर्यों की सबसे प्राचीन भाषा ऋग्वेद की ही भाषा, वैदिक संस्कृत ही थी। विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद की भी एक काल अथवा एक स्थान पर रचना नहीं हुई। इसके कुछ मन्त्रों की रचना कन्धार में, कुछ की सिन्धु तट पर, कुछ की विपाशा-शतद्रु के संभेद (हरि के पत्तन) पर और कुछ मन्त्रों की यमुना गंगा के तट पर हुई। इस अनुमान का आधार यह है कि इन मन्त्रों में कहीं कन्धार के राजा दिवोदास का वर्णन है, तो कहीं सिन्धु नरेश सुदास का। इन दोनों राजाओं के शासन काल के बीच शताब्दियों का अन्तर है। इससे यह अनुमान होता है कि ऋग्वेद की रचना सैकड़ों वर्षों में जाकर पूर्ण हुई और बाद में इसे संहित-(संग्रह)-बद्ध किया गया।

ऋग्वेद के उपरान्त ब्राह्मण ग्रन्थों तथा सूत्र ग्रन्थों का सृजन हुआ और इनकी भाषा ऋग्वेद की भाषा से कई अंशों में भिन्न लौकिक या क्लासिकल संस्कृत है। सूत्र ग्रन्थों के रचना काल में भाषा का साहित्यिक रूप व्याकरण के नियमों में आबद्ध हो गया था। तब यह भाषा संस्कृत कहलायी। तब छन्दस् वेद तथा लोक-भाषा (लौकिक) में पर्याप्त अन्तर स्पष्ट रूप में प्रकट हुआ।

व्याकरण के विधि निषेध नियमों से संस्कारित भाषा शीघ्र ही सभ्य समाज की श्रेष्ठ भाषा हो गई तथा यही क्रम कई शताब्दियों तक जारी रहा। यद्यपि

महात्मा बुद्ध के समय संस्कृत की गति कुछ शिथिल पड़ गई, परन्तु गुप्तकाल में उसका विकास पुनः तीव्र वेग से हुआ। दीर्घकाल तक संस्कृत ही राष्ट्रीय भाषा के रूप में सम्मानित रही।

जनसाधारण अल्प शिक्षित वर्ग के लिए संस्कृत के नियमों का अनुसरण कठिन था, अतः वे लोकभाषा का ही प्रयोग करते थे। इसीलिए महावीर स्वामी ने जैन मत के तथा महात्मा बुद्ध ने बौद्ध मत के प्रसार के लिए लोकभाषा को ही अपनी वाणी का माध्यम बनाया। इससे लोकभाषा को ऐसी प्रतिष्ठा का पद प्राप्त हुआ, जो उससे पूर्व कभी प्राप्त नहीं हुआ था।

फिर भी संस्कृत भाषा का महत्त्व कभी कम नहीं हुआ। भास, कालिदास आदि के नाटकों में सुशिक्षित व्यक्ति तो संस्कृत बोलते हैं, परन्तु अशिक्षित पात्र -विट-चेट विदूषक तथा दास-दासियाँ आदि प्राकृत में बात करते हैं। परन्तु ये सब जिन प्रश्नों के उत्तर प्राकृत में देते हुए दिखाई गए हैं, उन प्रश्नों को संस्कृत में ही पूछा गया है। इससे स्पष्ट होता है। कि जनसाधारण भी संस्कृत को अच्छी तरह समझ लेते थे, भले ही बोलने में उन्हें कठिनाई प्रतीत होती हो। पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने संस्कृत भाषा में ही राजकुमारों को शिक्षा प्रदान की थी। डॉ. आर. के. मुकर्जी ने कहा है, ब्राह्मण काल एवं उसके पश्चात् भी निःसन्देह संस्कृत सामान्य जनता के धार्मिक कृत्यों पारिवारिक संस्कारों तथा शिक्षा एवं विज्ञान की भाषा थी।" सरदार के.एम. पणिक्कर ने कहा है संस्कृत विश्व की संस्कृति और सभ्यता की भाषा है, जो भारत की सीमाओं के पार दूर-दूर तक फैली हुई थी।"

हिन्दी का निर्माण-काल

अपभ्रंश की समाप्ति और आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्मकाल के समय को संक्रांतिकाल कहा जा सकता है। हिन्दी का स्वरूप शौरसैनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से विकसित हुआ है। 1000 ई. के आस-पास इसकी स्वतंत्र सत्ता का परिचय मिलने लगा था, जब अपभ्रंश भाषाएँ साहित्यिक संदर्भों में प्रयोग में आ रही थीं। यही भाषाएँ बाद में विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में अभिहित हुई। अपभ्रंश का जो भी कथ्य रुप था-वही आधुनिक बोलियों में विकसित हुआ। अपभ्रंश के संबंध में 'देशी' शब्द की भी बहुधा चर्चा की जाती है। वास्तव में 'देशी' से देशी शब्द एवं देशी भाषा दोनों का बोध होता है। प्रश्न यह कि देशीय शब्द किस भाषा के थे ? भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में उन शब्दों को 'देशी' कहा है 'जो संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव

रूपों से भिन्न हैं।' ये 'देशी' शब्द जनभाषा के प्रचलित शब्द थे, जो स्वभावतया अप्रभंश में भी चले आए थे। जनभाषा व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं करती, परंतु व्याकरण को जनभाषा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना पड़ता है, प्राकृत-व्याकरणों ने संस्कृत के ढाँचे पर व्याकरण लिखे और संस्कृत को ही प्राकृत आदि की प्रकृति माना। अतः जो शब्द उनके नियमों की पकड़ में न आ सके, उनको देशी संज्ञा दी गई। प्राचीन काल से बोलचाल की भाषा को देशी भाषा अथवा 'भाषा' कहा जाता रहा। पाणिनि के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। अतः पाणिनी ने इसको 'भाषा' कहा है। पतंजलि के समय तक संस्कृत केवल शिष्ट समाज के वयवहार की भाषा रह गई थी और प्राकृत ने बोलचाल की भाषा का स्थान ले लिया था।

भारत एक विशाल देश है। इसमें अनेक जाति, धर्मावलंबी और अनेक भाषा-भाषी निवास करते हैं। हमारे गणतंत्रीय संविधान में देश को धर्म-निरपेक्ष घोषित किया गया है। इसीलिए विभिन्न धर्मावलंबी अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार धर्माचरण करने के लिए स्वतंत्र हैं।

ऐसी स्थिति में धार्मिक आधार पर देश में एकता स्थापित नहीं हो सकती। विभिन्न जातियों, धर्मावलंबियों और भाषा-भाषियों के बीच एकता स्थापित करने का एक सबल साधन भाषा ही है। भाषा में एकता स्थापित करने की अदभूत शक्ति होती है। प्राचीन काल में विभिन्न मत-मतांतरों के माननेवाले लोग थे, परंतु संस्कृत ने उन सबको एकता के सूत्र में जकड़ रखा था। उस समय संपूर्ण भारत में संस्कृत बोली, लिखी और समझी जाती थी।

स्वराज-प्राप्ति के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं ने इस सत्य की अवहेलना नहीं की थी। उन्होंने सर्वोसम्मति से हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित किया था और यह इसलिए कि भारत के अधिक-से-अधिक लोगों की भाषा हिंदी थी तथा उसमें देश का संपूर्ण शासकीय कार्य और प्रचार-प्रसार आसानी से हो सकता था।

संविधान सभा में हिंदी भाषा-भाषी भी थे और अहिंदी भाषा-भाषी भी। उसमें अहिंदी भाषा-भाषियों का बहुमत था। उन्हीं के आग्रह से यह भी निर्णय किया गया था कि पंद्रह वर्षों में हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी, परंतु आज तक यह निर्णय खटाई में पड़ा हुआ है।

सन् 1963 और 1168 में भाषा संबंधी नीति में जो परिवर्तन किए गए हैं, उनके अनुसार हिंदी के साथ अंग्रेजी भी चल सकती है, पर वास्तविकता यह है

कि अंग्रेजी के साथ हिंदी घसीटी जा रही है। ऐसी है राष्ट्रभाषा के प्रति हमारी आदर- भावना।

देश में अनेक समृद्ध भाषाओं के होते हुए हिंदी को ही राष्ट्रभाषा के लिए क्यों चुना गया-यह प्रश्न किया जा सकता है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा के निम्नलिखित लक्षण निश्चित किए-

1. वह भाषा सरकारी नौकरी के लिए आसान होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारत का धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक काम-काज निर्विध्न तथा सुचारु रूप से होना चाहिए।
3. उस भाषा को भारत के ज्यादातर लोग बोलते हों।
4. वह भाषा जन सामान्य के लिए सहज, सरल व बोधगम्य होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक अथवा अस्थायी स्थिति पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

भारत की सभी भाषाओं का जन्म या तो संस्कृत से हुआ है या उन्होंने अपने को समृद्ध बनाने के लिए संस्कृत शब्दावली को अधिकाधिक स्थान दिया है। दक्षिण की भाषाएँ- तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम आदि आर्येतर कही जाती हैं, परंतु इन सब पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में संस्कृत का प्रभाव पड़ा है।

इनकी अपनी-अपनी स्वतंत्र लिपियाँ हैं। अतः इनमें से कोई भाषा राष्ट्रभाषा होने की पात्रता नहीं रखती। बँगला, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी आदि भाषाओं के क्षेत्र अत्यंत सीमित हैं। इसलिए वे भी राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण नहीं कर सकतीं। अंग्रेजी विदेशी भाषा है। उसे हमारे देश के 3-4 प्रतिशत लोग ही जानते हैं, डसलिए उसे राष्ट्रभाषा बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता हाँ, दुर्भाग्यवश कुछ लोगों का उसके प्रति इतना गहरा लगाव है कि वे उससे चिपके हुए हैं और आए दिन उसकी वकालत किया करते हैं।

हमारे देश पर मुसलमानों ने लंबे समय तक शासन किया। उन्होंने अपनी भाषा अरबी, फारसी को शासकीय कार्यों तक ही सीमित रखा। उनके बाद अंग्रेज आए। उनकी नीति साम्राज्यवादी थी। उन्होंने अंग्रेजी भाषा को कचहरियों तक ही सीमित नहीं रखा, हमारी संस्कृति और सभ्यता का उन्मूलन कर उसके स्थान पर अपनी संस्कृति और सभ्यता का प्रचार-प्रसार करने के लिए उसे सार्वजनिक शिक्षा का माध्यम भी बना दिया। इससे क्षेत्रीय भाषाओं का विकास रुक गया और

कोई भाषा अखिल भारतीय स्वरूप धारण नहीं कर सकी। राष्ट्र के जीवन में राष्ट्रभाषा का विशेष महत्त्व होता है। सीमांत गांधी के शब्दों में-

"जब राष्ट्र की अपनी भाषा समाप्त हो जाती है तब वह राष्ट्र ही समाप्त हो जाता है। प्रत्येक जाति अपनी भाषा से ही पहचानी जाती है। भाषा की उन्नति ही उस जाति की उन्नति है। जो जाति अपनी भाषा को भुला देती है, वह संसार से मिट जाती है।"

इसलिए हमें अपनी मातृभाषा का गौरव बढ़ाने के साथ-साथ अपनी राष्ट्रभाषा का गौरव भी बढ़ाना चाहिए। सामाजिक और राजनीतिक एकता को सुदृढ़ रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना परम आवश्यक है और हमारे देश में वह राष्ट्रभाषा केवल हिंदी ही हो सकती है।

हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति

हिंदी भाषा–'भारत' देश की भौगोलिक सीमाओं तथा उसके लिए प्रयुक्त होने वाले नामों (विशेषणों) में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। ब्रह्मवर्त, भारतखण्ड, जम्बूद्वीप, आर्यावर्त, उत्तरापथ, दक्षिणापथ तथा भारत इसके पुरातन नाम हैं। हिन्द तथा हिन्दुस्तान शब्द भी इसकी संज्ञा के रूप में प्राचीनकाल से ही व्यावहृत होते रहे हैं। ये दोनों शब्द वस्तुतः ईरानी सम्पर्क से व्युत्पन्न हुए हैं। इनमें भी हिन्दी शब्द को विद्वानों ने हिन्दुस्तान की अपेक्षा पुरातन माना है। पारसियों की प्राचीनतम धार्मिक पुस्तक 'दसातीर' में 'हिन्द' शब्द का उल्लेख मिलता है। पं. रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार ईरान के लोग, महर्षि वेदव्यास के समय में ही इस देश को हिन्द कहने लगे थे। ईरान के शाह गस्तस्य के काल में महर्षि वेदव्यास के ईरान जाने का उल्लेख मिलता है। हिन्दी भाषा कहा जाता हैं।

ऋग्वेद में 'सिन्ध' और 'सप्त सिन्धवः' शब्द नदी और सात नदियों के निमित्त कई बार तथा विशिष्ट प्रदेश के अर्थ में एक बार प्रयुक्त हुआ है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्द' शब्द का सिन्धु नदी तथा उसके आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। एक प्रदेश विशेष की संज्ञा के रूप में इस शब्द का प्रयोग महाभारत में भी मिलता है। सम्भवतः इन शब्दों ने याजकों के साथ ईरान की यात्रा की और वहीं हैन्दु, हिन्दू तथा हफ्त हिन्दवः या हफ्त हिन्दवो (अवेस्ता में) रूप में प्रचलित हुए। (उल्लेखनीय है कि भारतीय आर्यभाषा की 'स' ध्वनि ईरानी में 'ह' ध्वनि के रूप में उच्चारित होती है। (जैसे-सप्त-हफ्त, अहुर-असुर) प्राचीन पह्लवी में हिन्दू, हिन्दुक और हिन्दश

शब्द मिलते हैं। मध्यकालीन ईरानी में प्रचलित विशेष प्रत्यय 'ईक' जोड़कर (हिन्दईक) हिन्दीक फिर हिन्दीग शब्द बना।।

'हिन्दी' शब्द का मूल अर्थ

'हिन्दी' शब्द का मूल अर्थ है-'हिन्दी का अर्थात् भारतीय।' व्याकरण के अनुसार इसे योगरूढ़ शब्द कहा जा सकता है। इस प्रकार के नामकरण दूसरे बहुत से देशों के लिए। प्रचलित हैं, यथा-जापानी, चीनी, नेपाली, भूटानी, रूसी, अमरीकी आदि। धीरे-धीरे 'हिन्द शब्द का प्रयोग देशबोधक से निवासियों का बोधक बन गया। आरम्भ में यहाँ से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की पहचान हेतु भी यह शब्द प्रयुक्त होता था। उदाहरण के लिए अरबी तथा फारसी भाषा में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार की तलवार (जो भारतीय इस्पात की बनी होती थी) के लिए होता था।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग

'हिन्दी' शब्द के प्रचलन के प्रसंग पर विचार करते समय यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। मुसलमानों के आगमन तक भारत में भाषा के लिए 'भाषा' या 'भारवा' शब्द प्रचलित थे। ये शब्द 1800 ई. के बाद तक प्रचलन में रहे। जहाँ संस्कृत ग्रन्थों की टीका को 'भाषा-टीका' कहा गया है, वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने हेतु नियुक्त होने वाले लल्लू लाल एवं सदल मिश्र को 'भाषा मुंशी' या 'भारवा मुंशी' कहा गया है। मुसलमानों के आगमन (13वीं-14वीं शताब्दी ई.) के साथ मध्यप्रदेश की जनसामान्य की बोली (भाषा) के लिए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई प्रभृति नाम प्रचलित हुए।

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग

भाषा के सन्दर्भ में हिन्दी शब्द का आरम्भिक प्रयोग पंडित विष्णु शर्मा की पुस्तक 'पंचतंत्र' की भाषा के लिए हुआ है। यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। पह्लवी (ईरानी) नरेश नौशेरवाँ (531-579 ई.) के दरबारी कवि वरजवैह (बर्जूयह/बजरोया) ने भारत आकर यह अनुवाद पह्लवी (प्राचीन ईरानी) में किया। नौशेरवाँ के विद्वान् मंत्री बर्जुरमहर ने (वस्तुतः जिनके द्वारा यह अनुवाद करवाया गया था) ने उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा है, 'यह अनुवाद जबाने

हिन्दी से किया गया है।'' ईरानी अनुवाद की लोकप्रियता के उपरान्त इस ग्रन्थ का अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ और सभी में इसकी भाषा को 'जबाने-हिन्दी' ही कहा गया। 7वीं सदी से लेकर 10वीं सदी तक यह शब्द संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा की संज्ञा के रूप में निरन्तर प्रयुक्त होता रहा। तदुपरान्त मुसलमान रचनाकारों ने 'जबाने हिन्दी' के स्थान पर हिन्दी और हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ किया।

हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति

अनेक विद्वानों ने हिन्दुस्तानी शब्द की व्युत्पत्ति, अंग्रेजी के प्रभाव से मानी है, किन्तु कालान्तर में सम्पन्न होने वाले शोध-कार्यों से यह स्पष्ट हो चुका है कि यह शब्द उनके यहाँ आगमन से पूर्व ही प्रचलित हो गया था। शाहजहाँ (1627-1657 ई.) के समय की पुस्तकों (तारीख-ए-फरिश्ता तथा बादशाहनामा) में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे भी पूर्व स्वामी प्राणनाथ (1581-1694 ई.) ने अपनी पुस्तक 'कुलजम स्वरूप' में 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग भाषा के निमित्त किया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस भाषा का व्यापक प्रचलन यूरोपीय लोगों के सम्पर्क से ही शुरू हुआ। उन्होंने हिन्दी, हिन्दवी या अन्य नामों की अपेक्षा 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग अधिक किया है। डच पादरी जे. केटलार (1715 ई.) ने अपने देशवासियों की सुविधा के लिए हिन्दी व्याकरण लिखा और उस हिन्दुस्तानी ग्रामर' कहा। कालान्तर में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद वहां के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने भारत की प्रमुख भाषा हिन्दुस्तानी कहा और इससे सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का लेखन किया।

उर्दू का प्रयोग

18वीं शताब्दी में जब उर्दू का प्रयोग एक भाषा विशेष के लिए रूढ़ हो गया तब उर्दू और हिन्दी के मिले-जुले रूप को हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा। किन्तु 19वीं सदी के अन्तिम चरण में हिन्दू-उर्दू को लेकर मतभेद आरम्भ हो गया। तदुपरान्त हिन्दी समर्थकों ने केवल हिन्दी शब्द के प्रयोग पर बल दिया। 1893 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा तथा 1910 ई. में हिन्दी साहित्य की स्थापना इसी से की गई। किन्तु गाँधीजी हिन्दुस्तानी के प्रबल पक्षधर थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे भाषा-विवाद को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक समझते थे। इसके लिखित रूप के लिए वे देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों का प्रचलन चाहते थे। गिलक्राइस्ट के

समय तक हिन्दुस्तानी शब्द प्रचलन में रहा किन्तु उनके बाद अंग्रेज विद्वानों ने भी धीरे-धीरे हिन्दी या हिन्दवी शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया। 1812 ई. में कैप्टर टेलर ने फोर्ट विलियम कॉलेज का वार्षिक-विवरण प्रस्तुत करते समय हिन्दी शब्द का आधुनिक अर्थ में सम्भवत: प्रथम प्रयोग किया। उनका वक्तव्य था, "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिकर कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में लिखी जाती है।. .....मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा, जिसकी अपनी लिपि है।.....जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर प्रान्त की भाषा थी।'

भाषा के रूप में 'हिन्दी' के विविध अर्थ

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में हिन्दी शब्द क्षेत्र बोधक था। कालान्तर में यह यहाँ की वस्तुओं और निवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। अन्तत: यह भाषा के लिए रूढ़ हो गया, परन्तु हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में भी आज इसके तीन अर्थ मिलते हैं-(i) व्यापक अर्थ, (ii) सामान्य अर्थ और (iii) विशिष्ट अर्थ।।

व्यापक अर्थ

अपने व्यापक अर्थ में हिन्दी, (बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार) हिन्दी-प्रदेश में बोली जाने वाली समस्त 18 बोलियों की प्रतिनिधि भाषा है। ये बोलियाँ हैं-

- पश्चिमी हिन्दी में खड़ी बोली, बाँगरू (हरियाणवी), ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देली
- पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी
- पहाड़ी में पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), मध्यवर्ती पहाड़ी (जौनसारी)
- राजस्थानी में पूर्वी राजस्थानी (ढुंढाड़ी), उत्तरी राजस्थानी (मेवाती), पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) और दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
- बिहारी में मैथिली, महँगी तथा भोजपुरी।

सामान्य अर्थ

जॉर्ज ग्रियर्सन एवं सुनीति कुमार चटर्जी प्रभृति भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार केवल पूर्वी हिन्दी एवं पश्चिमी हिन्दी की बोलियों को ही हिन्दी भाषा की बोली

के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार इनकी मान्यताओं के धरातल पर हिन्दी को 8 (पश्चिमी हिन्दी की 5 और पूर्वी हिन्दी की 3) बोलियों की प्रतिनिधि भाषा मानते हुए उसका उद्‌भव शौरसैनी और अर्द्धमागद्यी अपभ्रंश से माना जा सकता है।

विशिष्ट अर्थ

हिन्दी भाषा का समसामयिक आशय है-खड़ी बोली हिन्दी। भारतीय संविधान के अन्तर्गत इसे भारत संघ की राजभाषा के रूप में (अनुच्छेद 120, 210 तथा 343 से 351 तक) एवं 8वीं अनुसूची में देश की 18 प्रमुख बोलियों के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। परिनिष्ठित हिन्दी, मानक हिन्दी या व्यावहारिक हिन्दी के रूप में व्यवहृत होने वाली यही हिन्दी आज देश के (लगभग) 42 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा है, साथ ही 30 प्रतिशत अन्य ऐसे लोग भी हैं जिन्हें इसका व्यावहारिक ज्ञान है। इसी कारण यह देश की प्रमुखतम सम्पर्क भाषा है।

'हिन्दी भाषा' का उद्‌भव/उत्पत्ति और विकास

हिन्दी भाषा पूर्णतया वियोगात्मक भाषा है। अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध काल में इसका लगभग 40 प्रतिशत स्वरूप स्पष्ट हो गया था। लेकिन एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में इसकी पहचान लगभग 1000 ई. के आस-पास स्थापित होती है। तब से अद्यावधि तक यह विकास के पथ पर निरन्तर गतिशील है। हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास का इतिहास तीन भागों में बांटा जा सकता है-

आदिकाल (1000 से 1500 ई. तक)

हिन्दी भाषा का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का काल कहा जा सकता है। सर्वत्र मत्स्य न्याय की परम्परा व्याप्त थी। जर, जोरू और जमीन तथा कथित अभिमान के प्रणेता इन लोगों को पशुवत् हिंसक बना रहे थे। इस विनाशलीला से जहाँ कुछ लोग उत्साहित होते थे, वहीं बहुत-से लोग विक्षुब्ध भी। कुछेक ने इन विसंगतियों से स्वयं को मुक्त रखा। इसलिए भोग एवं योग अपूर्व समन्वय इस युग की रचनाओं में। दृष्टिगत होता है। प्रसंगानुकूल-राजाश्रय, धर्माश्रय में सृजित होने वाली रचनाओं के लिए डिंगल, पिंगल, दक्खिनी, अवधी, ब्रज प्रभृति विविध भाषाएँ, माध्यम भाषा के रूप में अपनायी गयीं। इस अवधि में सृजित साहित्य जो अभी तक उपलब्ध हुआ है वह मुख्य रूप में राजस्थान,

उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में लिखा गया है। प्रारम्भिक व्याकरण हेमचन्द्र के द्वारा लिखा गया, जिसका नाम था–शब्दानुशासन या सिद्ध हेम व्याकरण। इस युग में विकास की दृष्टि से हिन्दी की निम्न ध्वनिगत एवं रूपगत विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं–

- अपभ्रंश में 8 स्वर थे–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए तथा ऐ। ये मूल स्वर थे। हिन्दी में नए स्वर विकसित हुए–ऐ तथा और इनका उच्चारण क्रमशः अ, ए तथा ओ–रूप में होता था। इन्हें संयुक्त स्वर कहा गया।
- अपभ्रंश में ड़ु और ढ़ व्यंजन नहीं थे जो कि हिन्दी में प्रचलित हुए।
- न्ह, ल्ह, यह जैसे संयुक्त व्यंजन अपने पूर्व व्यंजन के महाप्राण के रूप में प्रचलित हो, मूल व्यंजन बन गए।
- सहायक क्रियाओं एवं उपसर्गों के अलग प्रयोग से हिन्दी की मूल विशिष्टता– वियोगात्मकता, इसके प्रारम्भिक काल में ही प्रभावी दृष्टिगत होने लगी।
- अपेक्षाकृत कम होते हुए नपुंसक लिंग शब्द धीरे–धीरे समाप्त हो गए।
- वाक्य–रचना का स्वरूप सुनिश्चित हो गया।
- संस्कृत के शब्दों का प्रयोग धीरे–धीरे बढ़ा तथा अरबी, फारसी, तुर्की एवं पश्तो के शब्द भी प्रचुर संख्या में अपनाए गए।

मध्यकाल (1501 से 1800 ई. तक)

यह काल, हिन्दी भाषा और साहित्य की उपलब्धियों को देखते हुए उसका स्वर्णकाल कहा जा सकता है। राजनीतिक स्थिरता, शान्तिपूर्ण वातावरण एवं कलात्मक उत्कर्ष ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। यद्यपि संस्कृत अब भी पाण्डित्य की प्रदर्शिका थी किन्तु प्रतिभाशाली एवं स्वाभिमानी सन्तों एवं भक्तों ने लोक बोलियों (विशेष रूप से ब्रज और अवधी) को अपनाकर उसे भाषा के स्तर तक पहुँचा दिया। कृष्ण भक्तों एवं रामभक्तों, विशेषकर सूरदास और तुलसीदास के सुयोग से विकसित इन दोनों बोलियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य एवं शब्दकोश की प्रभूत श्रीवृद्धि की।

- फारसी भाषा में सम्पर्क के कारण हिन्दी में पाँच नयी ध्वनियाँ प्रचलित हुई– क, ख, ग, ज तथा फ।
- अ से होने वाले शब्दांत में अ का उच्चारण समाप्त होने लगा। जैसे–अर्थात् सम्राट्, तथागत् आदि।

- हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप भी लगभग सुनिश्चित हो गया। अपभ्रंश रूप या तो प्रचलन में समाप्त हो गये अथवा हिन्दी के अपने बन गये।
- मुसलमानों से आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने के कारण उनकी विविध भाषाओं-अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो आदि के लगभग 6000 शब्द हिन्दी में अपना लिए गए।
- हिन्दी भाषा की वियोगितात्मकता लगभग पूरी हो गयी और परसर्ग तथा क्रियाओं आदि का अधिक से अधिक स्वतन्त्र प्रयोग होने लगा।
- सूरदास एवं तुलसीदास के साथ-साथ रीतिकालीन आचार्यों के कारण जहाँ हिन्दी में प्रचुर मात्रा में तत्सम शब्द सम्मिलित एवं प्रचलित हुए वहीं सन्त, सूफियों या मुक्तक परम्परा के रचनाकारों के प्रभाव से तद्भव एवं देशी तथा देशज शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ।
- व्यापारिक उद्देश्य से भारत आने वाली विभिन्न यूरोपीय जातियों से सम्पर्क के कारण उनकी भाषाओं-पुर्तगाली, स्पेनिश, डच, फ्रेंच तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग प्रायः हिन्दी के अपने व्याकरण के अनुसार प्रचुर मात्रा में होने लगा।

आधुनिक काल (1801 ई. से आज तक)

इस अवधि को खड़ी बोली हिन्दी का काल कहा जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा और अवधी एक तरफ जनमानस से दूर होकर विशिष्ट वर्ग की भाषा बन गयी, तो दूसरी तरफ हिन्दी प्रदेश पर। अधिकार करने वाले अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक गतिविधियों की सुकरता हेतु 1800 ई. से। ही खड़ी बोली को संरक्षण प्रदान करते हुए अपना लिया। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र में कुछ। दिनों तक खड़ी बोली गद्यविधा और ब्रजभाषा पद्य-विधा का माध्यम भाषा न रही, लेकिन धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना की व्यापकता, राजनीतिक घटनाओं, सामाजिक जागरण और प्रेस के अस्तित्त्व में आने के कारण खड़ी बोली साहित्यिक सजन की एकमात्र भाषा बन गयी। फोर्ट विलियम कॉलेज के भाषा विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने खड़ी बोली हिन्दी के विकास में बंग-भंग के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए 1905 ई. के स्वदेशी आन्दोलन की रचनात्मक भूमिका को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अहिन्दी भाषा-भाषी के क्षेत्र के विशिष्ट जन प्रतिनिधियों ने भी खड़ी बोली को एक स्वर से स्वदेशी (सम्पर्क) भाषा के रूप में स्वीकार किया। फलतः हिन्दी के विद्वानों एवं रचनाकारों के

समक्ष उसे एक विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की चुनौती उपस्थित हुई। इसे इन्होंने पूरे मनोयोग से स्वीकार कर हिन्दी से जुड़ी राष्ट्रीय अपेक्षाओं की पूर्ति कर दिखाया। इस दृष्टि से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी एवं उसमें (उसके माध्यम से) लिखी जाने वाली रचनाओं का परिष्करण एवं परिमार्जन करके छायावाद के आगमन तक उसे हर दृष्टि से सक्षम भाषा बनने का सुयोग प्रस्तुत किया।

- कचहरी में उर्दू भाषा और फारसी लिपि के प्रचलन के कारण 1947 ई. तक क, ख, ग, ज और फ वर्ण तो प्रचलन में रहे, किन्तु धीरे-धीरे क, ख, 7,- क, ख, ग के रूप में प्रयुक्त होने लगे पर ज और फ प्रचलन में अभी भी बने। हुए हैं।
- अंग्रेजी के प्रभाव से उसके '0' वर्ण के लिए एक नयी ध्वनि 'ऑ' प्रचलित हुई। जैसे-कॉलेज, डॉक्टर, कॉलगेट आदि। (ऑ का उच्चारण ओ एवं आ के मध्य करने की चेष्टा की जाती है।)
- अंग्रेजी के प्रभाव से एक नया संयुक्त व्यंजन 'ड्र' भी प्रचलन में आया है। जैसे-ड्रिप, ड्रग आदि।
- शब्दांत में 'अ' का उच्चारण लगभग समाप्त हो चुका है। जैसे राम, श्याम आदि।

शिक्षा, वाणिज्य, आकाशवाणी, प्रेस तथा दूरदर्शन के प्रभाव से व्यावहारिक धरातल पर हिन्दी का व्याकरणिक स्वरूप लगभग सुनिश्चित हो चुका है, फिर भी वर्तमान में इसके कम-से-कम तीन स्वरूप प्रचलित हैं, जिसे निम्नवत् देखा जा सकता है-

- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त होने वाली साहित्यक हिन्दी।
- हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के जनसामान्य या विशिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होने वाली हिन्दी। इसके भी कम से कम तीन स्वरूप प्रचलन में है-शिष्ट लोगों की से बातचीत में प्रयुक्त होने वाली हिन्दी जिसमें आरम्भ से अन्त तक संयम एवं अनुशासन का पुट रहता है, पारिवारिक धरातल पर प्रयुक्त होने वाली हिन्दी, जिसमें थोड़ी उन्मुक्तता और थोड़ा अनुशासन तथा संयम का पुट रहता है एवं मित्रों तथा समवयस्कों के मध्य बातचीत में पूर्ण उन्मुक्तता के साथ प्रयुक्त होने वाली हिन्दी जिसमें अनुशासन या संयम का सर्वथा अभाव होता शासन, विज्ञान, उद्योग, व्यापार, चिकित्सा तथा अन्य प्रमुख

क्षेत्रों में माध्यम भाषा के रूप में प्रयुक्त होने के कारण हिन्दी भाषा में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का समन्वय हो रहा है।

- ये शब्द विविध माध्यमों से प्राप्त हो रहे हैं, जैसे-ग्रहण, निर्माण, अनकलन (तकनीक, अकादमी, डीजल) और सचर्यन (निस्तन्त्री)।

अन्य शब्दों में हिन्दी-व्युत्पत्ति और अर्थ

- 'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित है- (i) परम्परावादी संस्कृत पण्डितों के अनुसार, हिन्दी-हिन् (नष्ट करना) . दु (दुष्ट) अर्थात् हिन्दू का अर्थ है, जो दुष्टों का विनाश करें (हिनस्ति दुष्टान) (ii) शब्द कल्पद्रुम के अनुसार, 'हिन्दू' शब्द 'हीन. दुष. डु' से बना है जिसका अर्थ है 'हीनों को दूषित करने वाला (हीन दूषयति)। (नोट-ये दोनों मत कल्पना प्रसूत है।)
- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'हिन्दू' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 7वीं सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथचूर्णि' में प्रथम बार मिला है। 'हिन्दू' शब्द फारसी है, जो संस्कृत शब्द सिन्धु का फारसी रूपान्तरण है। 'सिन्धु' शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में सामान्य रूप से नदी (सप्त सिंधव:), नदी विशेष तथा नदी के आस-पास के प्रदेश के लिए हुआ है।
- 500 ई. पू. के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी का स्थानीय प्रदेश ईरानी लोगों के हाथों में था।
- संस्कृत के 'सिन्धु' का ईरानी में हिन्दू हो गया जो सिन्धु नहीं के आस-पास के प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।
- कालान्तर में आर्थिक विकास के साथ हिन्दू' का अर्थ 'भारत' हो गया। इसमें 'इ' पर बलाघात के कारण अन्त्य 'उ' का लोप हो गया। (हिन्दू-हिन्द)।
- 'हिन्द' शब्द में विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' जोड़ने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। कालान्तर में 'क' लुप्त हो जाने से 'हिन्दी' शब्द बना।
- 'हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से विशेषण है जिसका मूल अर्थ (सं.) सिन्धु (अवे.) हिन्दू हिन्द हिन्दीक हिन्दी।
- ग्रीक लोगों ने सिन्धु नदी को 'इन्दोस', यहाँ के निवासियों को 'इन्दोई' तथा प्रदेश को 'इन्दिके' अथवा 'इन्दिका' नाम से सम्बोधित किया। 'इन्दिका' शब्द अंग्रेजी आदि में 'इण्डिया' हो गया।

- किसी भी प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में हिन्दी' का प्रयोग नहीं मिलता है। केवल कालकाचार्य द्वारा लिखित जैन महाराष्ट्री में 'हिन्दुग' शब्द मिलता है। (जैसे-'सूरिणा भणियम् रामाणो जेण हिन्दुग देसम् बच्चामो')।

इतिहास क्रम

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। हिन्दी भाषा व साहित्य के जानकार अपभ्रंश की अंतिम अवस्था 'अवहट्ठ' से हिन्दी का उद्‌भव स्वीकार करते हैं। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इसी अवहट्ठ को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया।

अपभ्रंश की समाप्ति और आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्मकाल के समय को संक्रांतिकाल कहा जा सकता है। हिन्दी का स्वरूप शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से विकसित हुआ है। 1000 ई. के आस-पास इसकी स्वतंत्र सत्ता का परिचय मिलने लगा था, जब अपभ्रंश भाषाएँ साहित्यिक संदर्भों में प्रयोग में आ रही थीं। यही भाषाएँ बाद में विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में अभिहित हुईं। अपभ्रंश का जो भी कथ्य रुप था - वही आधुनिक बोलियों में विकसित हुआ।

अपभ्रंश के सम्बंध में 'देशी' शब्द की भी बहुधा चर्चा की जाती है। वास्तव में 'देशी' से देशी शब्द एवं देशी भाषा दोनों का बोध होता है। प्रश्न यह कि देशीय शब्द किस भाषा के थे ? भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में उन शब्दों को 'देशी' कहा है 'जो संस्कृत के तत्सम एवं सद्‌भव रूपों से भिन्न है। ये 'देशी' शब्द जनभाषा के प्रचलित शब्द थे, जो स्वभावतया अप्रभंश में भी चले आए थे। जनभाषा व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं करती, परंतु व्याकरण को जनभाषा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना पड़ता है, प्राकृत-व्याकरणों ने संस्कृत के ढाँचे पर व्याकरण लिखे और संस्कृत को ही प्राकृत आदि की प्रकृति माना। अत: जो शब्द उनके नियमों की पकड़ में न आ सके, उनको देशी संज्ञा दी गई।

हिन्दी की विशेषताएँ एवं शक्ति

हिंदी भाषा के उज्ज्वल स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी गुणवत्ता, क्षमता, शिल्प-कौशल और सौंदर्य का सही-सही आकलन किया जाए। यदि ऐसा किया जा सके तो सहज ही सब की समझ में यह आ जाएगा कि-

1. संसार की उन्नत भाषाओं में हिंदी सबसे अधिक व्यावस्थित भाषा है।
2. वह सबसे अधिक सरल भाषा है।
3. वह सबसे अधिक लचीली भाषा है।
4. हिंदी दुनिया की सर्वाधिक तीव्रता से प्रसारित हो रही भाषाओं में से एक है।
5. वह एक मात्र ऐसी भाषा है जिसके अधिकतर नियम अपवादविहीन है।
6. वह सच्चे अर्थों में विश्व भाषा बनने की पूर्ण अधिकारी है।
7. हिंदी का शब्दकोष बहुत विशाल है और एक-एक भाव को व्यक्त करने के लिए सैकड़ों शब्द हैं।
8. हिन्दी लिखने के लिये प्रयुक्त देवनागरी लिपि अत्यन्त वैज्ञानिक है।
9. हिन्दी को संस्कृत शब्दसंपदा एवं नवीन शब्द-रचना-सामर्थ्य विरासत में मिली है। वह देशी भाषाओं एवं अपनी बोलियों आदि से शब्द लेने में संकोच नहीं करती। अंग्रेजी के मूल शब्द लगभग 10,000 हैं, जबकि हिन्दी के मूल शब्दों की संख्या ढाई लाख से भी अधिक है।
10. हिन्दी बोलने एवं समझने वाली जनता पचास करोड़ से भी अधिक है।
11. हिंदी दुनिया की दुनिया की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।
12. हिन्दी का साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है।
13. हिन्दी आम जनता से जुड़ी भाषा है तथा आम जनता हिन्दी से जुड़ी हुई है। हिन्दी कभी राजाश्रय की मोहताज नहीं रही।
14. भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की वाहिका और वर्तमान में देशप्रेम का अमूर्त-वाहन
15. भारत की सम्पर्क भाषा
16. भारत की राजभाषा

हिन्दी के विकास की अन्य विशेषताएँ

हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ भारत के उन क्षेत्रों से हुआ जो हिन्दी-भाषी नहीं थे हैं (कोलकाता, लाहौर आदि।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन अहिन्दी भाषियों (महात्मा गांधी, दयानन्द सरस्वती आदि) ने आरम्भ किया।

हिन्दी भाषा सदा से उत्तर-दक्षिण के भेद से परे चहुंदिशी व्यावहारिक होती चली आई है। उदाहरण के लिये दक्षिण के प्रमुख संतो वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानन्द आदि महाराष्ट्र के नामदेव तथा संत ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान के दादू, रज्जब, मीराबाई, पंजाब के गुरु नानक, असम के शंकरदेव, बंगाल के चौतन्य महाप्रभु तथा सूफी संतो ने अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार हिन्दी में ही किया है। इन्होंने एक मात्र सशक्त साधन हिन्दी को ही माना था।

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है।

हिन्दी के विकास में राजाश्रय का कोई स्थान नहीं है, इसके विपरीत, हिन्दी का सबसे तेज विकास उस दौर में हुआ जब हिन्दी अंग्रेजी-शासन का मुखर विरोध कर रही थी। जब-जब हिन्दी पर दबाव पड़ा, वह अधिक शक्तिशाली होकर उभरी है।

जब बंगाल, उड़ीसा, गुजरात तथा महाराष्ट्र में उनकी अपनी भाषाएँ राजकाज तथा न्यायालयों की भाषा बन चुकी थी उस समय भी संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की भाषा हिन्दुस्तानी थी (और उर्दू को ही हिन्दुस्तानी माना जाता था जो फारसी लिपि में लिखी जाती थी)।

19वीं शताब्दी तक उत्तर प्रदेश की राजभाषा के रूप में हिन्दी का कोई स्थान नहीं था। परन्तु 20वीं सदी के मध्यकाल तक इसे भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव दिया गया।

हिन्दी के विकास में पहले साधु-संत एवं धार्मिक नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उसके बाद हिन्दी पत्रकारिता एवं स्वतंत्रता संग्राम से बहुत मदद मिलीय फिर बंबइया फिल्मों से सहायता मिली और अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (टीवी) के कारण हिन्दी समझने-बोलने वालों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

भारत की भाषा समस्या और हिन्दी

हिन्दुस्तान एक ऐसा बहुभाषा-भाषी देश है, जिसकी भाषा समस्या काफी उलझ गई है। चूंकि भाषा का संबंध कई प्रकार की भावुकता, जानपादिक मोह और पूर्वाग्रहों से जुड़ा हुआ है, इसलिए बहुभाषाभाषी देशों में भाषा की समस्या प्रायः संकुल और उलझी रहती है। किन्तु मनुष्य समस्याओं का समाधान करना वाला प्राणी होने के कारण भाषा समस्या का भी कोई न कोई समाधान अपने

देश और समाज के लिए कर ही लेता है। रूस, स्विट्जरलैंड आदि अनेक देशों ने अपनी उलझी हुई भाषा समस्या का समाधान बहुत ही खूबी के साथ कर लिया है।

हमारी संविधान स्वीकृत आधुनिक भारतीय भाषाओं में सिंधी, बंगला, पंजाबी और उर्दू चार ऐसी भाषाएँ हैं, जो पाकिस्तान के भाषा-परिकर में आती है। यानी ये उक्त चार भाषाएँ केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, पाकिस्तान में भी बोली जाती हैं। इतना ही नहीं, ये चार भाषाएँ अपने ढंग की समर्थ भाषाएँ मानी जा सकती हैं। बंगला में रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे विश्वविख्यात और नोबेल पुरस्कार विजेता कवि हो चुके हैं। उर्दू की शीरीनी, फसाहत और बलागत का दुनिया भर में रुतबा है। पंजाबी का भी रचनात्मक साहित्य समृद्ध है। संविधान स्वीकृत भाषाओं में सबसे नई यानी 15वीं भाषा सिंधी भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें शाह अब्दुल करीम जैसे समर्थ और तेजस्वी कवि हो चुके हैं। हमारी जो अन्य संविधान स्वीकृत भाषाएँ हैं, उनकी भी सांस्कृतिक महिमा अपरंपार है।

किन्तु एक राष्ट्र को सही संज्ञा प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत की इन संविधान स्वीकृत भाषाओं में कोई एक भाषा ऐसी हो, जिससे संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा का काम लिया जा सके। इसी दृष्टि से संविधान स्वीकृत भाषाओं के बीच हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात आती है। सच पूछा जाए तो हिन्दी भाषा की सामर्थ्य और हिन्दी भाषियों की संख्या दोनों ही हिन्दी को केवल भारत की संपर्क भाषा या राष्ट्रभाषा नहीं, बल्कि राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने के योग्य है। किन्तु बात उलझ जाती है, इसीलिए कि राष्ट्रभाषा या संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने के प्रश्न पर हिन्दीतर भाषा भाषी भारतीय कुछ दूसरी ही दृष्टि से सोचने लग जाते हैं। उन्हें इसमें अपनी भाषा और संविधान स्वीकृत हिन्दीतर अन्य भाषाओं के महत्त्व का न्यूनीकरण या अपहरण दीख पड़ता है। भाषा संबंधी दृष्टिकोण में स्पष्टता और सुलझाव नहीं रहने के कारण भावुकता से भरी ऐसी आपत्तियों का उठना स्वाभाविक है। वे यह भूल जाते हैं कि भाषा के तीन मुख्य स्वरूप हैं- प्रयोजनपरक, सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक। संपर्क भाषा या राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने का आशय अंग्रेजी का विरोध नहीं है। अंग्रेजी ज्ञान की भाषा के रूप में हमारे देश में चल सकती है और ज्ञान की भाषा के रूप में अंग्रेजी को स्वीकार कर हम अपने देश की मनीषा को वैश्व मनीषा के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सुगमतापूर्वक अद्यतन बनाए रख सकते हैं। दूसरी ओर संस्कृति की भाषा के रूप में हमारे संविधान में स्वीकृत सभी भारतीय भाषाएँ

समान महत्त्व रखती हैं। सांस्कृतिक संवहन, सृजनात्मक अभिव्यक्ति और रिक्थक्रम से आ रहे पारंपरिक प्रदेयों के परिरक्षण की दृष्टि से संविधान स्वीकृत सभी भारतीय भाषाएँ महत्त्वपूर्ण हैं और उन्हें निरंतर विकसित करते रहने की नितांत आवश्यकता है, ताकि वे हमारी संस्कृति की समर्थ सार्थवाह बनी रह सकें। प्रश्न है केवल प्रयोजनमूलकता का और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीयता की पहचान के लिए अपनी एक समर्थ भाषा के माध्यम से भारत के प्रतिनिधित्व का। जैसा कहा जा चुका है, सांस्कृतिक महिमा और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से हमारी सभी भाषाएँ समान हैं। किन्तु राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय और राजकीय प्रयोजन के लिए हमें इन भाषाओं के बीच अनेक विदित कारणों से हिन्दी को अपने देश की प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में स्वीकार करना है। प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति को अन्य भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक महत्त्व के न्यूनीकरण के अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए। संविधान स्वीकृत सभी भाषाएँ हमारे लिए संस्कृति की भाषाएँ हैं और हिन्दी भाषा संस्कृति की भाषा होने के साथ ही हमारे लिए प्रयोजन की भाषा भी है।

अब यदि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी हम अंग्रेजी को ढोने के व्यामोह में पड़े रहेंगे तो यह अंग्रेजों के भाषायी उपनिवेशवाद को स्वीकार करने जैसा होगा। अभी विश्व में अनेक ऐसे देश हैं, जिन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है, किंतु उनकी भाषिक परतंत्रता अद्यपर्यंत बनी हुई है और वे मुख्यतः अंग्रेजों के भाषायी उपनिवेशवाद की बेड़ियों से मुक्त नहीं हो सके हैं। उदाहरणार्थ, इन दिनों हम जिसे 'तीसरी दुनिया' कहते हैं, उसके अनेक देश अपनी प्रतीयमान राजनीतिक स्वतंत्रता के बावजूद राष्ट्रभाषा के संदर्भ में भाषायी परतंत्रता या अंग्रेजी भाषा के साम्राज्यवाद या कह लीजिए, बौद्धिक उपनिवेशवाद के शिकार आज तक बने हुए हैं। अफ्रीकी देशों में घाना, नाइजेरिया, केनिया, युगांडा, तंजानिया और जाम्बिया इसके उदाहरण माने जा सकते हैं। इन देशों में जहाँ अनेक प्रकार की भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं, अंग्रेजी को प्रशासन तथा उच्च शिक्षा के माध्यम एवं संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी तरह की बात कुछ दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में भी हुई है, जिनमें बर्मा, इंडोनेशिया, थाइलैंड और साउथ वियतनाम के नाम लिये जा सकते हैं। इन देशों में छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश के पूर्व कई वर्षों तक अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है। जैसे, विश्वविद्यालय में प्रवेश के पूर्व बर्मा में पाँच वर्षों तक, इंडोनेशिया में छह वर्षों तक, थाइलैंड में आठ वर्षों तक और दक्षिण वियतनाम में सात वर्षों तक अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है। किन्तु पूर्वोक्त

अफ्रीकी देशों की तुलना में इन दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की यह विशेषता है कि अंग्रेजी को प्रमुखता देने के बाद भी इन देशों ने अपनी प्रमुख भाषा को ही राष्ट्रभाषा या राजकाज की भाषा के रूप में स्वीकार किया है। जैसे बर्मा ने 'बर्मीज' को, इंडोनेशिया ने 'भासा-इंडोनेशिया' को, लाओस ने 'लाओ' को, मलेशिया ने 'मलेय' को, फिलीपाइंस ने 'तगालोग' को, वियतनाम ने 'वियतानामोज' को और थाइलैंड ने 'थाई' को अपनी राष्ट्रभाषा या राजकाज की प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में स्वीकार किया है।

इसमें कोई दो मत नहीं कि हिन्दी भारतवर्ष के सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है। देश के संपूर्ण क्षेत्रफल के साठ प्रतिशत भू-भाग में हिन्दी बोली जाती है और इस देश की कुल आबादी के 40 प्रतिशत देशवासी हिन्दी बोलते हैं। इन आंकड़ों से इस देश की भाषाओं के बीच हिन्दी की प्रमुखता स्वत: स्पष्ट है। किंतु इस सामर्थ्य के बावजूद स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने दशकों के बाद भी हिन्दी देश में अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान नहीं प्राप्त कर सकी है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तो हिन्दी दिनानुदिन पीछे ही पड़ती जा रही है। पहले राष्ट्रसंघ में पांच भाषाएँ स्वीकृत थीं- अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और चीनी। इधर अरबी को भी राष्ट्रसंघ के कार्यकलाप की भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है और अब राष्ट्रसंघ की सातवीं भाषा के रूप में स्वीकृति पाने के लिए जर्मन की बारी आ चुकी है। इसके लिए बॉन, वियेना और पूर्वी बर्लिन की सरकारें प्रभावपूर्ण ढंग से सम्मिलित प्रयास कर रही हैं। किन्तु अब तक राष्ट्रसंघ की आठवीं कार्यालयी भाषा के रूप में या राष्ट्रसंघ के कार्यकलाप की भाषा के रूप में हिन्दी के स्वीकृत होने की कोई संभावना नहीं दीख रही है। जबकि भाषा-भाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व की भाषाओं के बीच हिन्दी का तीसरा स्थान है और राष्ट्रसंघ के देशों (कामन वेल्थ कंट्रीज) की भाषाओं के बीच हिन्दी का पहला स्थान है।

प्राप्त आंकड़ों के अनुसार चीनी भाषियों की संख्या आठ सौ दस लक्ष, अंग्रेजी भाषियों की संख्या तीन सौ तीस दस लक्ष, हिन्दी भाषियों की संख्या दो सौ पचास दस लक्ष, रूसी भाषियों की संख्या दो सौ चालीस दस लक्ष, स्पेनी भाषियों की संख्या दो सौ बीस दस लक्ष, इंडोनिशियन भाषियों की संख्या एक सौ तीस दस लक्ष तथा जर्मन, अरबी और पुर्तगाली बोलने वालों की संख्या एक-एक सौ दस लक्ष है। इस आंकड़े से स्पष्ट है कि बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से विश्व की भाषाओं के बीच हिन्दी भाषा का तीसरा स्थान है और

राष्ट्रसंघ के देशों की भाषाओं के बीच इसका पहला स्थान है। किंतु राष्ट्रसंघ की भाषाओं में अब तक इसके आठवें स्थान की भी कोई संभावना नहीं बनी है। अतः यह एक चिंता का विषय है कि प्रभूत संख्या बल रहने के बावजूद हिन्दी भाषा को अपने देश में और विश्व मंच पर अब तक उचित स्थान नहीं मिल सका है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, क्षेत्रफल या भौगोलिक प्रसार की दृष्टि में भी हिन्दी भाषा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मारीशस त्रिनिदाद, सूरीनाम, फिजी, थाईलैंड, बर्मा, स्याम, इंडोनेशिया, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका आदि में हिन्दी बोली और समझी जाती है। अभी दुनिया के लगभग 38 देशों में हिन्दी की अच्छी पहुँच है और विदेश के लगभग 94 विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई होती है। यहाँ यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि अब भाषा की प्रतिष्ठा केवल उसके रचनात्मक साहित्य और उसके सांस्कृतिक महत्त्व पर निर्भर नहीं करती। अब वह भाषा अधिक आगे बढ़ सकती है, जिसके पीछे अत्याधुनिक तकनीकी उपकरणों का बल हो और जिसकी पहुँच वर्तमान सभ्यता के विभिन्न साहित्येतर क्षेत्रों में भी हो। राष्ट्रसंघ की भाषा बनने के लिए भी हिन्दी को आधुनिक तकनीकी उपकरणों की आवश्यकता होगी। दूसरी बात यह है कि अपने देश पूरे भारत की भाषा बनने के लिए एक प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी को समग्र भारतवर्ष के अर्थतंत्र, वाणिज्य, व्यवसाय, मौद्रिक प्रचलन, लेन-देन, अधिकोषण आदि के विभिन्न प्रभागों के दैनंदिन कार्यों, लेखा संधारणों एवं अन्य अनेक प्रयोजनों से घनिष्ठ रूप में जुड़ना होगा। किसी भाषा का सांस्कृतिक या ज्ञानात्मक रूप, जिसके द्वारा वह अपने देश को संस्कृति का अग्रचारी नेतृत्व करता है। यह विश्व के पैमाने पर समान संस्कृति परंपराओं के परिरक्षण-संवर्धन में समभागी बनता है, भले ही पुस्तकालयों, संग्रहालयों, मठों, मंदिरों, खान-काहों, मातृका सदनों या स्कूल-कॉलिजों के पाठ्यक्रमों तक सीमित रह कर भी अपना विकास कर सकता हो, किंतु किसी भाषा का व्यावहारिक प्रयोजनमूलक रूप, जिसकी एक विशिष्ट परिणति राजकाज की भाषा या राष्ट्रभाषा के रूप में होती है, अपने देश के अर्थतंत्र तथा वाणिज्य व्यापार के संस्थानों में अंतः प्रवेश पाए बिना विकसित और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

अतः भारत के वर्तमान भाषा संदर्भ को दृष्टिगत रखते हुए भारतीयों बैंकों में हिन्दी के माध्यम से कार्य करने की विधि को अपनाना आवश्यक है। इसके लिए बैंकों के कार्य क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए हमें हिन्दी भाषा का प्रयोग और विकास एक विशेष 'रजिस्टर' या प्रयुक्ति के रूप में करना होगा। आज के

प्रगतिशील युग के अनुसार भारतीय संविधान के आधारभूत आमुख के अनुसार और हमारे लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के अनुरूप अब बैंकों के कार्य क्षेत्र, कार्य की प्रकृति और उद्देश्य में भी बदलाव आया है। अब बैंक केवल संचित राशि जमा करने, ऋण देने और लाभांश कमाने वाली संस्था भर नहीं है, बल्कि वह हमारे देश की सामाजिक तथा आर्थिक विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने का तथा आम जनता को आर्थिक न्याय पाने के योग्य बनाने का एक सशक्त माध्यम भी बन गया है। अपनी इस नई कमिचा पूरी सामर्थ्य के साथ अदा करने के लिए बैंकों को देश की आम जनता के साथ जुड़ना होगा और समाज के कमजोर या पिछड़े हुए नागरिकों तक भी पूरी तत्परता के साथ जाना होगा। यह एक सर्ववादिसम्मत मान्यता है कि जनता तक पहुँचने के लिए जनता की भाषा ही सर्वोत्तम माध्यम सिद्ध हुआ करती है। चूंकि अनेक सीमाओं और बहसतलब मुद्दों के बावजूद हिन्दी ही घुमा-फिरा कर इस देश की जनता की भाषा है या मानी जा सकती है, इसलिए हिन्दी में बैंकों का काराबार होना और बैंक के अधिकारियों कर्मचारियों का हिन्दी में यानी जनता की भाषा में प्रशिक्षित होना नितांत आवश्यक है। यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे देश के कई प्रमुख बैंकों ने यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, इंडियन ओवरसीज बैंक, बैंक आफ बड़ौदा, स्टेट बैंक आफ हैदराबाद इत्यादि उल्लेखनीय हैं, अपने अधिकारियों और कर्मचारियों को हिन्दी में प्रशिक्षित करने की दिशा में विशेष प्रयत्न प्रारंभ किए हैं। प्राप्त सूचनानुसार रिजर्व बैंक और नेशनल इंस्टीट्यूट आफ बैंक मैनेजमेंट ने भी इस दिशा में कुछ अंग्रेसर कार्य करने का निश्चय किया है।

उपरिनिवेदित किंचित विषयांतर के द्वारा मैंने यह रेखाकिंत करना चाहा है कि यदि हिन्दी को इस देश की राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा या प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में स्थापित होना है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रसंघ की भाषा के रूप में स्वीकृत होना है तो इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से संपन्न रचनात्मक साहित्य का होना हिन्दी के लिए पर्याप्त नहीं होगा। तुलसी, सूर और कबीर हिन्दी की रचनात्मक, साहित्यिक और सांस्कृतिक समृद्धि के कालजयी प्रतीक है। किंतु समकालीन नए भाषा संदर्भ में केवल उन्हीं गौरव शिखरों से हिन्दी भाषा का काम नहीं चल सकता। अब किसी भाषा को एक समर्थ भाषा बनने के लिए उसे यातायात, राजनय, सैनिक शिविर और लश्कर, प्रायोगिक प्रौद्योगिकी, औद्योगिकी आदि के क्षेत्रों में प्रवेश पाना होगा। अभी-अभी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी के महत्त्व और अंग्रेजी के विश्वव्यापी प्रसार से

आतंकित तथा पराभूत होकर फ्रेंच भाषा ने अपने को पिछले कई दशकों से उपेक्षित सा महसूस किया, जिसके फलस्वरूप फ्रेंच भाषा के महत्त्व के घटने और अंग्रेजी भाषा के महत्त्व के बढ़ने के कारणों का आकलन तथा विश्लेषण करने के लिए फ्रेंच सरकार ने 'फ्रेंच लेंग्वेज हाई कमेटी' के नाम से एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया था। उस उच्च स्तरीय समिति के प्रतिवेदन से यह स्पष्ट पता चलता है कि 1914 ई. तक यूरोपीय भाषाओं के बीच फ्रेंच भाषा का निर्विवाद सर्वोत्तम स्थान रहा। किंतु, उसके बाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी भाषा फ्रेंच भाषा को निरंतर पीछे छोड़ती गई।

अंग्रेजी भाषा की इस निरंतर प्रगति और अक्त महत्त्व का प्रमुख कारण यह हुआ कि 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही अंग्रेजी भाषा विश्व में अंग्रेजी की औद्योगिक, व्यापारिक एवं सामूहिक सर्वोपरिता का सहारा लेकर निरंतर प्रमुखता और प्रसार पाती गयी तथा ब्रिटिश साम्राज्य के देशांतर विस्तार की वजह से अपने प्रचार प्रसार के लिए भी सह-विस्तार पाती गयी। इसका फल यह हुआ कि अंग्रेजी भाषा इन औद्योगिक, सामुद्रिक और राजकीय सुविधाओं को पाकर लगभग संपूर्ण विश्व के व्यापार और सामुद्रिक यातायात की भाषा बन गई। इसके बाद जब संयुक्त राज्य अमेरिका का अभ्युदय एक शक्तिशाली देश के रूप में हुआ, तब उसने लगभग सन 1945 के बाद अंग्रेजी को राजनयिक संबंधों, उच्चतर प्रौद्यागिकी के क्षेत्रों और जन सम्प्रेषण के प्राविधिक माध्यमों की विशिष्ट भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। कहने का आशय यह कि अंग्रेजी की वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा केवल शेक्सपीयर, मिल्टन, बर्नार्ड शॉ, टी. एस. इलियट आदि सर्जनात्मक लेखकों के कारण ही नहीं है, बल्कि उसके अन्य अनेक कारण भी हैं, जिनका संक्षिप्त निर्देश ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है। अत: स्पष्ट है कि वर्तमान भाषा-संदर्भ में हिन्दी को भी उच्चतर प्रौद्योगिकी राजनयिक संबंध, वाणिज्य-व्यापार, सामुद्रिक यातायात एवं आधुनिक मानव-जीवन के अन्य अनेक प्रभागों में एक प्रयोजकपरक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की कितनी आवश्यकता है।

प्रत्येक राष्ट्र को अपनी पहचान के लिए और अंतर्राष्ट्रीय मंडली में अपने स्वतंत्र भाषिक अभिज्ञान के लिए तथा एक मौलिक राष्ट्र के रूप में अपनी अस्मिता को अभिव्यक्ति के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्कता पड़ती ही है। इसी दृष्टि से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने और हिन्दी के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय मंडली में भारत को अपनी पहचान बनाने के लिए यह

आवश्यक है कि हम हिन्दी को उसके संपूर्ण प्रदेश के साथ स्वीकार करें और उसकी संभावनाओं का निरंतर विकास करें। अनिवार्य रूप में कई भाषाओं को सीखने के लिए राष्ट्र के नागरिकों की शक्ति का अपव्यय करना उचित नहीं मालूम पड़ता है। भाषा के प्रसंग में व्यक्ति की शक्ति का अपव्यय करना उचित नहीं मालूम पड़ता है। भाषा के प्रसंग में व्यक्ति की शक्ति या ऊर्जा की मितव्ययिता पर स्रष्टा ने भी ध्यान रखा है। 'फायलो जेनेटिक्स' के अनुसार भाषा के लिए- बोलने के लिए स्रष्टा ने मनुष्य को अलग से कोई विशिष्ट इंद्रिय नहीं दी है। 'फायलो जेनेटिक्स' का कहना है कि मनुष्य की पंचेद्रियों के बीच श्रवणेंद्रिय सबसे बाद में जुड़ी इंद्रिय है। इसी श्रवणेंद्रिय से भाषा या बोली को सुनने का काम लिया जाता है और भोजन करने तथा श्वास लेने के लिए जो पूर्व निर्मित अवयव रहे हैं, उन्हीं के वर्त्स (ट्रेक्ट) से भाषा या बोली का काम लिया जाता है। जब स्रष्टा ने, वकील 'फायलो जेनेटिक्स', भाषा क संदर्भ में इंद्रिय-संरचना की दृष्टि से इतनी मितव्ययिता के साथ काम लिया है, तब हमें भी अपनी भाषा समस्या के समाधान के क्रम में देश के नागरिकों की शक्ति की मितव्ययिता पर अपेक्षित ध्यान रखना चाहिए। भारत की संविधान स्वीकृत भाषाओं के परिकर में हिन्दी की प्रस्थिति को अस्पष्ट रखते हुए कई भाषाओं से काम लेने के फार्मूले को स्वीकार करने पर इस देश के नागरिकों की शक्ति का शायद अपव्यय ही होगा।

जिस देश में 367 मातृ भाषाएँ हैं और जिस देश में लगभग 58 भाषाएँ विद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम की भाषा के रूप में स्वीकृत हैं, उस देश को एक बलबली राष्ट्रभाषा की प्राप्ति के लिए तथा उस राष्ट्रभाषा के माध्यम से विश्व की मंडली में अपनी अलग पहचान बनाने के लिए कई प्रकार की संकीर्णताओं, आंचलिक पूर्वाग्रहों तथा भावुकता के उदेकों से ऊपर उठना होगा। इतना ही नहीं, उस देश के लिए यह भी आवश्यक है कि वह राष्ट्र की एकता को सर्वोपरि महत्त्व देते हुए अपनी भाषा समस्या के समाधान हेतु अपने राष्ट्रीय विवेक को सदैव जाग्रत रखे, राष्ट्रभाषा के चयन संदर्भ में किसी प्रकार के तदर्थ चिंतन को या तदर्थ व्यवस्था को अधिक दिनों तक नहीं ढोये तथा एक राष्ट्र के रूप में अपने संवैधानिक संकल्प और कर्म की एकरूपता के द्वारा अनेक विकल्पों वाली अनिश्चितता या दिशाहीनता अथवा सांस्कृतिक अनिर्णय वाली दशा को शीघ्र समाप्त करें।

हिन्दी की शैलियाँ

भाषाविदों के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं–

(1) उच्च हिन्दी – हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द है, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (खास तौर पर बोलचाल की भाषा में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।

(2) दक्खिनी – उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आस-पास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

(3) रेखता – उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।

(4) उर्दू – हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं, और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ीबोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी-अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली। इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है। उर्दू पाकिस्तान की और भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर की राजभाषा है, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार,तेलंगाना और दिल्ली में द्वितीय राजभाषा है। यह लगभग सभी ऐसे राज्यों की सह-राजभाषा है, जिनकी मुख्य राजभाषा हिन्दी है।

हिन्दी वर्तनी मानकीकरण

भारत के संविधान में हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। साथ ही कुछ अन्य राज्य सरकारों ने भी हिन्दी को अपने राज्य की भाषा के रूप में मान्यता दी है। राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने पर हिन्दी

में लिपि, वर्तनी और अंकों का स्वरूप आदि विषयों में एकरूपता लाने के लिए शिक्षा मंत्रालय ने विविध स्तरों पर प्रयास किया। वर्णमाला के साथ ही हिन्दी वर्तनी की विविधता की ओर भी सरकार ने ध्यान दिया। शिक्षा मंत्रालय ने विभिन्न भाषाविदों के सहयोग से हिन्दी वर्तनी की विविध समस्याओं पर गम्भीर रूप से विचार-विमर्श करने के बाद अपनी संस्तुतियाँ सन् 1967 में 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसकी काफी सराहना हुई।

मानकता की आवश्यकता

किसी भी भाषा के सीखने-सिखाने में सहायक या बाधक बनने वाले दो प्रमुख तत्त्व हैं उसका व्याकरण और लिपि। लिपि का एक पक्ष है सामान्य और विशिष्ट स्वनों के पृथक् प्रतीक-वर्णों की समृद्धि, उनका परस्पर स्पष्ट आकार-भेद, लिखावट में सरलता तथा स्थान-लाघव एवं प्रयत्न-लाघव। भारतीय संघ तथा कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप

हिन्दी का मानक रूप निर्धारित करना बहुत आवश्यक था, ताकि वर्णमाला में सर्वत्र एकरूपता रहे और टाइपराइटर आदि आधुनिक यंत्रों के उपयोग में लिपि की अनेकरूपता बाधक न हो।

लिपि का दूसरा पक्ष है, वर्तनी। एक ही स्वन को प्रकट करने के लिए विविध वर्णों का प्रयोग वर्तनी को जटिल बना देता है और यह लिपि का एक सामान्य दोष माना जाता है। यद्यपि देवनागरी लिपि में यह दोष न्यूनतम है, फिर भी उसकी कुछ अपनी विशिष्ट कठिनाइयाँ भी हैं। इन सभी कठिनाइयों को दूर कर हिन्दी वर्तनी में एकरूपता लाने के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1961 में एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की थी। समिति ने अप्रैल, 1962 में अपनी अन्तिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं, जिन्हें सरकार ने स्वीकृत किया। इन्हें 1967 में 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' शीर्षक पुस्तिका में व्याख्या तथा उदाहरण सहित प्रकाशित किया गया था।

भाषा की वर्तनी का अर्थ उस भाषा में शब्दों को वर्णों से अभिव्यक्त करने की क्रिया को कहते हैं। हिन्दी में इसकी आवश्यकता काफी समय तक नहीं समझी जाती थी, जबकि अन्य कई भाषाओं, जैसे अंग्रेजी व उर्दू में इसका महत्त्व था। अंग्रेजी व उर्दू में अर्धशताब्दी पहले भी वर्तनी (अंग्रेजी: स्पेलिंग, उर्दू:हिज्जों) की रटाई की जाती थी जो आज भी अभ्यास में है। हिन्दी भाषा का पहला और बड़ा गुण ध्वन्यात्मकता है। हिन्दी में उच्चरित ध्वनियों को व्यक्त करना बड़ा

सरल है। जैसा बोला जाए, वैसा ही लिखा जाए। यह देवनागरी लिपि की बहुमुखी विशेषता के कारण ही संभव था और आज भी है। परन्तु यह बात शत-प्रतिशत अब ठीक नहीं है। इसके अनेक कारण है - क्षेत्रीय आंचलिक उच्चारण का प्रभाव, अनेकरूपता, भ्रम, परंपरा का निर्वाह आदि। जब यह अनुभव किया जाने लगा कि एक ही शब्द की कई-कई वर्तनी मिलती है तो इनको अभिव्यक्त करने के लिए किसी सार्थक शब्द की तलाश हुई ('हुई' शब्द की विविधता द्रष्टव्य है - हुइ, हुई, हुवी)। इस कारण से मानकीकरण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

'वर्तनी' शब्द का इतिहास

हिंदी शब्दसागर तथा संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के प्रारंभिक संस्करणों के साथ ही सन् 1950 में प्रकाशित प्रामाणिक हिंदी कोश (आचार्य रामचंद्र वर्मा) में इसका प्रयोग न होना यह संकेत करता है कि इस शताब्दी के मध्य तक इस शब्द की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। छठे दशक में वर्तनी शब्द को स्थान मिला, जिसका सन्दर्भ तब प्रकाशित हुई दो पुस्तकों में मिलता है–

1. शुद्ध अक्षरी कैसे सीखें -प्रो. मुरलीधर श्रीवास्तव एवं
2. हिन्दी की वर्तनी-प्रो. रमापति शुक्ल।

प्रो. श्रीवास्तव के अनुसार, हिन्दी की वर्णमाला पूर्णत: ध्वन्यात्मक होने के कारण हिन्दी की वर्तनी की समस्या उतनी गंभीर नहीं जितनी अंग्रेजी कीय क्योंकि हिन्दी में आज भी लिखित रूप से शब्द अपने उच्चरित रूप से अधिक भिन्न नहीं।

इन्होंने अक्षरी शब्द का प्रयोग किया, जो प्रचलन में नहीं आ सकाय क्योंकि उसी समय लेखक ने सिलेबिल के लिए अक्षर का प्रयोग अपने डॉक्टरेट के ग्रंथ हिन्दी भाषा में 'अक्षर' तथा शब्द की सीमा' में स्थिर कर दिया। उस समय तक बिहार में 'विवरण' बंगाल में 'बनान' शब्द हिज्जे स्पेलिंग के लिए चल रहे थे। इसके अलावा प्रचलन में कुछ अन्य शब्द थे -अक्षरन्यास, अक्षर विन्यास, वर्णन्यास, वर्ण विन्यास, आदि। शिक्षा के प्रोफेसर कृष्ण गोपाल रस्तोगी ने अक्षर विन्यास शब्द का प्रयोग बहुत समय तक किया। यही वर्ण विन्यास है। अमरकोश में लिपि के लिए अक्षर विन्यास: तथा लिखितम् का प्रयोग भी पर्याय के रूप में मिलता है।

उपर्युक्त सभी शब्दों के होते हुए भी अब इस अर्थ में 'वर्तनी' ही मान्य हो गया और भारत सरकार के केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली ने न केवल इस शब्द को मान्यता दी, वरन् एकरूपता की दृष्टि से कुछ नियम भी स्थिर किए हैं। वर्तनी शब्द भी संस्कृत भाषा का है, जिसकी व्युत्पत्तियाँ देते हुए आचार्य निशांतकेतु ने 'वर्तनी' शब्द के कोशगत अर्थ बताए हैं–– मार्ग, पथ, जीना, जीवन और दूसरा अर्थ है– पीसना, चूर्ण बनाना, तकुआ। ज्ञानमंडल, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'बृहद् हिन्दी कोश' में पहली बार वर्तनी का अर्थ हिज्जे दिया गया। काफी विवेचन के बाद वर्तनी की बड़ी व्यापक परिभाषा स्थिर की गई।

भाषा-साम्राज्य के अंतर्गत भी शब्दों की सीमा में अक्षरों की जो आचार सहिता अथवा उनका अनुशासनगत संविधान है, उसे ही हम वर्तनी की संज्ञा दे सकते हैं।....वर्तनी भाषा का वर्तमान है। वर्तनी भाषा का अनुशासित आवर्तन है, वर्तनी शब्दों का संस्कारिता पद विन्यास है। वर्तनी अतीत और भविष्य के मध्य का सेतु सूत्र है। यह अक्षर संस्थान और वर्ण क्रम विन्यास है।

आचार्य रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने संस्कृत व्याकरण के वार्तिक से इसका संबंध स्थापित करते हुए व्यक्त किया। वार्तिक एवं वर्तनी दोनों शब्दों के ध्वनिसाम्य एवं अर्थसाम्य में समानता है। सूत्र के द्वारा शब्द साधना का वैज्ञानिक विश्लेषण होता है तथा वार्तिक में सूत्रों द्वारा त्रुटिपूर्ण कथन पर पूर्ण विचार किया जाता है। वर्तनी भी इसी समानांतर प्रक्रिया से गुजरती है। वर्तनी का भी सामूहिक विशुद्ध स्वरूप ही भाषा की समृद्धि के लिए ग्राह्य है। वर्तनी शब्द के विरोधी होते हुए भी आचार्य वाजपेयी इस शब्द के उत्थान हेतु इनका योगदान तथा हिन्दी की वर्तनी तथा शब्द विश्लेषण उल्लेखनीय हैं।

मानकीकरण संस्थाएं एवं प्रयास

मानक हिन्दी वर्तनी का कार्यक्षेत्र केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का है। इस दिशा में कई दिग्गजों ने अपना योगदान दिया, जिनमें से आचार्य किशोरीदास वाजपेयी तथा आचार्य रामचंद्र वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी भाषा के संघ और कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप देश के भीतर और बाहर हिन्दी सीखने वालों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाने से हिन्दी वर्तनी की मानक पद्धति निर्धारित करना आवश्यक और कालोचित लगा, ताकि हिन्दी शब्दों की वर्तनियों में अधिकाधिक एकरूपता लाई जा सके। तदनुसार, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने 1961 में हिन्दी वर्तनी की मानक पद्धति निर्धारित

करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की। इस समिति ने अप्रैल 1962 में अंतिम रिपोर्ट दी। समिति की चार बैठकें हुई जिनमें गंभीर विचार-विमर्श के बाद वर्तनी के संबंध में एक नियमावली निर्धारित की गई। समिति ने तदनुसार, 1962 में अपनी अंतिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं जो सरकार द्वारा अनुमोदित की गईं और अंततः हिन्दी भाषा के मानकीकरण की सरकारी प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ। यह प्रक्रिया तो सतत है, किंतु मुख्य निर्देश तय हो चुके हैं। ये केन्द्रीय हिन्दी संस्थान से एवं भारत के सभी सरकारी कार्यालयों में प्रसारित किए गए हैं। इनका अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु भी संस्थान कार्यरत है।

हिन्दी भाषा का विकास

विकासशीलता भाषा का प्रकृत गुण है, उसकी जीवंतता का लक्षण है। जीवन के नानाविष व्यापारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत होने वाली वह प्रत्येक भाषा जो अपना संसर्ग दूसरी भाषाओं से बनाए रखती है और ज्ञान के नित नूतन संदर्भों से जुड़ती रहती है, अपनी जीवंतता बनाए रखती है और विकसित होती रहती है। दूसरे शब्दों में, व्यवहारधर्मिता और गतिमयता भाषा की विकासशीलता को सूचित करने वाली दो प्रमुख विशेषताएं है।

पदार्थ अथवा विकास की दो गतियां अथवा दिशाएं हैं– प्रौढ़ अथवा शसक्त होते जाना और प्रकृति द्वारा निर्धारित ऊँचाई तक बढ़ना। चूंकि मनुष्य बुद्धि सम्पन्न चेतन प्राणी है, उसकी प्रौढ़ता और विकास का पता उसके बुद्धि कौशल, विवेक, चितन, आचार व्यवहार और उसकी सभ्यता से लगता है और दूसरी ओर उसके अंगों की माप से उसके शारीरिक विकास का निश्चय होता है। दोनों का समुचित विकास ही सच्चा व्यक्तित्त्व निर्माता है।

भाषा का विकास भी इसी प्रकार की दो दिशाओं में होता है। एक ओर वह प्रौढ़ होती चलती है और दूसरी ओर उसका प्रसार होता जाता है। पहली स्थिति उसकी अर्थगर्भिता की सूचक है और दूसरी उसकी व्यापक स्वीकृति की। पहली से यदि उसके अंतरंग विकास का द्योतन होता है तो दूसरी से बहिरंग का। दोनों के सम्मिलन से भाषा समृद्ध और विशेष प्रभावशालिनी बनती है।

हिन्दी के विकासशील होने का अर्थ भी यही है कि वह एक ओर अपने अंतरंग का विकास करती चले और दूसरी ओर व्यापक स्वीकृति पाती जाए। यों सामान्यतः यह आशा किसी भी भाषा से की जानी चाहिए, किंतु हिन्दी पर इसका विशेष दायित्व इसलिए है कि भारतीय संविधान के अनुसार उसे संघ की

राजभाषा और विभिन्न प्रदेशों के बीच सम्पर्क भाषा की भूमिका भी निभानी है। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठे कि हिन्दी किन दिशाओं में और कितनी विकसित है या कि उससे विकास के लिए क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं। हिन्दी इन अपेक्षाओं को कहां तक पूरा कर पा रही है, या उसके लिए कौन से साधक या बाधक तत्त्व हैं और उनसे कैसे निपटा जाए।

भाषा के विकास की जिन दो स्थितियों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्हें हम क्रमशः गुणात्मक विकास तथा संख्यात्मक विकास भी कह सकते हैं। निसंदेह संख्यात्मक विकास भी किसी भाषा के इतिहास में, उसके अधिकार का निश्चायक होता है, किंतु उसकी स्थिति एक ऐसे उपकारक तत्त्व की सी है जिसकी सत्ता किसी दूसरे तत्त्व की तुलना में गौण महत्व की होती है। भाषा के संदर्भ में गुणात्मक ही प्रधान रूप से महत्वपूर्ण है। इसके बिना कोई भाषा अधिकारिक प्रयोक्ताओं को सहयोग प्राप्त नहीं कर सकती। हिन्दी के पक्ष में संख्यात्मकता का बड़ा बल रहा है, और आज भी वह है, किंतु न तो सदैव उसी को एकमात्र आधार मानकर उस पर निर्भर रहा जा सकता है और न इसे भुलाया जा सकता है कि उसके संख्यात्मक विकास में पहले भी उसका गुणात्मक विकास ही कारण था। आज की स्थिति में उस दिशा में उसका विकास और भी अधिक वांछित है।

गुणात्क विकास की दो विशेषताएं हो सकती हैं, ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का विकास और ज्ञानात्मक साहित्य की रचना और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास।

आज जिस संदर्भ में हिन्दी का विचार किया जा रहा है, उसमें ललित साहित्य के रूप में उसकी प्रौढ़ता का दर्शन उतना महत्वपूर्ण नहीं है। यह बात इस संदर्भ में बहुत प्रासंगिक नहीं है कि हिन्दी राष्ट्र की इस या उस भाषा की तुलना में कम सशक्त और प्रौढ़ है। राष्ट्र के सामने जो चुनौती है वह ललित साहित्य को लेकर नहीं है, व्यावहारिक धरातल पर भाषिक संपर्क और उसके माध्यम से पारस्परिक सहयोग की भूमि तैयार करने की है।

ललित साहित्य हो अथवा ज्ञानात्मक, दोनों ही संदर्भों में, किसी भाषा को दो स्तरों पर विकसित होना और अपनी क्षमता का परिचय देना पड़ता है। एक के अंतर्गत साहित्य की नाना प्रकार की विधाएं रखी जा सकती हैं और देखा जा सकता है कि उसमें अधिकाधिक कितनी विधाओं में रचना हो रही है, दूसरा है

विशेष विधाओं के लिए उपयुक्त भाषा और शब्दावली का विधान। हिन्दी के विकास के प्रसंग में भी इन दोनों बातों का समान महत्व है।

मनुष्य की बुद्धि ने जीवन और जगत के रहस्य को जानने और उसकी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करने का सदियों पहले से जो उपक्रम किया है उसके परिणाम स्वरूप अनेकविष ज्ञान शाखाओं के द्वार उन्मुक्त हुए हैं। दर्शन, गणित, ज्योतिष आयुर्वेद, कला शिल्प तथा खगोल विद्या आदि अनेक विद्या शाखाओं तक मनुष्य की पहुंच बहुत पहले ही हो चुकी थी। कालापसरण के साथ ज्यों-ज्यों मनुष्य के रागात्मक संबंध बनते-बिगड़ते गये उसके जीवन की संकुलता बढ़ती गई और प्रकृति तथा मानव जीवन को लेकर स्वयं मनुष्य नए रहस्यों में उलझता और नए आविष्कार करता चला गया। यंत्र युग ने मनुष्य की अनेक पुरानी अवधारणाओं को बदला और उनकी जगह नई विधाओं तथा नई तकनीक ने ले ली। परिणामत: न केवल अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ, या किसी एक विद्या शाखा के अन्तर्गत गृहीत विचारों में से कुछ स्वतुत्र विद्या शाखा के रूप में अधिकाधिक बढ़ता गया। तात्पर्य यह है कि आज ज्ञान के अनंत विस्तार को वाणी देने का काम सरल नहीं रह गया है। आज की विकासशील भाषा को इन सबको समेटते चलना है। पूछा जा सकता है कि क्या हिन्दी ऐसा कर पाई है?

आश्चर्यजनक नहीं होगा, यदि इस प्रश्न का उत्तर हिन्दी के पक्ष से नकारात्मक रूप में दिया जाये। जिस भाषा को सदियों विदेशी भाषाओं के शासन ने दबोच कर रखा और शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उभरने नहीं दिया है, उससे यह आशा कैसे की जा सकती है? यांत्रिक युग का यह एक बड़ा दूषण है कि मनुष्य पूंजी और व्यावसायिकता की दृष्टि से अपने कार्य कलाप को नियमित या नियंत्रित करता है। अतएव आधुनिक युग में जब यांत्रिकता के कारण यह संभव था कि हिन्दी का विकास हो तब भी शिक्षा तथा कार्य व्यवहार में माध्यम के रूप में उस स्थान न मिलने के कारण व्यवसायिक जगत में उसकी अर्थोपयोगिता सिद्ध नहीं हो पाई और इसलिए वांछित दिशाओं में बढ़ने का अवसर नहीं मिला। स्वतंत्रता पाने के बाद कुल 35 वर्षों के काल में जिन विषयों से वह शिक्षण माध्यम से जुड़ी उनमें उसका पर्याप्त विकस हुआ है। 'पर्याप्त' से तात्पर्य यह है कि स्नातक कक्षाओं तक विषय को समझने समझाने के लिए समाजशास्त्रीय और कुछ वैज्ञानिक विषयों में भी पुस्तकें अब उपलब्ध हैं और हिन्दी माध्यम से कला, वाणिज्य और विज्ञान में शिक्षा दी जा सकती है। दी जा रही है, यह कहना अधिक ठीक होगा। यह शिक्षा मात्र हिन्दी

प्रवेश तक सीमित हो ऐसा नहीं है। आंध्र प्रदेश में उसकी राजधानी हैदराबाद नगर में तीनों संकायों का हिन्दी माध्यम महाविद्यालय वर्षों से सफलतापूर्वक चल रहा है। फिर भी यह स्वीकार कर लेने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि इन विषयों में भी हिन्दी अभी पूर्णतयः स्वाबलंबिनी नहीं बन सकी है। साथ ही तकनीकि और विधि या आयुर्विज्ञान जैसे क्षेत्र प्रायः अछूते पड़े हैं।

इस स्थिति के प्रति असंतोष व्यक्त करते समय यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि एक तो जिन विषयों में अंग्रेजी तथा दूसरी विदेशी भाषाओं में विपुल साहित्य प्रकाशित हो चुका है, जिनमें नित नूतन आविष्कार और परिष्करण हो रहा है, जिनमें प्रचार-प्रसार के लिए पत्र पत्रिकाओं की अच्छी सुविधा उपलब्ध है और जिन विषयों की अभिव्यक्ति की एक बंधी सधी सिद्ध भाषा न केवल बन चुकी है, बल्कि उन विषयों में शिक्षित प्रयोक्ता जिनका अभ्यस्त बन चुका है और विदेशी भाषा का अभ्यास करते करते जिसे अपनी भाषा पर अधिकार नहीं रह गया है और इसलिए यह अनजानी और अटपटी लगने लगी है, उनके विषय में यह आशा करना कि तीस-पैंतीस वर्ष के अन्तराल में किसी भाषा में उनकी नींव भी पड़ जायेगी और स्रोत भाषा जैसा समृद्ध साहित्य भी तैयार हो जायेगा, दुराशा मात्र ही होगा।

अनुवाद का ही सहारा लिया जाए तो भी वैसा होना संभव नहीं है। भारत जैसे विशाल देश में जहां बहुसंख्यक प्रादेशिक भाषाओं को भी विकसित होना है और जिसे तकनीकी, औद्योगिक, और वैज्ञानिक विकास में यंत्र-युग की एक नई शक्ति बनने का चाव है। जहाँ दरिद्रता और अशिक्षता के दबाव में एक तो यों ही मनुष्य अनुपयोग या अपव्यय हो रहा हो और दूसरे अन्य सारे विकास की तुलना में शिक्षा का विकास एक गौण विषय बन गया हो, इस प्रकार के विकास में त्वरित सिद्धि की संभावना कम ही है। ऐसी स्थिति में संपूर्ण साहित्य को अपने में समेट कर चलने की अपेक्षा उचित यह होगा कि लक्ष्य भाषा की ऐसी आधारभूत सामग्री तैयार की जाए जिससे उसमें वांछित विषय की अभिव्यक्ति सुकर हो सके और आगे के लिए मौलिक चिंतन और लेखन की नींव पड़ सके। तैयारी इस बात की करनी है कि अब से अपनी बात अपने देश की भाषा में कहनी है इस बात की नहीं कि सबसे नाता तोड़ कर अपने आप में सिमट और सिकुड़ जाना है। अपने से अधिक सम्पन्न, समृद्ध और विकसित देशों की होड़ में खड़े होने के लिए न केवल यंत्रों की उपलब्धि काफी है, बल्कि उस साहित्य की जानकारी भी जरूरी है जिसमें उनकी उपयोगिता और संभावनाएँ भी वर्णित हैं।

स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में स्रोत भाषा से जी नहीं चुराया जा सकता। आज का युग अंतराबलंबन का है और विकसित देशों में भी अपनी समृद्ध भाषा में लिखे गये साहित्य के अतिरिक्त इतर देशीय भाषाओं में लिखित साहित्य से लाभ उठाया जाता है। फिर यह समझना कि हिन्दी में अपना कार्यव्यवहार आरंभ कर देने पर उसे छोड़ कर कोई दूसरी भाषा सामने रह ही नहीं जायेगीं बड़ी भारी भूल है। हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने पर भी उससे उससे अधिक समृद्ध और विकसित भाषा या भाषाओं का उपयोग बना रहेगा और विचारों के आदान-प्रदान के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी आवश्यकता भी बनी रह सकती है, किंतु उस स्थिति में आज की तरह हमारा सारा बल उस विदेशी भाषा को उसकी सारी सूक्ष्मताओं में पकड़ने और उसका हर दृष्टि से अधिकारी बनने पर नहीं होगा, बल्कि परकीय और दूसरी भाषा की तरह उसे जानने और उससे सार ग्रहण कर लेने पर होगा। हिन्दी को इसी धर्म में विकासशील बने रहना है, सर्वथा किसी द्वार को चंद करके अपना अधिराज कायम कर लेना उसका अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वैसा करने से स्वयं उसके विकास को ठेस पहुंचती है।

विधागत विशेष ज्ञान के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ हिन्दी को अंतर्देशीय व्यवहार की भाषा के रूप में भी पनपना और विकसित होना है। यहां भी उसका संबंध विभिन्न विषयों से रहेगा, किन्तु विधा या विषय की गहन सूक्ष्म विवेचना को अभिव्यक्ति देने की अपेक्षा यहां पारस्परिक व्यवहार के अपने तकाजे होते हैं। भाषा के संदर्भ में ये तकाजे उसकी रूप-रचना से संबंध रखते हैं। रूप रचना से हमारा तात्पर्य भाषा की शब्द सम्पत्ति, परिभाषिक शब्दावली का गठन, अभिव्यक्ति की सरलता या बोधगम्यता, पथ्यपरकता, लाघव और विषय सम्बद्धता से है। व्यावहारिक धरातल पर विकसित होने वाली किसी भी भाषा को इन या ऐसे ही अनेक तत्त्वों को अपने में समाहित करना पड़ता है। ध्यान रखना चाहिए कि व्यवहारिकता का अर्थ भाषा में कोई अंतर्विरोध है। इस प्रकार की स्वतंत्रता बोली रूप की सीमा से आगे नहीं बढ़ती। अपएव व्यवहार दृष्टि से किसी भाषा की तैयारी का अर्थ है उसके मानक रूप का सर्व सुलभ और सहज बोधगम्य रूप में तैयार होना। इसी संदर्भ में हिन्दी की स्थिति भी विचारणीय है।

व्यवहार्य भाषा के रूप में हिन्दी की सिद्धता का सबसे पहला आधार उसकी शब्दावली और शब्द संपति ही हो सकता है। यहां हमारा सामना 4 मुख्य प्रश्नों से होता है।

क्या हिन्दी के पास सब प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए शब्दावली है?

क्या वह शब्दावली इतनी व्यापक है कि जिना भाषाभाषियों के बीच उसे श्यवहुत होना है उन्हें भी उसमें कुछ परिचित सा लगे और यथाप्रसंग अपनी भाषा के शब्दों को उसमें प्रयुक्त देखकर वे न केवल इस बात का आत्मतोषलाभ कर सकें कि उनका सहयोग भी उस भाषा को प्राप्त है, बल्कि यह भी अनुभव करें कि उसका प्रयोग उनके लिए एकदम सहज न भी हो तो भी वह कठिन नहीं है।

क्या उसमें नए नए शब्दों की रचना की क्षमता है और क्या उसमें विविध ज्ञानशाखाओं के लिए परिभाषिक शब्दावली है? प्रश्न और भी हो सकते हैं।

इन प्रश्नों पर क्रमशः विचार करें। जहां तक सब प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, मोटे तौर पर किसी भी भाषा से यह अपेक्षा की जा सकती है कि उसमें सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने और उन्हें सुबोध बनाने के लिए अनुकूल शब्दावली हो, साथ ही उसमें उक्त लाघव भी हो। यों तो विद्वानों की राय में सभी भाषाएं विकसित होती रहती हैं, आवश्यकता अनुसार उनमें नए शब्दों का आदान या उनकी रचना में रूपांतरण होता रहता है। किन्तु विकासशील भाषाओं की यह समस्या कुछ अधिक गम्भीर होती है। जिस व्यवहार से होकर वे गुजरी हीं नहीं उसकी भरपूर अभिव्यक्ति की शक्ति भी उनमें नहीं हो सकती। फिर यदि उन भाषाओं को केवल शाब्दिक अनुवाद की भाषा का रूप दे दिया जाये तो वे न केवल अप्रकृत हो उठेंगीं, अपितु उनकी सहज संभावनाएं भी कुंठित हो जाएंगी। आरंभिक संक्रमण कालीन स्थिति में उसका उपयोग इसी शाब्दिक जरूरी नहीं है। हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा है कि प्रशासनिक व्यवहार में उसका उपयोग इसी शाब्दिक अनुवाद के लिए किया गया है, अपने प्रकृत स्वभाव को छोड़कर अंग्रेजी वाक्य विन्यास और शब्दावली के पीछे मक्खीमार रूप में भटकने के कारण उसका एक ऐसा कृत्रिम रूप उभरा है, जो सर्वजनबोध्य होना तो दूर स्वयं हिन्दी भाषियों के लिए भी दुर्बोध और कष्ट साध्य जान पड़ता है। उससे एक प्रकार की निरर्थक जटिलता उत्पन्न हुई है। यह निश्चय ही उसके विकासशीलता के लिए धातक है। साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी ने सूक्ष्म, जटिल और गहन भावों की अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता अर्जित की है और उसका उपयोग व्यवहार भाषा के धरातल पर भी किया जा सकता है, किंतु यदि नए चिंतन, नए आविष्कार और नए अभिव्यक्ति कौशल के कारण वह कहीं-कहीं अंग्रेजी की समकक्षता में नहीं खड़ी हो पाती, तो उसका

अर्थ यह नहीं है कि उसकी संभावनाओं को भी अनदेखा कर दिया जाये। उसकी प्रकृति की रक्षा करते हुए उसके विकास और संवर्द्धन के दूसरे उपायों का सहारा लेना चाहिए।

दूसरे प्रश्न का उत्तर इन्हीं दो उपायों में समाहित है। भाषा भावों व विचारों की वाहिका होती है। किंतु कोई भी भाषा संपूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं होती। उसकी क्षमता ग्रहण से बढ़ती है। उसी से उसमें व्यापकता आती है। हिन्दी को अपनी क्षमता बढ़ाने और उक्त प्रकार की अभिव्यक्ति का लक्ष्य भेद करने के लिए इसी ग्रहण उपाय से काम लेना होगा। भाषा का व्यापार विचित्र प्रकार का होता है। वह दूसरों की ऋणी होकर ही धनी होती है और उदार कहलाती है। हिन्दी को जिन भाषाओं के सहचर्य में बढ़ना और बड़ा होना है, उनसे शब्द ग्रहण करना उसके हित में है। इन हितकारियों में सबसे ऊँचा स्थान अपने देश की सहचरी भाषाओं का होना चाहिए, उसके बाद अंग्रेजी का। तात्पर्य यह है कि जहां तक किसी अभिव्यक्ति के लिए अपने देश की भाषा में शब्द मिल सकते हैं, उन्हें स्वीकार करते चलना चाहिए। कारण यह कि उससे परस्पर बंधुता बढ़ती है, पारस्परिक संवाद की भूमि तैयार होती है और हिन्दी में उन शब्दों की नई रचना की संभावनाएं बनी रहती है। लेकिन अंग्रेजी से शब्द ग्रहण करने और अपने देश की भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में अभी इस बात का अंतर बना रहेगा कि चूंकि अंग्रेजी इस देश में भी शिक्षितों के बीच सार्वजनिक भाषा बनाकर रही है और अपने देश की भाषाओं के बीच इस प्रकार का संपर्क बहुत ही क्षीण रहा है, अतएव अंग्रेजी शब्दों को जितनी शीघ्रता से व्यापक स्वीकृति मिल सकती है उतनी शीघ्रता से वैसा एकमत्य प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में, कम से कम आरंभ में, संभव न होगा। दूसरी अंग्रेजी शब्द सीधे हिन्दी में किए जा सकते है, किंतु भारतीय भाषाओं के बीच हुई आपसी दूरी के कारण यह काम सीधे हिन्दी भाषियों द्वारा नहीं किया जा सकता है। इसके लिए इन दूसरी भाषाओं को अपनी ओर से प्रदाता की भूमिका अपनानी पड़ेगी और यह तभी संभव है जब हिन्दीतर भाषाभाषियों द्वारा हिन्दी का व्यवहार हो। वे ही आवश्यकता होने पर अपनी भाषा के शब्दों को हिन्दी की बुनावट में ढाल सकेगें। यह काम और तीव्र गति से संभव हुआ होता यदि हिन्दी प्रदेशों में त्रिभाषा सूत्र को अपनाकर इतर भाषाओं को आत्मसात कर लिया होता।

फिर भी यह ध्यान रखना होगा कि शब्द ग्रहण अनियंत्रित गति से नहीं होता। यह नहीं है कि मनमाने ढंग से चाहे जिस शब्द को प्रयुक्त कर दिया जाए।

जिन शब्दों में जितनी ही अधिक अर्थव्यंजकता, संक्षिप्तता, उच्चारण सुकरता और सुखद नादमयता होगी वे उतने ही अधिक शीघ्रता से ग्रहण किये जा सकते हैं। किंतु एक तो इस प्रकार का ग्रहण तब तक नहीं होता जब तक कि मूल भाषा में योग्य शब्द मिलते रहते हैं, दूसरे जब कभी ग्रहण के प्रति खिन्नता बरती जाती है तो वह ऐसे स्थलों पर जहां दूसरी भाषा केवल व्यापक बनने के नाम पर किसी दूसरी भाषा के इतने अधिक शब्द नहीं ले सकती कि वह उनसे शक्ति पाते-पाते स्वयं दुर्बल और अक्षम प्रमाणित होन लगे। हमारे अंग्रेजी जब-जब बात बात में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते हैं और क्रिया, सर्वनाम या अव्यय को छोड़कर जब पूरा वाक्य अंग्रेजी के शब्दों से लद जाता है तो वह हिन्दी का गौरव नहीं बढ़ाता न उसे विशेष अर्थमय बनाता है, बल्कि इसके विपरीत या तो उसकी या उसके प्रयोक्ता की अक्षमता की प्रमाणित करता है और दोनों को उपहास का विषय बनाता है। अतएव आदान की भी एक सीमा है और मूल भषाओं की सम्भावनाओं की खत्म करके वैसा नहीं किया जा सकता। आदान प्रवाह आपतित शब्दों का ही होता है, और वह भी उसकी व्यंजकता आदि को उपयोगी पाकर ही। हिन्दी में न तो ऐसे शब्दों का ग्रहण अनुचित होगा और न ही ऐसे शब्दों का होगा जो भारतीय अन्यान्य भाषाओं में एक ही अर्थ में प्रचलित हैं और थोड़े बहुत रूप भेद के रहते भी सबोधता की दृष्टि से उपयोगी हैं।

किसी भाषा की शक्ति और सम्पन्नता केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं होती कि वह अपने शब्दकोष में कितने शब्द संभाले हुए हैं, बल्कि यह भी उसके लिए अनिवार्य है कि उसमें नवीन शब्दों की रचना की शक्ति हो। यह रचना शक्ति जहां प्रकृति प्रत्यय के योग से आती हैं, वहीं तत्सम, देशज और इतर शब्दों के तद्भवीकरण और रूपांतरीकरण से भी सिद्ध होती है। अनेक बार भाषा देशज शब्दों को ही उनके मूल रूप में अथवा उन्हें व्याकरण सिद्ध करके ऐसा रूप दे देती है कि वे उन्नत होकर तुल्यबल वाले और सम्मानीय बन जाते हैं। विकासशील भाषा के लिए यह गुण अमृत तुल्य है। हिन्दी में भी यह सद्गुण है, पर उसका झुकाव तत्समता की ओर है। मध्यकालीन कवियों में अरबी-फारसी के कितने ही शब्दों को अपनी भाषा में न केवल ज्यों का त्यों खपा लिया था, बल्कि उनको अपने रूप में भी ढाल लिया था। वह क्रम चलते रहना चाहिए था, किंतु तत्समता के साथ-साथ मूल उच्चारण की सुरक्षा का आधुनिक काल में ऐसा प्रवाह आया कि क्रम भंग हो गया। हम समझते हैं कि हिन्दी को अपनी उस शक्ति का उपयोग करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केवल तत्समीकरण उपयोगी न होगा।

हिन्दी में इस समय दोनों प्रवृत्तियां चल रही हैं। एक पक्ष है, जो तत्सम संस्कृत शब्दावली का प्रयोग करता है और दूसरा पक्ष समाजवादी या जनवादी है, जो उर्दू शब्दों के मिश्रण से उभरती भाषा का अपने लेखन में प्रयोग कर रहा है। हिन्दी आलोचना में तो यह स्थिति है, किंतु अन्य विषयों में अभी दूसरी शैली का प्रयोग नहीं हो रहा है। वहां अभी चूंकि हिन्दी का प्रायः अनुवाद भाषा के रूप में प्रयोग हो रहा है और अर्थशास्त्र आदि के लेखक मूलतः या तो अभी भी अंग्रेजी में सोंचने के अभ्यस्थ हैं या अपने लेखन में आधारा ग्रंथों के रूप में उन्हें अंग्रेजी ग्रंथों से ही सहारा मिलता है, और हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी संस्कृतनिष्ठ है, वे संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग कर रहे हैं। भविष्य में यदि हिन्दी का ऐसा रूप निखर सके जो संस्कृतनिष्ठ तो हो पर जिसमें हिन्दी की अपनी सरल अभिव्यक्ति को दबाकर कठिन संस्कृत पदावली का या इसी तरह अरबी फारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग न हो और आवश्यकता होने पर इतर भारतीय भाषाओं के शब्दों का मेल हो, तो हितकर होगा।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दाबली का बहुत कुछ निर्माण हो चुका है। फिर भी भाषा के विचार के साथ नई नई शब्दावली भी बनती रहती हैं, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी इस क्षेत्र में किसी अन्तिम सीमा पर पहुंच गई है। किंतु यह हिन्दी के ही क्यों, संसार की किसी भी भाषा के विषय में नहीं कहा जा सकता। एक बार पारिभाषिक शब्दावली की नींव पड़ जाने पर उस क्रम को आगे बढ़ाते जाना सहज और सरल हो जाता है, यदि विचार और अभिव्यक्ति भी उसी भाषा में हो। चूंकि इस प्रकार की शब्दावली की रचना में संक्षिप्तता को एक विशेष सद्‌गुण माना जाता है अतएव हिन्दी के लिए यही सबसे सुगम और सहज मार्ग माना गया कि उसकी शब्दावली को संस्कृत का आधार दिया जाये ताकि उसकी सामसिकता, संधि और और इतर विधियों का लाभ मिले। साथ ही यह भी माना गया है कि संस्कृत पर आधारित शब्दावली को अन्यान्य भाषाभाषी भी ग्रहण कर सकेंगें और वह शब्दावली सबके लिए सहज माध्यम हो सकेगी। सहज संपर्क के लिए देश में एक ही पारिभाषिक शब्दावली का होना आवश्यक है। किंतु इस विषय में भी मतभेद और आपत्तियों की कमी नहीं है। भिन्न प्रदेशों में संस्कृत के ही शब्दों से एक ही अंग्रेजी शब्द के लिए भिन्न शब्दों का निर्माण, प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को ज्यों का त्यों अपनाने की आकांक्षा, नवनिर्मित शब्दों का अनभ्यस्त कानों को अटपटा लगना, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बोध और संप्रेषण के लिए उपयोगिता और अपनी अपनी भाषा में पारिभाषिक

शब्दावली के निर्माण के द्वारा उसकी समृद्धि की चिंता ने हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली की स्वीकृति के विपक्ष में अनेक समस्याएं उत्पन्न की हैं, जिससे उसका विकास प्रभावित हुआ है। यहां तक कि तब तो रेडियो की तुलना में आकाशवाणी शब्द भी खीझ और उपेक्षा का विषय हो गया है।

हम यहां भाषा की राजनीति में न जाकर केवल यह मानकर चलते हैं कि हिन्दी को अपने ही हित के लिए दृढ़ता से उस नीति का अनुसरण करना है जिससे वह समृद्ध और सशक्त होती जाये और उसकी सर्वग्राह्यता बनी रहे। इसमें संदेह नहीं है कि पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के विषय में संस्कृत का आधार ही लेना होगा, किंतु उसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाए कि मनुष्य को अतीत की स्मृति सताती तो बहुत है और वह उसे वर्तमान की अपेक्षा सुखद भी मान लिया करता है फिर भी कोई वर्तमान को छोड़कर वही जीवन नहीं जीना चाहता। अतीत तो उसे केवल शक्ति और संतोष देता है, उसके संस्कार बड़ी सूक्ष्मता से उसके वर्तमान में तार तार बिंधे रहते हैं, लेकिन नए संदर्भ में अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हुए। भाषा का व्यवहार भी कमोवेश वैसा ही होता है। वर्तमान में जो हमारा स्वभाव बन गया है और जिस भाषा का प्रयोग शिक्षितों के बीच होता आ रहा है, उसे सहसा त्यागकर संस्कृत की ओर लौटने की कल्पना सुखद तो हो सकती है, लेकिन उतनी ही दूर तक जहां तक वह हमारे वर्तमान और अभ्यास के मेल में रहे। अतएव हम समझते हैं कि पारिभाषिक शब्दों में सबसे पहले सम्मानीय और स्वीकार्य तो वे हैं, जो संस्कृत और अरबी फारसी से आकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी खप गये हैं और जिनकी अलग से पहिचान कराने की किसी को आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे वे हैं, जो आधुनिक ज्ञान की सही अभिव्यक्ति के लिए हमारे यहां दर्शन, धर्म नीति और साहित्य आदि से अभी भी लिए जा सकते हैं और अपन उच्चारण सौंकर्य के कारण सहज ग्राह्य होने की सम्भावना रखते हैं। तीसरे वे हैं, जो वर्तमान में अंग्रेजी के माध्यम से आये हैं और जिनको हम अपनी भाषा के उच्चारण में ढाल कर अपने लिए और वैसे ही दूसरों के लिए भी, सह्य और अर्थवान बनाए रह सकते हैं। चौथे वे हैं जिन्हें भिन्न पर्याय के रूप में भारतीय भाषाओं में प्रचलित देखते हैं और जिनके बीच से अधिक प्रचलन और अधिक स्वीकृति या सहमति के आधार पर चयन किया जा सकता है। पांचवें जो कई शब्दों के योग के कारण उच्चारण में उत्पन्न असुविधा या विलंब से बचने के लिए संकेत शब्दावली के रूप में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में समान रूप से मान्य हैं और छठे तथा अंतिम वे

हैं, जो न तो किसी रूप में ढाले जा सकते हैं, न जिनके लिए कोई सरल और अर्थवान पर्याय हम दे सकते हैं। उन्हे ज्यों का त्यों लेना ही पड़ेगा और उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जिस दिन वे धिस पिट कर या तो हमारे अनुकूल हो जाएंगे या उस ज्ञान शाखा में बढ़ते बढ़ते किसी दिन इस धरती का कोई नया शब्द सहसा जन्म ले लेगा।

भाषा की रूप रचना का संबंध पारिभाषिक अथवा अन्य प्रकार की शब्दावली के अतिरिक्त उसके व्याकरण, उसके लाघव और उसकी जटिलता या सरलता से भी है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण है सूक्ष्म और सही अर्थाभिव्यक्ति। व्याकरण भाषा का नियामक है और उसे परिनिष्ठित बनाता है। भाषा में वह एक रूपता लाता है और उसे निरंकुशता से बचाता है। एकरूपता सरलता की वाहिका भी होती है और सूक्ष्म अभिव्यक्ति की सहायिका भी। अन्यथा अनेक शब्द रूपों और संबंध तत्त्वों के एक ही बात के लिए प्रचलन से सुनिश्चित और अटपटापन बना रहता है और अर्थ की दुविधा बनी रहती है। अन्य भाषाभाषियों को किसी भी दूसरी भाषा के सीखने में व्याकरण की भिन्नता के कारण सामान्यत: कुछ कठिनाई का अनुभव होता ही है, पर उससे कोई भाषा इस तरह प्रभावित नहीं होती कि अपने मूल रूप को परिवर्तित कर दे। परिवर्तन आता है कुछ लोगों के विशिष्ट प्रयोगों के प्रचलन से। उन प्रयोंगों की भी अर्थ की दृष्टि से कोई न कोई सार्थकता होनी चाहिए अत: हिन्दी के व्याकरण को भी बदला जा सकता है तो इस प्रकार के सार्थक और विशिष्ट प्रयोगों से ही भाषा को सीखने में व्याकरण को बाधक मानकर उसे सहज गति से लेना चाहिए और उस के माध्यम से हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए। हिन्दी के विकास के लिए उसमें अनावश्यक जोड-तोड़ करने से भाषा की एकरूपता सिद्ध होगी न उस जोड़-तोड़ की कोई सीमा रहेगी। व्याकरण की सीमा में रहते हुए भाषा के संबंध तत्त्वों के ग्रहण त्याग, शब्द संगठन, सूक्ष्म भेद, पुनुरुक्ति अथवा विस्तार में से बचत और स्पष्ट किंतु पैने और एकदम लक्ष्यानुसारी हिन्दी के लेखन का प्रयत्न जितना उसके विकास में साधक हो सकता है, उतना दूसरा तत्त्व नहीं। हमारी समझ से विषय और रूप की उस सन्धि की उपलब्धि में ही हिन्दी का विकास निहित है। यहां इस विषय में अधिक विस्तार के लिए अवकाश नहीं है, अन्यथा वास्तविकता यह है कि उक्त बातों को कुछ और अधिक स्पष्टता से प्रस्तुत करना उचित होता।

आदिम भाषा

भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाली मनुष्य जातियों के आकार, स्वभाव आदि की परस्पर तुलना करने से ज्ञात होता है कि उनमें आश्चर्यजनक और अद्‌भुत समानता है। विदित होता है कि सृष्टि के आदि में सब मनुष्यों के पूर्वज एक ही थे। वे एक ही स्थान पर रहते थे और एक ही आचार-व्यवहार करते थे। इसी प्रकार, यदि भिन्न-भिन्न भाषाओं के मुख्य-मुख्य नियमों और शब्दों की परस्पर तुलना की जाय तो उनमें भी विचित्र सादृश्य दिखाई देता है। उससे यह प्रकट होता है कि हम सबके पूर्वज पहले एक ही भाषा बोलते थे। जिस प्रकार आदिम स्थान से पृथक् होकर लोग जहाँ-तहाँ चले गए और भिन्न-भिन्न जातियों में विभक्त हो गए, उसी प्रकार उस आदिम भाषा से भी कितनी ही भिन्न-भिन्न भाषाएँ उत्पन्न हो गईं।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मनुष्य पहले-पहल एशिया खंड के मध्य भाग में रहता था। जैसे-जैसे उसकी संतति बढ़ती गई, क्रम-क्रम से लोग अपना मूल स्थान छोड़ अन्य देशों में जा बसे। इसी प्रकार यह भी एक अनुमान है कि नाना प्रकार की भाषा एक ही मूल भाषा से निकलती है। पाश्चात्य विद्वान् पहले यह समझते थे कि इब्रानी भाषा से, जिसमें यहूदी लोगों के धर्मग्रंथ हैं, सब भाषाएँ निकली हैं, परंतु उन्हें संस्कृत का ज्ञान होने और शब्दों के मूल रूपों का पता लगने से यह ज्ञात हुआ है कि एक ऐसी आदिम भाषा से, जिसका पता लगना कठिन है, संसार की सब भाषाएँ निकली हैं और वे तीन भागों में बांटी जा सकती हैं–

1 आर्यभाषाएँ– इस भाग में-संस्कृत, प्राकृत (और उससे निकली-हुई भारतवर्ष की प्रचलित आर्यभाषाएँ), अँग्रेजी, फारसी, यूनानी, लैटिन आदि भाषाएँ

2 शामी भाषाएँ – इस भाग में इब्रानी, अरबी और हब्शी भाषाएँ हैं।

3 तूरानी भाषाएँ – इस भाग में मुगली, चीनी, जापानी, द्राविड़ी (दक्षिणी हिंदुस्तान की) भाषाएँ और तुर्की आदि भाषाएँ हैं।

तत्सम

तत्सम (तत् सम = उसके समान) आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त ऐसे शब्द जिनको संस्कृत से बिना कोई रूप बदले ले लिया गया है। हिन्दी, बांग्ला, कोंकणी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तेलुगू कन्नड, मलयालम, सिंहल आदि में बहुत से शब्द संस्कृत से सीधे ले लिए गये हैं क्योंकि इनमें से कई भाषाएँ संस्कृत से जन्मी हैं।

नोट– गुजराती,बंगला,मराठी आदि से हिंदी में आए शब्द विदेशज की श्रेणी में ही आयेंगे।

तत्सम शब्दों में समय और परिस्थियों के कारण कुछ परिवर्तन होने से जो शब्द बने हैं उन्हें तद्भव (तत् भव = उससे उत्पन्न) कहते हैं। भारतीय भाषाओं में तत्सम और तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। इसके अलावा इन भाषाओं के कुछ शब्द 'देशज' और अन्य कुछ 'विदेशी' हैं

हिंदी में सभी क्रियापद व सर्वनाम तद्भव हैं। सभी तद्भव शब्दों का तत्सम रूप होना अवश्यंभावी है।

हिन्दी में प्रयुक्त कुछ तत्सम कुमार शब्दों के तद्भव रूप

तत्सम –
आभीर – अहेर
आर्य – आरज
अनार्य –अनाड़ी
आश्विन –आसोज
आश्चर्य – अचरज
अक्षर – अच्छर
अगम्य – अगम
अक्षत – अच्छत
अक्षय –आखा

तत्सम और तद्भव शब्द

उन शब्दों को छोड़कर जो फारसी, अरबी, तुर्की, अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं के हैं (और जिनकी संख्या बहुत थोडी केवल दशमांश है) अन्य शब्द हिंदी में मुख्य तीन प्रकार के हैं–

(1) तत्सम,
(2) तद्भव,
(3) अर्द्धतत्सम।

तत्सम वे संस्कृत शब्द हैं, जो अपने असली स्वरूप में हिंदी भाषा में प्रचलित हैं, जैसे राजा, पिता, कवि, आज्ञा, अग्नि, वायु, वत्स, भ्राता इत्यादि।

तद्भव वे शब्द हैं, जो या तो सीधे प्राकृत से हिंदी भाषा में आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं, जैसे राय, खेत, दाहिना, किसान।

अर्द्धतत्सम उन संस्कृत शब्दों को कहते हैं, जो प्राकृत भाषा बोलने वालों के उच्चारण से बिगड़ते-बिगड़ते कुछ और ही रूप के हो गए हैं, जैसे बच्छ, अर्थो, मुँह, बंस, इत्यादि।

बहुत से शब्द तीनों रूपों में मिलते हैं, परंतु कई शब्दों के सब रूप नहीं पाए जाते। हिंदी के क्रिया शब्द प्रायः सबके सब तद्भव हैं। यही अवस्था सर्वनामों की है। बहुत से संज्ञा शब्द तत्सम या तद्भव हैं और कुछ अर्द्धतत्सम हो गए हैं। तत्सम और तद्भव शब्दों में रूप की भिन्नता के साथ बहुधा अर्थ की भिन्नता भी होती है। तत्सम प्रायः सामान्य अर्थ में आता है और तद्भव शब्द विशेष अर्थ में, जैसे स्थान सामान्य नाम है, पर ' थाना' एक विशेष स्थान का नाम है। कभी-कभी तत्सम शब्द से गुरुता का अर्थ निकलता है और तद्भव से लघुता का, जैसे देखना साधारण लोगों के लिए आता है, पर 'दर्शन' किसी बड़े आदमी या देवता के लिए। कभी-कभी तत्सम के दो अर्थों में से तद्भव से केवल एक ही अर्थ सूचित होता है, जैसे-वंश का अर्थ कटंब' भी है, और 'बाँस' भी है, पर तद्भव 'बाँस' से एक ही अर्थ निकलता है।

देशज और अनुकरणवाचक शब्द

हिंदी में और भी दो प्रकार के शब्द पाए जाते हैं–

(1) देशज (2) अनुकरणवाचक।

देशज वे शब्द हैं, जो किसी संस्कृत (या प्राकृत) मूल से निकले हुए नहीं जान पड़ते और जिनकी उत्पत्ति का पता नहीं लगता, जैसे तेंदुआ, खिड़की, धूआ, ठेस इत्यादि।

ऐसे शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है और संभव है कि आधुनिक आर्यभाषाओं की बढ़ती नियमों की अधिक खोज और पहचान होने से अंत में इनकी संख्या बहुत कम जो जाएगी।

पदार्थ की यथार्थ अथवा कल्पित ध्वनि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाए गए हैं वे अनुकरणवाचक शब्द कहलाते हैं, जैसे खटखटाना, धड़ाम, चट आदि।

विदेशी शब्द

फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी आदि भाषाओं से जो शब्द हिंदी में आए हैं, वे विदेशी कहते हैं, अंग्रेजी से आजकल भी शब्दों की भरती जारी है। विदेशी

शब्द हिंदी में ध्वनि के अनुसार अथवा बिगड़े हुए उच्चारण के अनुसार लिखे जाते हैं। इस विषय का पता लगाना कठिन है कि हिंदी में किस-किस समय पर कौन से विदेशी शब्द आए हैं, पर ये शब्द भाषा में मिल गए हैं और इनमें कोई-कोई शब्द ऐसे हैं जिनके समानार्थी हिंदी शब्द बहुत समय से अप्रचलित हो गए हैं। भारतवर्ष की और प्रचलित भाषाओं विशेषकर मराठी और बँगला से भी कुछ शब्द हिंदी में आए हैं। कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी गई है–

(1) फारसी– आदमी, उम्मीदवार, कमर, खर्च, गुलाब, चश्मा, चालू चापलूस, दाग, दुकान, बाग, मोजा इत्यादि।

(2) अरबी– अदालत, इस्तिहान, एतराज, औरत, तनखाह, तारीख, मुकदमा, सिफारिश, हाल इत्यादि।

(3) तुर्की– कोतल,, चकमक, तगमा, तोप, लाश इत्यादि।

(4) पोर्चुगीज– कमरा, - नीलाम, पादरी, भारतौल, पेरू।

(5) अंग्रेजी– अपील, इंच, कलक्टर, कमेटी, कोट,, गिलास,, टिकट,, टीन, नोटिस, डाक्टर, डिगरी,, पतलून, फंड, फीस, फुट, मील, रेल, लाट, लालटेन, समन, स्कूल इत्यादि।

(6) मराठी प्रगति, लागू चालू बाड़ा, बाजू (ओर, तरफ) इत्यादि।

टोला उपन्यास, प्राणपण, आत, भद्रलोग (भले आदमी), गल्प, नितांत इत्यादि।

हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास

राष्ट्रभाषा का शाब्दिक अर्थ है। समस्त राष्ट्र में प्रयुक्त भाषा अर्थात् आमजन की भाषा (जनभाषा)। जो भाषा समस्त राष्ट्र में जन-जन के विचार-विनिमय का माध्यम हो, वह राष्ट्रभाषा कहलाती है।

राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता एवं अंतर्राष्ट्रीय संवाद सम्पर्क की आवश्यकता की उपज होती है। वैसे तो सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषाएँ होती हैं, किन्तु राष्ट्र की जनता जब स्थानीय एवं तत्कालिक हितों व पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र की कई भाषाओं में से किसी एक भाषा को चुनकर उसे राष्ट्रीय अस्मिता का एक आवश्यक उपादान समझने लगती है तो वही राष्ट्रभाषा है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रभाषा की आवश्यकता होती है। भारत के सन्दर्भ में इस आवश्यकता की पूर्ति हिंदी ने की। यही कारण है कि हिंदी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रभाषा बनी।

राष्ट्रभाषा शब्द कोई संवैधानिक शब्द नहीं है, बल्कि यह प्रयोगात्मक, व्यावहारिक व जनमान्यता प्राप्त शब्द है।

राष्ट्रभाषा सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर देश को जोड़ने का काम करती है अर्थात् राष्ट्रभाषा की प्राथमिक शर्त देश में विभिन्न समुदायों के बीच भावनात्मक एकता स्थापित करना है।

राष्ट्रभाषा का प्रयोग क्षेत्र विस्तृत और देशव्यापी होता है। राष्ट्रभाषा सारे देश की सम्पर्क-भाषा होती है। इसका व्यापक जनाधार होता है।

राष्ट्रभाषा हमेशा स्वभाषा ही हो सकती है क्योंकि उसी के साथ जनता का भावनात्मक लगाव होता है।

राष्ट्रभाषा का स्वरूप लचीला होता है और इसे जनता के अनुरूप किसी रूप में ढाला जा सकता है।

अंग्रेजों का योगदान

राष्ट्रभाषा सारे देश की सम्पर्क भाषा होती है। हिंदी दीर्घकाल से सारे देश में जन-जन के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा रही है। यह केवल उत्तरी भारत की नहीं, बल्कि दक्षिण भारत के आचार्यों वल्लभाचार्य, रामानुज, रामानंद आदि ने भी इसी भाषा के माध्यम से अपने मतों का प्रचार किया था। अहिंदी भाषी राज्यों के भक्त-संत कवियों (जैसे–असम के शंकरदेव, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर व नामदेव, गुजरात के नरसी मेहता, बंगाल के चौतन्य आदि) ने इसी भाषा को अपने धर्म और साहित्य का माध्यम बनाया था।

यही कारण था कि जनता और सरकार के बीच संवाद स्थापना के क्रम में फारसी या अंग्रेजी के माध्यम से दिक्कतें पेश आईं तो कम्पनी सरकार ने फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग खोलकर अधिकारियों को हिंदी सिखाने की व्यवस्था की। यहाँ से हिंदी पढ़े हुए अधिकारियों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उसका प्रत्यक्ष लाभ देकर मुक्त कंठ से हिंदी को सराहा।

सी. टी. मेटकाफ ने 1806 ई. में अपने शिक्षा गुरु जॉन गिलक्राइस्ट को लिखा– 'भारत के जिस भाग में भी मुझे काम करना पड़ा है, कलकत्ता से लेकर लाहौर तक, कुमाऊँ के पहाड़ों से लेकर नर्मदा नदी तक मैंने उस भाषा का आम व्यवहार देखा है, जिसकी शिक्षा आपने मुझे दी है। मैं कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक या जावा से सिंधु तक इस विश्वास से यात्रा करने की

हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जाएँगे जो हिन्दुस्तानी बोल लेते होंगे।'

टॉमस रोबक ने 1807 ई. में लिखा– 'जैसे इंग्लैण्ड जाने वाले को लैटिन सेक्सन या फ्रेंच के बदले अंग्रेजी सीखनी चाहिए, वैसे ही भारत आने वाले को अरबी-फारसी या संस्कृत के बदले हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिए।'

विलियम केरी ने 1816 ई. में लिखा– 'हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है।'

एच. टी. कोलब्रुक ने लिखा– 'जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रान्त के लोग करते हैं, जो पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ दोनों की साधारण बोलचाल की भाषा है, जिसको प्रत्येक गाँव में थोड़े बहुत लोग अवश्य ही समझ लेते हैं, उसी का यथार्थ नाम हिंदी है।'

जार्ज ग्रियर्सन ने हिंदी को 'आम बोलचाल की महाभाषा' कहा है।

इन विद्वानों के मंतव्यों से स्पष्ट है कि हिंदी की व्यावहारिक उपयोगिता, देशव्यापी प्रसार एवं प्रयोगगत लचीलेपन के कारण अंग्रेजों ने हिंदी को अपनाया। उस समय हिंदी और उर्दू को एक ही भाषा माना जाता था। अंग्रेजों ने हिंदी को प्रयोग में लाकर हिंदी की महती संभावनाओं की ओर राष्ट्रीय नेताओं एवं साहित्यकारों का ध्यान खींचा।

धर्म-समाज सुधारकों का योगदान

धर्म-समाज सुधार की प्रायः सभी संस्थाओं ने हिंदी के महत्त्व को भाँपा और हिंदी की हिमायत की।

ब्रह्म समाज (1828 ई.) के संस्थापक राजा राममोहन राय ने कहा, इस समग्र देश की एकता के लिए हिंदी अनिवार्य है। ब्रह्मसमाजी केशव चंद्र सेन ने 1875 ई. में एक लेख लिखा, भारतीय एकता कैसे हो, 'जिसमें उन्होंने लिखा– उपाय है सारे भारत में एक ही भाषा का व्यवहार। अभी जितनी भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं, उनमें हिंदी भाषा लगभग सभी जगह प्रचलित है। यह हिंदी अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बन जाए तो यह काम सहज ही और शीघ्र ही सम्पन्न हो सकता है। एक अन्य ब्रह्मसमाजी नवीन चंद्र राय ने पंजाब में हिंदी के विकास के लिए स्तुत्य योगदान दिया।

आर्य समाज (1875 ई.) के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती गुजराती भाषी थे एवं गुजराती व संस्कृत के अच्छे जानकार थे। हिंदी का उन्हें सिर्फ

कामचलाऊ ज्ञान था, पर अपनी बात अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए तथा देश की एकता को मजबूत करने के लिए उन्होंने अपना सारा धार्मिक साहित्य हिंदी में ही लिखा। उनका कहना था कि हिंदी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। वे इस 'आर्यभाषा' को सर्वात्मना देशोन्नति का मुख्य आधार मानते थे। उन्होंने हिंदी के प्रयोग को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। वे कहते थे, 'मेरी आँखें उस दिन को देखना चाहती हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जाएँगे।

दर्शन के प्रणेता अरविन्द घोष की सलाह थी कि 'लोग अपनी-अपनी मातृभाषा की रक्षा करते हुए सामान्य भाषा के रूप में हिंदी को ग्रहण करें।'

थियोसोफिकल सोसाइटी (1875 ई.) की संचालिका एनी बेसेंट ने कहा था, 'भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में जो अनेक देशी भाषाएँ बोली जाती हैं, उनमें एक भाषा ऐसी है जिसमें शेष सब भाषाओं की अपेक्षा एक भारी विशेषता है, वह यह कि उसका प्रचार सबसे अधिक है। वह भाषा हिंदी है। हिंदी जानने वाला आदमी सम्पूर्ण भारतवर्ष में यात्रा कर सकता है और उसे हर जगह हिंदी बोलने वाले मिल सकते हैं। भारत के सभी स्कूलों में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए।'

उपर्युक्त धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं के अतिरिक्त प्रार्थना समाज, सनातन धर्म सभा, रामकृष्ण मिशन आदि ने हिंदी के प्रचार में योग दिया।

इससे लगता है कि धर्म-सुधारकों की यह सोच बन चुकी थी कि राष्ट्रीय स्तर पर संवाद स्थापित करने के लिए हिंदी आवश्यक है। वे जानते थे कि हिंदी बहुसंख्यक जन की भाषा है, एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त के लोगों से सिर्फ इस भाषा में ही विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। भावी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को बढ़ाने का कार्य इन्हीं धर्म-समाज सुधारकों ने किया।

कांग्रेस के नेताओं का योगदान

1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना हुई। जैसे-जैसे कांग्रेस का राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ता गया, वैसे-वैसे राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय झण्डा एवं राष्ट्रभाषा के प्रति आग्रह बढ़ता ही गया।

1917 ई. में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा, 'यद्यपि मैं उन लोगों में से हूँ, जो चाहते हैं और जिनका विचार है कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।' तिलक ने भारतवासियों से आग्रह किया कि वे हिंदी सीखें।

महात्मा गाँधी राष्ट्र के लिए राष्ट्रभाषा को नितांत आवश्यक मानते थे। उनका कहना था, 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।' गाँधीजी हिंदी के प्रश्न को स्वराज का प्रश्न मानते थे– 'हिंदी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।' उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सामने रखकर भाषा-समस्या पर गम्भीरता से विचार किया। 1917 ई. में भड़ौंच में आयोजित गुजरात शिक्षा परिषद के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण देते हुए गाँधीजी ने कहा,

राष्ट्रभाषा के लिए 5 लक्षण या शर्तें होनी चाहिए–

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।
3. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का अपनी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए।
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।'

वर्ष 1918 ई. में हिंदी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में सभापति पद से भाषण देते हुए गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा हिंदी का समर्थन किया, 'मेरा यह मत है कि हिंदी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए।' इसी अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि प्रतिवर्ष 6 दक्षिण भारतीय युवक हिंदी सीखने के लिए प्रयाग भेजें जाएँ और 6 उत्तर भारतीय युवक को दक्षिण भाषाएँ सीखने तथा हिंदी का प्रसार करने के लिए दक्षिण भारत में भेजा जाए। इन्दौर सम्मेलन के बाद उन्होंने हिंदी के कार्य को राष्ट्रीय व्रत बना दिया। दक्षिण में प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में गाँधीजी ने अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गाँधी को दक्षिण में चेन्नई भेजा। गाँधीजी की प्रेरणा से मद्रास (1927 ई.) एवं वर्धा (1936 ई.) में राष्ट्रभाषा प्रचार सभाएँ स्थापित की गईं।

वर्ष 1925 ई. में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में गाँधीजी की प्रेरणा से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि 'कांग्रेस का, कांग्रेस की महासमिति का और कार्यकारिणी समिति का काम-काज आमतौर पर हिंदी में चलाया जाएगा।' इस प्रस्ताव में हिंदी-आंदोलन को बड़ा बल मिला।

वर्ष 1927 ई. में गाँधीजी ने लिखा, 'वास्तव में ये अंग्रेजी में बोलने वाले नेता हैं, जो आम जनता में हमारा काम जल्दी आगे बढ़ने नहीं देते। वे हिंदी सीखने

से इंकार करते हैं, जबकि हिंदी द्रविड़ प्रदेश में भी तीन महीने के अन्दर सीखी जा सकती है।

वर्ष 1927 ई. में सी. राजगोपालाचारी ने दक्षिण वालों को हिंदी सीखने की सलाह दी और कहा, 'हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, यही जनतंत्रत्मक भारत में राजभाषा भी होगी।'

वर्ष 1928 ई. में प्रस्तुत नेहरू रिपोर्ट में भाषा सम्बन्धी सिफारिश में कहा गया था, 'देवनागरी अथवा फारसी में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी भारत की राष्ट्रभाषा होगी, परन्तु कुछ समय के लिए अंग्रेजी का उपयोग जारी रहेगा।' सिवाय 'देवनागरी या फारसी' की जगह 'देवनागरी' तथा 'हिन्दुस्तानी' की जगह 'हिंदी' रख देने के अंततः स्वतंत्र भारत के संविधान में इसी मत को अपना लिया गया।

वर्ष 1929 ई. में सुभाषचंद्र बोस ने कहा, 'प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती। अपनी प्रान्तीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिए, उसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते हैं। पर सारे प्रान्तों की सार्वजनिक भाषा का पद हिंदी या हिन्दुस्तानी को ही मिला है।'

वर्ष 1931 ई. में गाँधीजी ने लिखा, 'यदि स्वराज्य अंगेजी-पढ़े भारतवासियों का है और केवल उनके लिए है तो सम्पर्क भाषा अवश्य अंग्रेजी होगी। यदि वह करोड़ों भूखे लोगों, करोड़ों निरक्षर लोगों, निरक्षर स्त्रियों, सताए हुए अछूतों के लिए है तो सम्पर्क भाषा केवल हिंदी हो सकती है।' गाँधीजी जनता की बात जनता की भाषा में करने के पक्षधर थे।

वर्ष 1936 ई. में गाँधीजी ने कहा, 'अगर हिन्दुस्तान को सचमुच आगे बढ़ना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी और भाषा को नहीं मिल सकता है।'

वर्ष 1937 ई. में देश के कुछ राज्यों में कांग्रेस मंत्रिमंडल गठित हुआ। इन राज्यों में हिंदी की पढ़ाई को प्रोत्साहित करने का संकल्प लिया गया।

जैसे-जैसे स्वतंत्रता संग्राम तीव्रतम होता गया वैसे-वैसे हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का आंदोलन जोर पकड़ता गया। 20वीं सदी के चौथे दशक तक हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में आम सहमति प्राप्त कर चुकी थी। वर्ष 1942 से 1945 का समय ऐसा था जब देश में स्वतंत्रता की लहर सबसे अधिक तीव्र थी, तब राष्ट्रभाषा से ओत-प्रोत जितनी रचनाएँ हिंदी में लिखी गईं उतनी शायद किसी

और भाषा में इतने व्यापक रूप से कभी नहीं लिखी गई। राष्ट्रभाषा प्रचार के साथ राष्ट्रीयता के प्रबल हो जाने पर अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा।

हिंदी के संवर्धन में प्रयोजनमूलक हिंदी की भूमिका

हिंदी विश्व की समृद्धतम भाषाओं में एक है। ''राजभाषा'' के रूप में हिंदी का प्रयोग भारतीय संविधान के निर्माण के साथ ही प्रारंभ नहीं हुआ वरन उसके बहुत पहले विभिन्न रूपों में हो चुका था। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ सन् 1800 ई. से रूड़ी बोली हिंदी के पठन-पाठन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय दस्तावेज है स्वाधीन भारत के संविधान का प्रारूप ''नेहरू रिपोर्ट'' (पृष्ठ सं0-165-166) जिसमें भारत की सर्वमान्य भाषा हिंदी हिंदुस्तानी घोषित की गई। संविधान सभा ने 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया। भारतीय संविधान द्वारा खड़ी बोली हिंदी को राजभाषा स्वीकार किए जाने के साथ हिंदी का परंपरागत अर्थ, स्वरूप तथा व्यवहार क्षेत्र व्यापकतर हो गया।

पहले हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का सीधा-सादा अर्थ प्रायः भाषाशास्त्रीय अथवा व्याकरणिक समस्याओं तक सीमित था और साहित्य का संबंध रसान्वेषण से रसनिष्पत्ति तक, किन्तु जैसे ही हिंदी राजभाषा की नवीन भूमिका में प्रस्तुत हुई उसकी एक नए सिरे से पहचान होनी आरंभ हुई। अब वह सिर्फ कहानी, उपन्यास, नाटक अथवा कविता जैसी ललित या बोध कथाओं की विधा में साहित्यिक अभिप्रायों को व्यक्त करने का माध्यम नहीं रही, बल्कि प्रशासन, विधान, न्याय शिक्षा तथा पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों की अभिव्यक्ति का भी माध्यम बन गई।

पुरानी कहावत ''आवश्यकता आविष्कार की जननी है'' को चरितार्थ करते हुए कल तक जिन (अनछूए) विषयों को व्यक्त करने की जरूरत हिंदी को नहीं पड़ती थी, राजभाषा के पद पर आसीन होने के बाद उसकी जरूरत हिंदी को पड़ने लगी और यहीं से सामने आया हिंदी का विकसित रूप-- जरूरत के मुताबिक रूप-- प्रयोजनमूलक हिंदी, प्रयोजन विशेष के लिए विशिष्ट पारिभाषिक शब्दोंवाली हिंदी-- मानकीकरण, अनुवाद आदि के द्वारा जिसके प्रयोजनों की पूर्ति होती है। डॉ. कामेश्वर शरण सहाय ने प्रयोजनमूलक हिंदी की शुरूआत के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है ''भारतीय संविधान के भाग-17 के राजभाषा संबंधी चार अध्यायों में अनुच्छेद 343 से 351 तक अनेक वर्ण

प्रयुक्त प्रयोजन शब्द से भाषा की जो भूमिका अभिप्रेत है राजभाषा के रूप में उसी भूमिका के प्रयोजन या उद्देश्य से प्रयोजनमूलक हिंदी की अवधारणा प्रतिपादित एवं प्रचलित हुई है।''

डॉ. कामेश्वर सहाय ने प्रयोजनमूलक शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "प्रयोजनमूलकह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, प्रयोजन मूलक। जिसमें प्रयोजन विशेषण है तो मूलक उपसर्ग। प्रयोजन का अर्थ होता है "उद्देश्य'' तो मूलक का अर्थ है "आधारित''। अत: प्रयोजनमूलक भाषा का अर्थ हुआ-'' किसी निश्चित लक्ष्य को ध्यान में रखकर प्रयुक्त की गयी भाषा''।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, विभिन्न प्रयोजनों के लिए भाषा के प्रयोग तथा उनसे संबद्ध एवं उद्‌भूत परिवर्तो (Variants) का विश्लेषण एवं निश्चयन समाजभाषा विज्ञान करता है, वे आगे कहते हैं कि विभिन्न प्रयोजनों के लिए गठित समाज यथा बैंक का समाज, किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला का समाज, डॉक्टर,इंजीनियरी का समाज अलग-अलग होता है, समाज के इन खण्डों द्वारा किसी भाषा के विभिन्न रूप या परिवर्त ही उस भाषा में इस प्रकार के रूप हैं। यों, जो समाज जितना ही कम विकसित तथा विभिन्न क्षेत्रों में कम विशेषीकृत होगा उसकी भाषा के प्रयोजनमूलक रूप भी उतने कम होंगे। इसके विपरित जो समाज जितना ही अधिक विकसित और विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञीकृत होगा, उसकी भाषा के ये प्रयोजनमूलक रूप भी उतने ही अधिक होंगे। इस तरह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किसी समाज की विशेषज्ञता जितनी ही बढ़ती जाती है, इन प्रयोजनमूलक भाषाओं की संख्या भी बढ़ती जाती है।

हिंदी का जन्म जब 1000 ई. के आस-पास हुआ तो वह केवल बोलचाल की भाषा थी, सामान्य जीवन तथा उससे संबंधित यथा खेती, व्यापार, लुहारी, बढ़ईगिरी, कुम्हारी, सिलाईगिरी आदि आवश्यक क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता था और इनसे जुड़े हुए विशेषीकृत रूप थे किन्तु ये संख्या में बहुत ही कम थे, कालक्रम में जैसे-जैसे साहित्य, ज्योतिष धर्म आदि अन्य विशिष्ट क्षेत्रों में हिंदी भाषा का प्रयोग बढ़ता गया वैसे-वैसे इसके प्रयोजनमूलक विभिन्न रूप की विकसित होते गए। मध्यकाल में प्रशासनिक, कलईगिरी वस्त्र-उद्योग आदि कई दृष्टियों से हिंदी-भाषी जनता की नई विशेषज्ञताएं बढ़ी, अत: हिंदी के प्रयोजनमूलक नए रूप भी अस्तित्त्व में आए। अंग्रेजी शासन में यूरोपीय संपर्क से हमारा सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक, ढाँचा काफी बदला, धीरे-धीरे हमारे जीवन में नई उपलब्धियों जैसे कि पत्रकारिता, इंजीनियरी, बैंकिंग, शेयर बाजार,

मेडिकल आदि आयीं और तदनुकूल हिंदी के नए प्रयोजनमूलक भाषिक रूप भी उभरे। भारत के अलावा सूरी, मौरिशस, फिजी तथा वियतनाम आदि देशों में भी हिंदी अपना पैर जमाने लगी।

प्रयुक्ति और प्रयोजन से रहित भाषा अब भाषा ही नहीं रह गई है। औद्योगिक क्रांति के चलते भाषा बहुआयामी हो गई है। भारतीय जनमानस हिंदी के किसी न किसी रूप को अपने दैनिक प्रेषण व्यवहार में साधन बनाता है, प्रयुक्तियों को अपनाता है। भाषा की सामाजिक, व्यावहारिक प्रयुक्तियों के साथ प्रयोजनमूलक भाषा की चर्चा का सीधा और अपरिहार्य संबंध है। सामाजिक प्रयुक्ति के धरातल पर कोई भी भाषा हमेशा एक जैसी नहीं रहती, विषय, अभिव्यक्ति और सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप भाषा के अनेक चेहरे हमारे सामने आते हैं। न्यायालय में जैसी हिंदी चलती है ठीक वैसी ही हिंदी विज्ञापनों के लिए उपयोगी नहीं होती, साहित्यकार की हिंदी कार्यालय की हिंदी से भिन्न है। अलग-अलग स्थितियों और स्थलों पर भाषा की अलग-अलग प्रयुक्तियां हैं। कोई भी भाषा समाज में जितने अधिक क्षेत्रों में प्रयुक्त होगी उसकी प्रयुक्तियां भी उतनी ही अधिक होती है, भाषा की प्रयुक्तियों संसार बहुआयामी है।

प्रयोजनमूलक हिंदी का भाषा की श्रीवृद्धि और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान है। भाषा का अर्थ बोलना मान लें तो, कुछ बातें जो महत्व की है, वे है।

(1) भाषा किस के प्रति बोली जाएगी?
(2) भाषा में क्या बोला जाएगा?
(3) भाषा कहां बोली जाएगी?

स्पष्ट है कि भाषा के स्वरूप पर व्यक्ति, विषय और परिवेश तीनों का प्रभाव होता है जिसका इशारा कुल मिलाकर प्रयोजन की तरफ ही है।प्रयोजन की दृष्टि से भाषा के दो प्रमुख स्वरूप स्वीकार किए जा सकते हैं पहला, वह भाषा जो आदमी अपने रोजमर्रा की जिन्दगी में इस्तेमाल करता है। दूसरा, जिसका उपयोग वह किसी विशेष प्रयोजन या संदर्भों में करता है। पहले रूप की भाषा को सीखने के लिए व्याकरण की कसरत नहीं करनी पड़ती। समाज में रहते हुए इसे एक-दूसरे के साथ उठते-बैठते आसानी से सीखा जा सकता है, किन्तु दूसरी रूप वाली भाषा को सीखने के लिए मेहनत करनी पड़ती है। इसमें रुचि एक महत्वपूर्ण कारक है। आवश्यकतावश इसे दबाब में सीखना ही पड़ता है। इसी

भाषा को व्यवहार क्षेत्र में प्रयोजनमूलक भाषा कहते हैं। इसकी अपनी विशिष्ट प्रयोजनपरक तकनीकी शब्दावली तथा पदावली होती है।

हिंदी के पास न्याय, दर्शन, तर्कशास्त्र, नाट्यशास्त्र, मनोविज्ञान, गणित आदि की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त शब्द थे, पर पश्चिम से आई टेक्नोलॉजी, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र कंप्यूटर, इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक, दूरसंचार आदि के लिए तकनीकी एवं प्रयोजनमूलक शब्दों की जरूरत महसूस हुई। इसी के साथ-साथ प्रशासन, विधि, व्यवसाय, वाणिज्य, खेलकूद, पत्रकारिता से जुड़े पारिभाषिक शब्दों की जरूरत महसूस हुई। उदाहरणा,

संगीतशास्त्र के लिए मात्र, लय, ताल, सुर, गंधर्व, मल्हार भैरवि आदि,

योगशास्त्र के लिए समाधि, उदान, इड़ा, पिंगला आदि,

राजनीतिशास्त्र के लिए अधिकार, कर्तव्य, संप्रभुता, सत्याग्रह, आंदोलन आदि,

विधिशास्त्र के लिए सनद, संज्ञेय अपराध, प्रावधान आदि,

दर्शनशास्त्र के लिए आनंद, निरानंद, आत्मा, परमात्मा आदि,

भाषाशास्त्र के लिए आनुनासिक, अधोष, सधोष, अल्पप्राण, महाप्राण आदि,

शिक्षा-परीक्षा के लिए- संचालन, मूल्यांकन, वीक्षक आदि शब्द रचे गढ़े गए,

प्रयोजनमूलक हिंदी शिक्षा, संस्कृति, कला, खेल, श्रम एवं नियोजन विधि एवं न्याय, वैज्ञानिक एवं उर्जा मंत्रालयों के लिए पारिभाषिक शब्द निर्माण में प्रयासरत है।

सामान्य भाषा तो नींव है, इस पर विविध प्रकार के विषय रूपी भवनों का निर्माण प्रयोजनमूलक भाषा करती है। अर्थशास्त्र मनोविज्ञान, शिक्षा, विधि, प्रशासन, वाणिज्य व्यापार, खेलकूद आदि की भाषा की अपनी एक पृथक विशेषता होती है। साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता को भी इसमें दक्षता प्राप्त करनी होगी। इस प्रकार सामान्य हिंदी की नींव पर प्रयोजनमूलक हिंदी का भव्य भवन निर्मित होती है। आज साहित्यिक हिंदी के समानान्तर प्रयोजनमूलक हिंदी के पठन-पाठन की अनिवार्यता को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्वीकृति दे दी है। भारत के विश्वविद्यालयों तथा अधीनस्थ महाविद्यालयों में प्रयोजनमूलक हिंदी के पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य

प्रान्तीय भाषाओं से सम्बद्ध इस तरह के पाठ्यक्रम आरंभ किये जा रहे हैं। यह पाठ्यक्रम एक प्रकार से आवश्यक भी है।

क्योंकि युवकों एवं युवतियों को पढ़-लिखकर किसी न किसी क्षेत्र में जीवनयापन हेतु कार्य करना पड़ता है यहां पर मात्र साहित्यिक या सामान्य भाषा का ज्ञान उसको पूर्णता प्रदान नहीं कर सकता, अत: उनके लिए भाषा के प्रयोजनमूलक रूप का ज्ञान अतिआवश्यक है।

वस्तुत: आज प्रयोजनमूलक हिंदी देश के बहुत बड़े फलक और धरातल पर प्रयोग में लाई जा रही है। केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच संवादों का पुल स्थापित करने में आज इसकी महती भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। आज इसने एक ओर कंप्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक हेलीप्रिंटर, टेलेक्स, तार, दूरदर्शन, रेडियो, डाक, अखबार, फिल्म और विज्ञापन आदि जनसंचार के सभी माध्यमों को अपने लपेटे में ले लिया है तो दूसरी ओर शेयर बाजार, रेल, हवाई जहाज, बीमा उद्योग, बैंक आदि संस्थानों, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्रों, आयुर्विज्ञान, कृषि, चिकित्सा, शिक्षा, ए.एम.आई.ई. के साथ विभिन्न संस्थानों में हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण दिलाने, कॉलेजों विश्वविद्यालयों, सरकारी-अर्द्ध सरकारी कार्यालयों, चिट्टी-पत्री,लेटर-पैड, स्टॉक-रजिस्टर, लिफाफे, मुहरें, नामपट्ट स्टेशनरी के साथ-साथ कार्यालय ज्ञापन, परिपत्र, आदेश, राजपत्र, अधिसूचना, अनुस्मारक, प्रेस-विज्ञप्ति, निविदा,अपील, निलामी, पत्र-पावती आदि में यह बहुत आसानी से प्रयोग की जा रही है। इतना ही नहीं, भारत देश के संपूर्ण तीर्थ स्थलों, पर्यटन स्थलों में तो इसके शिष्ट रूप का प्रयोग हो रहा है साथ ही साथ इसने आज बाजार और औद्योगिकता के दबाब के कारण गॉव के हाट-बाजार गली-चौराहे, कल-कारखाने, कचहरी और सब्जी मंडियों में भी अपने आगमन की सूचना और पुकार दे दी है।

2

राष्ट्रभाषा और हिन्दी

भारतीय संविधान में किसी भी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में हिंदी को माना गया है। सरकार ने 22 भाषाओं को आधिकारिक भाषा के रूप में जगह दी है जिसमें केन्द्र सरकार या राज्य सरकार अपने जगह के अनुसार किसी भी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में चुन सकती है। केन्द्र सरकार ने अपने कार्यों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में जगह दी है। इसके अलावा अलग-अलग राज्यों में स्थानीय भाषा के अनुसार भी अलग अलग आधिकारिक भाषाओं को चुना गया है। फिलहाल 22 आधिकारिक भाषाओं में असमी, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओडिया, पंजाबी, संस्कृत, संतली, सिंधी, तमिल, तेलुगू, बोड़ो, डोगरी, बंगाली और गुजराती है।

वर्तमान में सभी 22 भाषाओं को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। 2010 में गुजरात उच्च न्यायालय ने भी सभी भाषाओं को समान अधिकार के साथ रखने की बात की थी, हालांकि न्यायालयों और कई स्थानों में केवल अंग्रेजी भाषा को ही जगह दिया गया है।

भारत एक विशाल देश है। इसमें अनेक जाति, धर्मावलंबी और अनेक भाषा-भाषी निवास करते हैं। हमारे गणतंत्रीय संविधान में देश को धर्म-निरपेक्ष घोषित किया गया है। इसीलिए विभिन्न धर्मावलंबी अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार धर्माचरण करने के लिए स्वतंत्र हैं।

ऐसी स्थिति में धार्मिक आधार पर देश में एकता स्थापित नहीं हो सकती। विभिन्न जातियों, धर्मावलंबियों और भाषा-भाषियों के बीच एकता स्थापित करने का एक सबल साधन भाषा ही है। भाषा में एकता स्थापित करने की अदभूत शक्ति होती है। प्राचीन काल में विभिन्न मत-मतांतरों के माननेवाले लोग थे, परंतु संस्कृत ने उन सबको एकता के सूत्र में जकड़ रखा था। उस समय संपूर्ण भारत में संस्कृत बोली, लिखी और समझी जाती थी।

स्वराज-प्राप्ति के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं ने इस सत्य की अवहेलना नहीं की थी। उन्होंने सर्वोसम्मति से हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित किया था और यह इसलिए कि भारत के अधिक-से-अधिक लोगों की भाषा हिंदी थी तथा उसमें देश का संपूर्ण शासकीय कार्य और प्रचार-प्रसार आसानी से हो सकता था।

संविधान सभा में हिंदी भाषा-भाषी भी थे और अहिंदी भाषा-भाषी भी। उसमें अहिंदी भाषा-भाषियों का बहुमत था। उन्हीं के आग्रह से यह भी निर्णय किया गया था कि पंद्रह वर्षों में हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी, परंतु आज तक यह निर्णय खटाई में पड़ा हुआ है।

सन् 1963 और 1968 में भाषा संबंधी नीति में जो परिवर्तन किए गए हैं, उनके अनुसार हिंदी के साथ अंग्रेजी भी चल सकती है, पर वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी के साथ हिंदी घसीटी जा रही है। ऐसी है राष्ट्रभाषा के प्रति हमारी आदर- भावना ।

देश में अनेक समृद्ध भाषाओं के होते हुए हिंदी को ही राष्ट्रभाषा के लिए क्यों चुना गया-यह प्रश्न किया जा सकता है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा के निम्नलिखित लक्षण निश्चित किए-

1. वह भाषा सरकारी नौकरी के लिए आसान होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारत का धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक काम-काज निर्विध्न तथा सुचारु रूप से होना चाहिए।
3. उस भाषा को भारत के ज्यादातर लोग बोलते हों।
4. वह भाषा जन सामान्य के लिए सहज, सरल व बोधगम्य होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक अथवा अस्थायी स्थिति पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

भारत की सभी भाषाओं का जन्म या तो संस्कृत से हुआ है या उन्होंने अपने को समृद्ध बनाने के लिए संस्कृत शब्दावली को अधिकाधिक स्थान दिया है। दक्षिण

की भाषाएँ- तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम आदि आर्येतर कही जाती हैं, परंतु इन सब पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में संस्कृत का प्रभाव पड़ा है।

इनकी अपनी-अपनी स्वतंत्र लिपियाँ हैं। अतः इनमें से कोई भाषा राष्ट्रभाषा होने की पात्रता नहीं रखती। बँगला, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी आदि भाषाओं के क्षेत्र अत्यंत सीमित हैं। इसलिए वे भी राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण नहीं कर सकतीं। अंग्रेजी विदेशी भाषा है। उसे हमारे देश के 3-4 प्रतिशत लोग ही जानते हैं, डसलिए उसे राष्ट्रभाषा बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता हाँ, दुर्भाग्यवश कुछ लोगों का उसके प्रति इतना गहरा लगाव है कि वे उससे चिपके हुए हैं और आए दिन उसकी वकालत किया करते हैं।

हमारे देश पर मुसलमानों ने लंबे समय तक शासन किया। उन्होंने अपनी भाषा अरबी, फारसी को शासकीय कार्यों तक ही सीमित रखा। उनके बाद अंग्रेज आए। उनकी नीति साम्राज्यवादी थी। उन्होंने अंग्रेजी भाषा को कचहरियों तक ही सीमित नहीं रखा, हमारी संस्कृति और सभ्यता का उन्मूलन कर उसके स्थान पर अपनी संस्कृति और सभ्यता का प्रचार-प्रसार करने के लिए उसे सार्वजनिक शिक्षा का माध्यम भी बना दिया। इससे क्षेत्रीय भाषाओं का विकास रुक गया और कोई भाषा अखिल भारतीय स्वरूप धारण नहीं कर सकी।

राष्ट्र के जीवन में राष्ट्रभाषा का विशेष महत्त्व होता है। सीमांत गांधी के शब्दों में- "जब राष्ट्र की अपनी भाषा समाप्त हो जाती है तब वह राष्ट्र ही समाप्त हो जाता है। प्रत्येक जाति अपनी भाषा से ही पहचानी जाती है। भाषा की उन्नति ही उस जाति की उन्नति है। जो जाति अपनी भाषा को भुला देती है, वह संसार से मिट जाती है।"

इसलिए हमें अपनी मातृभाषा का गौरव बढ़ाने के साथ-साथ अपनी राष्ट्रभाषा का गौरव भी बढ़ाना चाहिए। सामाजिक और राजनीतिक एकता को सुदृढ़ रखने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना परम आवश्यक है, और हमारे देश में वह राष्ट्रभाषा केवल हिंदी ही हो सकती है।

बोली, विभाषा, भाषा और राजभाषा

यों बोली, विभाषा और भाषा का मौलिक अन्तर बता पाना कठिन है, क्योंकि इसमें मुख्यतया अन्तर व्यवहार-क्षेत्र के विस्तार पर निर्भर है। वैयक्तिक विविधता के चलते एक समाज में चलने वाली एक ही भाषा के कई रूप दिखाई देते हैं। मुख्य रूप से भाषा के इन रूपों को हम इस प्रकार देखते हैं।

(1) बोली,
(2) विभाषा और
(3) भाषा (अर्थात् परिनिष्ठित या आदर्श भाषा)।

बोली भाषा की छोटी इकाई है। इसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल से रहता है। इसमें प्रधानता व्यक्तिगत बोली की रहती है और देशज शब्दों तथा घरेलू शब्दावली का बाहुल्य होता है। यह मुख्य रूप से बोलचाल की ही भाषा है। अत: इसमें साहित्यिक रचनाओं का प्राय: अभाव रहता है। व्याकरणिक दृष्टि से भी इसमें असाधुता होती है।

विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा विस्तृत होता है यह एक प्रान्त या उपप्रान्त में प्रचलित होती है। एक विभाषा में स्थानीय भेदों के आधार पर कई बेलियां प्रचलित रहती हैं। विभाषा में साहित्यिक रचनाएं मिल सकती हैं।

भाषा, अथवा कहें परिनिष्ठित भाषा या आदर्श भाषा, विभाषा की विकसित स्थिति हैं। इसे राष्ट्र-भाषा या टकसाली-भाषा भी कहा जाता है।

प्राय: देखा जाता है कि विभिन्न विभाषाओं में से कोई एक विभाषा अपने गुण-गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि, जन-सामान्य में अधिक प्रचलन आदि के आधार पर राजकार्य के लिए चुन ली जाती है और उसे राजभाषा के रूप में या राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाता है।

राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा

किसी प्रदेश की राज्य सरकार के द्वारा उस राज्य के अंतर्गत प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे राज्यभाषा कहते हैं। यह भाषा सम्पूर्ण प्रदेश के अधिकांश जन-समुदाय द्वारा बोली और समझी जाती है। प्रशासनिक दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य में सर्वत्र इस भाषा को महत्त्व प्राप्त रहता है।

भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए हिन्दी के अतिरिक्त 21 अन्य भाषाएं राजभाषा स्वीकार की गई हैं। संविधान की अष्टम अनुसुचि में कुल 22 भारतीय भाषाओं को स्थान प्राप्त हुआ है। राज्यों की विधानसभाएं बहुमत के आधार पर किसी एक भाषा को अथवा चाहें तो एक से अधिक भाषाओं को अपने राज्य की राज्यभाषा घोषित कर सकती हैं।

राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। प्राय: वह अधिकाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है। प्राय: राष्ट्रभाषा ही

किसी देश की राजभाषा होती है। भारत में 22 भारतीय भाषाएं राष्ट्रभाषाएं मानी जाती हैं।

राजभाषा हिन्दी की विकास-यात्रा

स्वतंत्रता पूर्व

1833-86—गुजराती के महान कवि श्री नर्मद (1833-86) ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का विचार रखा।

1872—आर्य समाज के संस्थापक महार्षि दयानंद सरस्वती जी कलकत्ता में केशवचन्द्र सेन से मिले तो उन्होंने स्वामी जी को यह सलाह दे डाली कि आप संस्कृत छोड़कर हिन्दी बोलना आरम्भ कर दें तो भारत का असीम कल्याण हो। तभी से स्वामी जी के व्याख्यानों की भाषा हिन्दी हो गयी और शायद इसी कारण स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश की भाषा भी हिन्दी ही रखी। (देखें, आर्यसमाज की हिन्दी-सेवा)।

1873— महेन्द्र भट्टाचार्य द्वारा हिन्दी में पदार्थ विज्ञान की रचना।

1877—श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती नामक हिन्दी उपन्यास की रचना की।

1893—काशी नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना।

1918—मराठी भाषी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से घोषित किया कि हिन्दी भारत की राजभाषा होगी।

1918—महात्मा गांधी द्वारा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना।

1930— का दशक—हिन्दी टाइपराइटर का विकास (शैलेन्द्र मेहता)।

1935—मद्रास राज्य के मुख्यमंत्री रूप में सी0 राजगोपालाचारी ने हिन्दी शिक्षा को अनिवार्य कर दिया।

स्वतंत्रता के बाद

14 सितम्बर 1949

संविधान सभा ने हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। इस दिन को अब हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

26 जवनरी 1950

संविधान लागू हुआ। तदनुसार उसमें किए गए भाषाई प्रावधान (अनुच्छेद 120, 210 तथा 343 से 351) लागू हुए।

1952

शिक्षा मंत्रालय द्वारा हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण ऐच्छिक तौर पर प्रारम्भ किया गया।

27 मई 1952

राज्यपालों-उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियों में अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा व भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के अतिरिक्त अंकों के देवनागरी स्वरूप का प्रयोग प्राधिकृत किया गया।

जुलाई, 1955

हिन्दी शिक्षण योजना की स्थापना। केन्द्र सरकार के मंत्रालयों, विभागों, संबद्ध व अधीनस्थ कर्मचारियों को सेवाकालीन प्रशिक्षण।

7 जून 1955

बी.जी. खेर आयोग का गठन (संविधान के अनुच्छेद 344 (1) के अन्तर्गत)

अक्टूबर,1955

गृह मंत्रालय के अन्तर्गत हिन्दी शिक्षण योजना प्रारम्भ की गई।

3 दिसम्बर 1955

संविधान के अनुच्छेद 343 (2) के परन्तुक द्वारा दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए संघ के कुछ कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का प्रयोग किए जाने के आदेश जारी किए गए।

31 जुलाई 1956

खेर आयोग की रिपोर्ट राष्ट्रपति जी को प्रस्तुत की गई।

1957

खेर आयोग की रिपोर्ट पर विचार हेतु तत्कालीन गृह मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत की अध्यक्षता में संसदीय समिति का गठन।

8 फरवरी 1959

संविधान के अनुच्छेद 344 (4) के अन्तर्गत संसदीय समिति की रिपोर्ट राष्ट्रपति जी को प्रस्तुत की गई।

सितम्बर, 1959

संसदीय समिति की रिपोर्ट पर संसद में बहस। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा आश्वासन दिया गया कि अंग्रेजी को सह-भाषा के रूप में प्रयोग में लाए जाने हेतु कोई व्यावधान उत्पन्न नहीं किया जाएगा और न ही इसके लिए कोई समय-सीमा ही निर्धारित की जाएगी। भारत की सभी भाषाएं समान रूप से आदरणीय हैं और ये हमारी राष्ट्रभाषाएं हैं।

1960

हिन्दी टंकण, हिन्दी आशुलिपि का अनिवार्य प्रशिक्षण आरम्भ किया गया।

27 अप्रैल1960

संसदीय समिति की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति के आदेश जारी किए गए जिनमें हिन्दी शब्दावलियों का निर्माण, संहिताओं व कार्यविधिक साहित्य का हिंदी अनुवाद, कर्मचारियों को हिंदी का प्रशिक्षण, हिंदी प्रचार, विधेयकों की भाषा, उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों की भाषा आदि मुद्दे हैं।

10 मई 1963

अनुच्छेद 343(3) के प्रावधान व श्री जवाहर लाल नेहरू के आश्वासन को ध्यान में रखते हुए राजभाषा अधिनियम बनाया गया। इसके अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा व अंग्रेजी सह-राजभाषा के रूप में प्रयोग में लाई गई।

5 सितम्बर 1967

प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय हिन्दी समिति का गठन किया गया। यह समिति सरकार की राजभाषा नीति के संबंध में महत्वपूर्ण दिशा-निदेश देने वाली सर्वोच्च समिति है। इस समिति में प्रधानमंत्री जी के अलावा नामित केन्द्रीय मंत्री, कुछ राज्यों के मुख्यमंत्री, सांसद तथा हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान सदस्य के रूप में शामिल किए जाते हैं।

16 दिसम्बर 1967

संसद के दोनों सदनों द्वारा राजभाषा संकल्प पारित किया गया जिसमें हिन्दी के राजकीय प्रयोजनों हेतु उत्तरोत्तर प्रयोग के लिए अधिक गहन और व्यापक कार्यक्रम तैयार करने, प्रगति की समीक्षा के लिए वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करने, हिन्दी के साथ -साथ 8वीं अनुसूची की अन्य भाषाओं के समन्वित विकास के लिए कार्यक्रम तैयार करने, त्रिभाषा सूत्र का अपनाये जाने, संघ सेवाओं के लिए भर्ती के समय हिन्दी व अंग्रेजी में से किसी एक के ज्ञान की आवश्यकता अपेक्षित होने तथा संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उचित समय पर परीक्षा के लिए संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की बात कही गई है। (संकल्प 18. अगस्त,1968 को प्रकाशित हुआ)

1967

सिंधी भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित की गई।

8 जनवरी 1968

राजभाषा अधिनियम, 1963 में संशोधन किए गए। तदनुसार धारा 3 (4) में यह प्रावधान किया गया कि हिंदी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण संघ सरकार के कर्मचारी प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें तथा केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं, उनका कोई अहित न हो। धारा 3 (5) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए आवश्यक है कि सभी राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा (जिनकी राजभाषा हिंदी नहीं है) ऐसे संकल्प पारित किए जाएं तथा उन संकल्पों पर विचार करने के पश्चात अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त करने के लिए संसद के हरेक सदन द्वारा संकल्प पारित किया जाए।

1968

राजभाषा संकल्प 1968 में किए गए प्रावधान के अनुसार वर्ष 1968-69 से राजभाषा हिन्दी में कार्य करने के लिए विभिन्न मदों के लक्ष्य निर्धारित किए गए तथा इसके लिए वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया गया।

1 मार्च 1971

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो का गठन।

1973

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के दिल्ली स्थिति मुख्यालय में एक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना।

1974

तीसरी श्रेणी के नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों तथा कार्य प्रभारित कर्मचारियों को छोड़कर केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के साथ-साथ केन्द्र सरकार के स्वामित्व एवं नियंत्रणाधीन निगमों, उपक्रमों, बैंकों आदि के कर्मचारियों व अधिकारियों के लिए हिन्दी भाषा, टंकण एवं आशुलिपि का अनिवार्य प्रशिक्षण।

जून, 1975

राजभाषा से संबंधित संवैधानिक, विधिक उपबंधों के कार्यान्वयन हेतु राजभाषा विभाग का गठन किया गया।

1976

राजभाषा नियम बनाए गए।

1976

संसदीय राजभाषा समिति का गठन। तब से अब तक समिति ने अपनी रिपोर्ट के 8 भाग प्रस्तुत किए हैं जिनमें से प्रथम 7 पर राष्ट्रपति के आदेश जारी हो गए हैं। आठवें खण्ड में की गई संस्तुतियों पर मंत्रालयों व राज्य सरकारों की टिप्पणी प्राप्त की जा रही है।

1977

श्री अटल बिहारी वाजपेयी, तत्कालीन विदेश मंत्री ने पहली बार संयुक्त राष्ट्र की आम सभा को हिंदी में संबोधित किया।

1981

केन्द्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा संवर्ग का गठन किया गया।

25 अक्टूबर1983

केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों, विभागों, सरकारी उपक्रमों, राष्ट्रीयकृत बैंकों में यांत्रिक और इलेक्ट्रानिक उपकरणों द्वारा हिन्दी में कार्य को बढ़ावा देने तथा उपलब्ध द्विभाषी उपकरणों के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से राजभाषा विभाग में तकनीकी कक्ष की स्थापना की गई।

21 अगस्त.1985

केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान का गठन कर्मचारियों अधिकारियों को हिन्दी भाषा, हिन्दी टंकण और हिन्दी आशुलिपि के पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराने के लिए किया गया।

1986

कोठारी शिक्षा आयोग की रिपोर्ट। 1968 में पहले ही यह सिफारिश की जा चुकी थी कि भारत में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं होनी चाहिए। उच्च शिक्षा के माध्यम के संबंध में नई शिक्षा नीति (1986) के कार्यान्वयन - कार्यक्रम में कहा गया -

स्कूल स्तर पर आधुनिक भारतीय भाषाएं पहले ही शिक्षण माध्यम के रूप में प्रयुक्त हो रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विश्वविद्यालय के स्तर पर भी इन्हें उत्तरोत्तर माध्यम के रूप में अपना लिया जाए। इसके लिए अपेक्षा यह है कि राज्य सरकारें, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से परामर्श करके, सभी विषयों में और सभी स्तरों पर शिक्षण माध्यम के रूप में उत्तरोत्तर आधुनिक भारतीय भाषाओं को अपनाएं।

1986-87

इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार प्रारम्भ किए गए।

9 अक्टूबर 1987

राजभाषा नियम, 1976 में संशोधन किए गए।

1988

विदेश मंत्री के रूप में संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेम्बली में तत्कालीन विदेश मंत्री श्री नरसिंह राव जी हिंदी में बोले।

1992

कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली भाषाएं संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित की गई।

14 सितम्बर 1999

संघ की राजभाषा हिंदी की स्वर्ण जयंती मनाई गई।

24 जनवरी 2000

राजभाषा विभाग का पोर्टल का लोकार्पण माननीय गृह मंत्री जी द्वारा किया गया जिसमें विभाग से संबंधित विभिन्न जानकारियां द्विभाषिक रूप में उपलब्ध कराई गई।

20 अक्टूबर 2000

राष्ट्रीय ज्ञान विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार वर्ष 2001-02 से आरंभ करने की घोषणा की गई जिसमें निम्न पुरस्कार राशियां हैं –

(1) प्रथम प्ररस्कार - 100000 रुपये

(2) द्वितीय प्ररस्कार - 75000 रुपये

(3) तृतीय पुरस्कार - 50000 रुपये

- 100000 रुपये

2 सितम्बर 2003

डॉ. सीता कान्त महापात्र की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जो संविधान की आठवीं अनुसूची में अन्य भाषाओं को सम्मिलित किए जाने तथा आठवीं अनुसूची में सभी भाषाओं को संघ की राजभाषा घोषित किए जाने की साध्यता परखने पर विचार करेगी। समिति ने 14. जून .2004 को अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत की।

11 सितम्बर 2003

मंत्रिमंडल ने एन.डी.ए. तथा सी.डी.एस. की परीक्षाओं में प्रश्न पत्रों को हिंदी में भी तैयार करने का निर्णय लिया।

14 सितम्बर 2003

कंप्यूटर की सहायता से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी स्वयं सीखने के लिए राजभाषा विभाग ने कंप्यूटर प्रोग्राम (लीला हिंदी प्रबोध, लीला हिंदी प्रवीण, लीला हिंदी प्राज्ञ) तैयार करवा कर सर्व साधारण द्वारा उसका निशुल्क प्रयोग के लिए उसे राजभाषा विभाग की वैब साइट पर उपलब्ध करा दिया है।

8 जनबरी 2004

बोडो, डोगरी, मैथिली तथा सांथाली भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में रखा।

22 जून 2004

केन्द्रीय सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालन ध्कार्यान्वयन के लिए न्यूनतम हिन्दी पदों के मानक पुन निर्धारित।

6 सितम्बर 2004

मातृभाषा विकास परिषद् द्वारा दायर एक जनहित याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के गठन का उद्देश्य हिंदी एवं अन्य आधुनिक भाषाओं के लिए तकनीकी शब्दावली में

एकरूपता अपनाया जाना है। यह एकरूपता तकनीकी शब्दावली के प्रयोग के लिए आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय ने निदेश दिया कि आयोग द्वारा बनाई गई तकनीकी शब्दावली भारत सरकार के अंतर्गत एन.सी.ई.आर.टी तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा तैयार की जा रही पाठय पुस्तकों में प्रयोग में लाई जाए।

14 सितम्बर 2004

कंप्यूटर की सहायता से तमिल, तेलुगू, मलयालम तथा कन्नड़ भाषाओं के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी स्वयं सीखने के लिए कंप्यूटर प्रोग्राम तैयार करवा कर उसके निशुल्क प्रयोग के लिए उसे राजभाषा विभाग की वैब साइट पर उपलब्ध करा दिया।

20 जून 2005

525 हिंदी फोंट, फोंट कोड कनवर्टर, अंग्रेजी - हिंदी शब्दकोश, हिंदी स्पेल चेकर को निशुल्क प्रयोग के लिए वेब साइट पर उपलब्ध करा दिया गया।

8 अगस्त 2005

राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार का नाम बदल कर राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार कर दिया गया तथा पुरस्कार राशि बढ़ा कर निम्न प्रकार कर दी गई –

प्रथम पुरस्कार - रु0 2 लाख
द्वितीय पुरस्कार - रु0 1.25 लाख
तृतीय पुरस्कार - रु0 0.75 लाख
सांत्वना पुरस्कार (10) - रु0 10 हजार प्रत्येक को
यह योजना वर्ष 2004-95 में प्रकाशित पुस्तकों से लागू होगी।

14 सितम्बर 2005

कंप्यूटर की सहायता से बांगला भाषा के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी स्वयं सीखने के लिए प्रोग्राम तैयार करवा कर राजभाषा विभाग की वैब साइट पर उपलब्ध करा दिया गया।

14 सितम्बर 2006

कंप्यूटर की सहायता से उड़िया, असमी, मणिपुरी तथा मराठी भाषा के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी स्वयं सीखने के लिए प्रोग्राम तैयार करवा कर राजभाषा विभाग की वैब साइट पर उपलब्ध करा दिया।

14 सितम्बर 2007

कंप्यूटर की सहायता से नेपाली, पंजाबी, कश्मीरी तथा गुजराती भाषा के माध्यम से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी स्वयं सीखने के लिए प्रोग्राम तैयार करवा कर राजभाषा विभाग की वैब साइट पर उपलब्ध करा दिया।

हिंदी भाषा और उसकी अस्मिता

विचारों के आदान-प्रदान को भाषा कहा गया है। वाणी द्वारा अभिव्यक्ति ही भाषा है।भाषा का प्रारम्भिक रूप बोली है जिससे विकसित होकर बोली उपभाषा और उपभाषा भाषा का रूप ग्रहण करती है।भाषा सामाजिक सम्पति है, जो अनुकरण से अर्जित की जाती है।हम जिस परिवेश,समाज और परिवार में जन्म लेते हैं वहां जो भाषा जिस सुर,भाव,लहजा या स्वराघात के साथ बोला जाता है हम वैसे ही सीखते हैं। बच्चा सबसे ज्यादा अपनी माँ से कोई भाषा सीखता है क्योंकि माँ की भाषा से संबंध गर्भ से ही शुरू हो जाता है।बाहर आने के बाद भी वो सर्वाधिक माँ के ही सम्पर्क में रहता है शायद इसीलिए हम उसे मातृभाषा की संज्ञा देते हैं। मातृभाषा में मौलिक विचार आते हैं। कल्पना के पंख लगते हैं और मौलिक विचार उसी भाषा में हो सकता है जिस भाषा में आदमी सांस लेता है, जीता है। हिंदी हमारी मातृभाषा और, राष्ट्रभाषा है। भाषाओं की दुनिया मंदिर,पहाड़,झरने,समंदर और वृक्ष की तरह है उनकी उम्र में जितनी सदियाँ जुड़ेंगी उनका महत्व उतना ही बढ़ा हुआ माना जाएगा। इस संदर्भ में हिंदी का मामला थोड़ा अलग है उसके प्राचीन और आधुनिक संस्करणों में ज्यादा फर्क नहीं है इसलिय वो अपनी प्राचीनता का दावा करते हुए सामने नहीं आती।

भारोपीय,विश्व भाषाओं का प्रमुख भाषा परिवार है।इसकी भारतीय ईरानी अर्थात आर्य से भारतीय आर्य कुल का विकास हुआ है।भारतीय आर्यभाषा के विकास को तीन कोटियों में विभक्त किया गया है -प्राचीन,मध्युगीन एवं नव्य। आधुनिक भारत की प्रमुख और प्रतिनिधि भाषा मध्यदेशीय हिंदी रही है।वर्तमान

समय में मेरठ तथा दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली ने मानक हिंदी का रूप ही नहीं ले लिया बल्कि साहित्यिक हिंदी,राजभाषा हिंदी,राष्ट्रभाषा हिंदी तथा विश्वभाषा हिंदी का स्वरूप ग्रहण कर लिया है।विश्व के प्रायः सभी देशों में विश्वविद्यालयी स्तर तक इसका अध्ययन-अध्यापन किया जाने लगा है।इसके विकास और महत्ता का प्रमुख कारण हिंदी की मानकता,उसकी देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता है।

विशाल भारत देश की सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग होने से इसके विकास और दिशा को गति मिली है।भाषा, व्याकरण, साहित्य, कला, संगीत के साथ-साथ अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों में हिंदी ने अपनी उपयोगिता, प्रासंगिकता एवं वर्चस्व कायम किया है। हिंदी की यह स्थिति हिंदी भाषियों और हिंदी समाज की देन है।

हिंदी अपनी भाषा में कई छोटे -छोटे रूप ले चुकी है जैसे साहित्यिक हिंदी,व्यावसायिक हिंदी,राजभाषा हिंदी,सिनेमाई हिंदी इत्यादि पहले पहल ग्रीनफील्ड ने परिवार,धर्म, मित्रता,शिक्षा और कार्य इन पांच प्रयोग क्षेत्र के संदर्भ में भाषा का प्रारूप निर्धारित किया था। बाद में फिशमैन ने भाषा के प्रयोग क्षेत्र और रूप को अधिक वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित और निर्धारित करने का प्रयास किया। प्रयोग क्षेत्र -घर,शिक्षा अर्थात विद्यालय, प्रशासनिक कार्यालयी,कानून,व्यवसाय व्यापार,धर्म,साहित्य,संचार माध्यम रहा आज भी उनका वर्गीकरण वर्तमान संदर्भों में सार्थक है। हिंदी भाषा के ये रूप हमारे सामने अलग-अलग क्षेत्रों में अलग अलग तरह से आते हैं। हिंदी भाषा पर कुछ अन्य भाषाओं का भी काफी प्रभाव है और रहा है। जिसमे सबसे पहले संस्कृत है। साहित्यिक हिंदी में संस्कृत के अधिक शब्द पाये जाते हैं। बोलचाल की हिंदी क्षेत्र क्षेत्र पर निर्भर करती है।आजकल बोलचाल की हिंदी में तद्भव,अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का ज्यादा प्रभाव रहता है।

अपनी भाषा पर दूसरी भाषाओं के शब्द या प्रभाव को समाहित करने की बात या प्रवृति तो ठीक है पर उस भाषा को ही अपनी भाषा मान लेना कहाँ तक ठीक है। हिंदी भाषा के साथ यही स्थिति पैदा हो गयी है और यह समस्या बढ़ती ही जा रही है। यहां अंग्रेजी भाषा का ही वर्चस्व है।विश्व के तमाम ऐसे देश हैं, जो अपनी निज भाषा के साथ ही विकास कर रहे हैं। तमाम ऐसे देश हैं जिन्हे अंग्रेजी नहीं आती फिर भी वो विश्व का चक्कर लगा रहे हैं। कुछ महीने पहले अंडमान यात्रा में हैवलॉक नामक द्वीप पर दस दिन रुकना हुआ था वहां कई सारे

विभिन्न देशों के लोग आये थे कुछ देश के लोग ऐसे थे जिन्हे न हिंदी आती थी न अंग्रेजी फिर भी वो वहां रह रहे थे, पूरा आनंद ले रहे थे और वहां की सारी गतिविधियों में हिस्सा ले रहे थे। निसंदेह उन्हें दिक्क्त तो हो ही रही होगी फिर भी वो खुश थे और लोगों से अपनी भाषा में ही ऐसे बात कर रहे थे जैसे सभी उनकी भाषा समझ रहे हों। मेरे कहने का ये तातपर्य ये नहीं की दूसरी भाषा नहीं सीखनी चाहिए या दूसरी भाषा का सम्मान नहीं करना चाहिए,मगर अपनी भाषा को प्राथमिकता देते हुए।

देखते-देखते हम कब अंग्रेजी के प्रभाव में गुलाम बन गए पता नहीं चला और ये प्रभाव अब ऐसे है की जहाँ किसी को अंग्रेजी नहीं आती वो अपमानित महसूस करता है या उसे कराया जाता है।

दरअसल दोष हमारे देश की भाषा नीति में ही है हमारे देश की भाषा न एक है न भाषायी एकता है। दक्षिण पूरब पश्चिम उत्तर की भाषा भी 4 नहीं दक्षिण की बात करें तो यहां भी तमिल,तेलुगू,कन्नड़,मलयालम जैसे मोर्चे खड़े हैं सबमे एक दूसरे से सर्वश्रेष्ठ होने की होड़ है। मानसिकता का हनन यहां तक है भाषा को लेकर की दक्षिण में अगर रास्ता उत्तर भारत के लहजे में पूछा जाए तो जानते हुए भी लोग मदद नहीं करते और उनके लहजे में पूछने पर करते हैं।उत्तर भारत में दक्षिण भारत वालों को सहयोगी भाव से नहीं रखा या लिया जाता दक्षिण भारत में उत्तर भारत वालों को यही नहीं एक प्रान्त वाले भी दूसरे प्रान्त वालो की भाषायी मदद नहीं करना चाहते हमारे देश की तमाम समस्यायों में सबसे बड़ी समस्या भाषा को लेकर है।

भारतीय भाषाओं के इस आपसी वैमनस्य के कारण हम भारतवासियों का ही व्यापक स्तर पर हानि है और हो रहा है।भाषा को लेकर प्रान्त विभाजन ये सब कितना शर्मनाक है इससे अच्छी स्थिति तो तब थी जब हमारे पास कोई भाषा नहीं थी और संकेतों से भी काम चल ही जाता था।मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए भाषा का निर्माण किया और सबसे ज्यादा असुविधा भाषा के कारण ही हो रही है।

भाषा पर एक कठोर कानून बनना चाहिए कम से कम समस्त विश्व की नहीं तो भारत की भाषा तो एक होनी ही चाहिए चाहे वो एक नई भाषा का निर्माण किया जाए या भारत की तमाम भाषाओं में से एक वैज्ञानिक भाषा का चुनाव कर लिया जाए।

अंग्रेजी को भी महत्व दिया जाए उतना ही जितना कि दिया जाना चाहिए द्यपर अंग्रेजी को सर का ताज बना दिया गया है।शिक्षा प्रणाली पर जबरदस्त तरीके से अंग्रेजी का प्रभाव है।आजकल तो हर वर्ग के लोग यहां तक कि वो लोग भी जो अंग्रेजी के सख्त विरोधी हैं वो भी अपने बच्चों को कान्वेंट में ही पढ़ाते हैं।दोष पूरी तरह उनका नहीं है उनकी नौकरी तो जैसे तैसे लग गयी पर उनकी भावी पीढ़ी का तो ऐसे है कि स्टाइल भी अंग्रेजी में मारना है,हंसना भी अंग्रेजी में है रोना भी और प्यार भी अंग्रेजी में ही करना है नहीं तो कुछ नहीं होने वाला जैसी स्थिति है।

परिस्थिति जैसी है और हो गयी है अब नियंत्रण मुश्किल ही है।हर अच्छी और उच्च शिक्षा अंग्रेजी में है,चाहे व्यवसायिक शिक्षा हो तकनीकि या चिकित्सीय या कहीं साक्षात्कार है तो वो भी अंग्रेजी में ही एकाध क्षेत्र को छोड़ दिया जाए तो हर जगह अंग्रेजी का बोलबाला है। ऐसे में हिंदी के सामने बहुत चुनौतियाँ हैं।ऐसी प्रतिकूल और विकट परिस्थिति में खुद को जिंदा रख पाना और अपनी अस्मिता बनाये रख पाना ही हिंदी की चुनौतियाँ हैं।

या तो सरकार अंग्रेजी को ही मातृभाषा घोषित कर दे जिसमे कि शायद कोई बुराई नहीं क्योंकि हम हर जगह अंग्रेजी के ही बीज बो रहे हैं, जो पौधे पत्तियां फूल और शाखाएं निकलेंगी वो अंग्रेजी की ही होंगी ।

दूसरा ये की अपनी मातृभाषा के साथ खुद हमारी अस्मिता नहीं जुड़ी रह गयी सरकारी स्कूल में पढ़ो तो करियर में दस तरह की समस्या,हिंदी माध्यम में पढ़ो तो अंक कम आने की संभावना औए आगे के अंग्रेजी माध्यम के उच्च शिक्षा के लिए हिंदी आधार का होना हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या बन कर आती है।

ये हुई हिंदी भाषा का वर्तमान स्वरूप और समस्याओं का संक्षेपीकरण अब आइये हिंदी भाषा पर बाजारीकरण और भूमंडलीकरण पर एक नजर डालते हैं।

उपरोक्त जो मैंने हिंदी के सामने आने वाली समस्यायों को गिनाया है उन सबके बावजूद देशी व्यापार हो या विदेशी उनको अपनी प्रगति और वृद्धि के लिए हिंदी का आँचल पकड़ना पड़ रहा है। मीडिया और समाचार पत्रों में भी हिंदी का बाजारीकरण हो गया है।हिंदी व्यापार और व्यवसाय के साथ आगे बढ़ रही है इसमें बुराई क्या है? किसी भी तरीके से बढ़ तो रही है बाजार अपना फायदा देख रहा है हमे अपना फायदा देखना चाहिए। संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश से विकसित होता हिंदी आज निरंतर परिपक्व और विकसित हो रहा है।हिंदी के

भविष्य की चिंता करने वालों को चिंता करने की बजाय इसकी व्यापकता और बढ़ते विभिन्न क्षेत्रों और रूपों को देखना चाहिए। किसी भी भाषा,भाषा के स्वरूप,क्षेत्र कार्यक्षेत्र में परिवर्तन या लचीलापन नहीं होगा तो वो भाषा कभी आगे नहीं बढ़ पाएगी।

आज हिंदी भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है –हिंदी फिल्में,हिंदी गाने,हिंदी पत्र पत्रिकाओं,हिंदी टीवी चौनल,हिंदी में प्रचार तेजी से बढ़ रहे हैं। मार्केट ने अपनी नजर हिंदी पर गड़ाई है मजबूरी में ही सही पर हिंदी को बढ़ावा दे रही है।जब से विदेशी कंपनियों को भारतीय बाजारों में जगह और अनुमति दी गयी है तब से हिंदी भाषा का देश के ही नहीं विश्व के स्तर पर भी विकास हो रहा है।मार्केटिंग की गूढ़ सूझ और अनुभव रखने वाले इन कंपनियों को ये मालूम है की किसी भी देश में वहां की भाषा,संस्कृति,खान-पान,मानसिकता जाने बगैर वहां व्यापार करना और जमाना आसान नहीं है। ऐसे में इन कंपनियों ने अपने उत्पादों को भारतीय भाषा, मानसिकता और जरूरतों के हिसाब से पेश किया। अपने उत्पादों के प्रचार के लिय हिंदी भाषा को चुना क्योंकि उनके बाजार से ताल्लुक रखने वाले 60 प्रतिशत मध्यवर्गीय भारतीय हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि भूमंडलीकरण ने भारतीय जीवन को गहरे में जाकर प्रभावित किया है, लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि हिंदी खत्म हो जाएगी और अंग्रेजी उसका स्थान ग्रहण कर लेगी। वो कहते हैं, भारत की 54 फीसदी आबादी 25 साल से कम उम्र के नौजवानों की है और भूमंडलीकरण ने उसकी आकांक्षाएं और चिंताएं बदली हैं। सूचना और आभासी दुनिया की नागरिकता के धरातल पर ग्वालियर, गुना और दिल्ली के युवा में ज़्यादा फर्क नहीं है। दोनों एक वर्चुअल वर्ल्ड में जी रहे हैं और रियल टाइम में चौट कर रहे हैं।

प्रोफेसर अग्रवाल कहते हैं कि टेलीविजन के जरिए आज की पीढ़ी सारी दुनिया को अपने आस-पास घटते देख रही है। इस क्रांति से जो कनेक्टिविटी का नया बोध उत्पन्न हुआ है, जो नई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं और जो मर्यादा के नए प्रतिमान विकसित हुए हैं। उसे आज का हिंदी लेखक पकड़ नहीं पा रहा है। इस पीढ़ी से संवाद नहीं बना पा रहा है। इसीलिए आज के युवा किसी हिंदी लेखक को पढ़ने की बजाए चेतन भगत के उपन्यासों को मूल रूप में या उसके हिंदी अनुवाद को पढ़ना पसंद करते हैं।

वरिष्ठ पत्रकार राहुल देव कहते हैं, हिंदी का लेखक आज की नब्ज को पकड़ने की बजाए महान साहित्य रचना चाहता है। जब वो इस ग्रंथि से आजाद हो जाएगा और वो उन विषयों की ओर जाएगा और उन संवेदनशीलताओं को पकड़ेगा जो आज के जीवन की सच्चाई है तो शायद ऐसी चीज लिखी जा सकेगी जिसे बड़े पैमाने पर पाठक पढ़ेंगे. हिंदी में क्षमता कम है ऐसा मैं नहीं मानता। हिंदी की इसी क्षमता और उसके उत्तरोत्तर सक्षम होने की ओर इशारा करते हुए 'कलिकथा वाया बाइपास' नामक उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित लेखिका अलका सरावगी कहती हैं, ये सच है कि अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है, लेकिन साथ ही भाषा के स्तर पर एक नई शब्दावली का भी गठन हो रहा है, जो आज के जीवन यथार्थ को पकड़ने में मददगार हो रही है और इस तरह हिंदी एक समृद्ध भाषा बन रही है।

वो कहती हैं कि जरूरत इस बात की है कि सरकार के स्तर पर और लेखकीय स्तर पर भूमंडलीकरण के इस दौर को सकारात्मक रूप से लिया जाए। इलाहाबाद में रहनेवाले हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार बद्रीनारायण कहते हैं, भूमंडलीकरण ने हिंदी को बाजार तो दिया है, लेकिन वो बाजार में सिर्फ विज्ञापन की भाषा होकर रह जा रही है। साहित्य और संस्कृति की भाषा के रूप में जो हिंदी थी उसकी संभावनाओं और क्षमता को इस भूमंडलीकृत बाजार ने मारा है। इससे हिंदी साहित्य हाशिए पर पहुंचता जा रहा है।

बद्रीनारायण आगे कहते हैं कि पहले दूरदर्शन पर, समाचार पत्रों में, पत्रिकाओं में कविता-कहानी की एक जगह हुआ करती थी लेकिन अब धीरे-धीरे इसका स्पेस कम होता जा रहा है।

लेकिन इस कम होते स्पेस का नतीजा क्या निकलेगा। क्या हिंदी का साहित्य खत्म हो जाएगा या फिर उसका स्वरूप पूरी तरह बदल जाएगा।

भाषा पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का अध्ययन करने वाले विद्वान प्रभु जोशी कहते हैं, भूमंडलीकरण की जो सैद्धांतिकी है वो एकरुपता के पक्ष में जाती है। वो मानती है कि अगर एक भाषा होगी तो भूमंडलीकरण के विस्तार में मददगार साबित होगी।

वो आगे समझाते हैं कि भारत एक बहुभाषा-बोली वाला देश है और साथ ही ये एक बहुत बड़ा बाजार है। यहां बाजार के विस्तार की एक बहुत बड़ी शर्त है कि लोग एक ही भाषा में संवाद करें, इसीलिए एक सोची समझी रणनीति

के तहत अंग्रेजी का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। इसे ज्ञान-विज्ञान और तरक्की की भाषा के रूप में पेश किया जा रहा है।

वर्तमान में सिनेमा,साहित्य,मीडिया,इंटरनेट,मोबाइल,बाजार,प्रचार आदि के माध्यम से नई हिंदी का निर्माण हो रहा है इस नए रूप का स्वागत होना चाहिए और इसे अपनाने में किसी तरह की रूढ़िवादिता या परम्परा आड़े नहीं आने देना चाहिए। किसी भी भाषा या धर्म के प्रचार प्रसार में संचार माध्यमो का विशिष्ट योगदान रहा है। विकास हमेशा पुरातन के मोह त्याग की मांग करती है।जो भाषा जितनी लचीली और उदार होगी वो नए परिवर्तन और चुनौतियों के साथ भी खुद को खड़ा और टिका रखेगी उसकी जीवनशक्ति उतनी ही अधिक होगी बाजारीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद संस्कृति को हिंदी का शत्रु नहीं मित्र समझना चाहिए हिंदी का वर्तमान और भविष्य निसंदेह बहुत उज्ज्वल नहीं है पर अन्धकार से भरा भी नहीं है। हिंदी की ज्योति अपने आप जलेगी अगर रुख हवाओं का फेरने का जज्बा हर हिंदुस्तानी में हो।

राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास, महत्त्व तथा प्रकाश की दिशाएँ

भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से प्रत्येक प्राणी अपने विचारों को दूसरों पर अभिव्यक्त करता है। यह ऐसी दैवी शक्ति है, जो मनुष्य को मानवता प्रदान करती है और उसका सम्मान तथा यश बढ़ाती है। जिसे वाणी का वरदान प्राप्त होता है, वह बड़े से बड़े पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है और अक्षय कीर्ति का अधिकारी भी बन सकता है। किंतु, इस वाणी में स्खलन या विकृति आने पर मनुष्य निंदा और अपयश की भी भागी बनता है। यही नहीं अवांछनीय वाणी, उसके पतन का भी कारण बन सकती है। अत: वाणी या भाषा का प्रयोग बहुत सोच विचार कर करना चाहिए। इसलिए राजकीय कार्यों में पूर्ण सोच विचार के बाद उपयुक्त भाषा का प्रयोग करने की परंपरा रही है।

राज्य या प्रशासन की भाषा को राज्य भाषा कहते हैं। इसके माध्यम से सभी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। यूनेस्को के विशेषज्ञों के अनुसार 'उस भाषा को राज्य भाषा कहते हैं, जो सरकारी कामकाज के लिए स्वीकार की गई हो और जो शासन तथा जनता के बीच आपसी संपर्क के काम आती हो' जबसे प्रशासन की परंपरा प्रचलित हुई है, तभी से राजभाषा का प्रयोग भी किया जा रहा है। प्राचीन काल में भारत में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं

का राजभाषा के रूप में प्रयोग होता था। राजपूत काल में तत्कालीन भाषा हिन्दी का प्रयोग राजकाज में किया जाता था। किंतु भारतवर्ष में मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद धीरे-धीरे हिन्दी का स्थान फारसी और अरबी भाषाओं ने ले किया। इस बीच में भी राजपूत नरेशों के राज्य क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग बराबर प्रचलित रहा। मराठों के राजकाज में भी हिन्दी का प्रयोग किया जाता था। आज भी इन राजाओं के दरबारों से हिन्दी अथवा हिन्दी-फारसी, द्विभाषिक रूप में जारी किए गए फरमान बड़ी संख्या में उपलब्ध है। यह इस बात का द्योतक है कि हिन्दी राजकाज करने के लिए सदैव सक्षम रही है। किंतु केंद्रीय शक्ति के मुसलमान शासकों के हाथ में चले जाने के कारण उसे वह अवसर प्राप्त नहीं हुआ, जिससे सभी क्षेत्रों में उसकी क्षमता एवं सामर्थ्य का पूर्ण विकास हो पाता।

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में तत्कालीन प्रचलित राजभाषा फारसी को ही प्रश्रय दिया। परिणामस्वरूप भारत के आजाद होने के कुछ समय बाद तक भी फारसी भारत के अधिकांश भागों में कचहरियों की भाषा बनी रही। इस बीच 1855 में लॉर्ड मैकाले ने अंग्रेजी को भारत की शिक्षा और प्रशासन की भाषा के रूप में स्थापित कर दिया था। धीरे-धीरे वह न केवल पूर्णतय भारतीय प्रशासन की भाषा बन गई, बल्कि शिक्षा, वाणिज्य, व्यापार तथा उद्योग धंधों की भाषा के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गई। इनता ही नहीं वह भारत के शिक्षित वर्ग के व्यवहार की भी भाषा बन गई। फिर भी, अंग्रेजी शासक यह महसूस करते रहे कि भारत की भाषाओं को बहुत दिनों तक दबाया नहीं जा सकता, अत: उन्होंने हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी को और अन्य प्रदेशों में, वहां की भाषाओं को प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम बनाया। इस श्रीगणेश का शुभ परिणाम यह हुआ कि हिन्दी और भारतीय भाषएं विकसित होने लगीं और वे उच्च शिक्षा का माध्यम बनी। इतना ही नहीं स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय भाषाओं और विशेषकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा के रूप में प्रचलित करने का प्रयास प्रारंभ किया। इस राष्ट्रीय जागरण के परिणाम स्वरूप हिन्दी का उत्तरोत्तर प्रसार होने लगा और यह मत व्यक्त किया जाने लगा कि देश के अधिकांश लोगों की बोली होने के कारण हिन्दी को भी भारत की राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए। देश के कोन कोने से अनेक अहिन्दी भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये।

महात्मा गांधी ने एक बार यह विचार व्यक्त किया था कि राष्ट्रभाषा बनने के लिए किसी भाषा में नीचे दिए गए पांच गुण होने आवश्यक होने चाहिए-

(1) उसे सरकारी अधिकारी आसानी से सीख सकें,
(2) वह समस्त भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संपर्क के माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम हो,
(3) वह अधिकांश भारतवासियों द्वारा बोली जाती हो,
(4) सारे देश को उसे सीखने में आसानी हो,
(5) ऐसी भाषा को चुनते समय आरजी या क्षणिक हितों पर ध्यान न दिया जाए।

उनका विचार था कि भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें उपर्युक्त सभी गुण मौजूद हैं। महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं के उद्‌गारों का परिणाम यह हुआ कि जब भारतीय संविधान सभा में संघ सरकार की राजभाषा निश्चित करने का प्रश्न आया तो विशद विचार मंथन के बाद 14 सितंबर, 1949 को हिन्दी को भारत संघ की राजभाषा घोषित किया गया। भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ और तभी से देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी विधिवत भारत संघ की राजभाषा है।

किसी भी स्वाधीन देश के लिए, जो महत्व उसके राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का है, वही उसकी राजभाषा का है। प्रजातांत्रिक देश में जनता और सरकार के बीच भाषा की दीवार नहीं होनी चाहिए और शासन का काम जनता की भाषा में किया जाना चाहिए। जब तक विदेशी भाषा में शासन होता रहेगा, तब तक कोई देश सही आर्थों में स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा में ही स्पष्टता और सरलता से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है। नूतन विचारों का स्पंदन और आत्मा की अभिव्यक्ति, मातृभाषा में ही सम्भव है। राजभाषा देश के भिन्न भिन्न भागों को एक सूत्र में पिराने का कार्य करती है इसके माध्यम से जनता न केवल अपने देश की नीतियों और प्रशासन को भलीभांति समझ सकती है, बल्कि उसमें स्वयं भी भाग ले सकती है। प्रजातंत्र की सफलता के लिए ऐसी व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। विश्व के सभी स्वतंत्र देश और नवोदित राष्ट्रों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उनका उत्थान, उनकी अपनी भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव है। रूस, जापान, जर्मनी, आदि सभी राष्ट्र इसके प्रमाण हैं। भारतीय संविधान सभा इस तथ्य से पूर्णतयः परिचित थी। इसलिए यद्यपि अंग्रेजी के समर्थकों ने उसकी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति और समृद्धि की बड़ी वकालत की, फिर भी राष्ट्रीय नेताओं ने देश के बहुसंख्यक वर्ग द्वारा बोली जाने वाली और देश के अधिकांश भाग में समझी जाने वाली भाषा हिन्दी को ही भारत संघ की राजभाषा बनाया।

हिन्दी का संघ की राजभाषा 1950 में ही घोषित कर दिया गया था, किंतु केंद्र सरकार के कामों में हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान देने के लिए गंभीरता से प्रयास केंद्र सरकार द्वारा 1960 ओर विशेषकर राजभाषा अधिनियम, 1963 के पास होने के बाद से प्रारंभ किया गया। उस समय यह अनुभव किया गया कि हिन्दी के माध्यम से प्रशासन का कार्य चलाने के लिए कुछ प्रारंभिक तैयारियों की आवश्यकता पड़ेगी, जैसे–

(1) प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकि एवं विधि शब्दावली का निर्माण।
(2) प्रशासनिक एवं विधि साहित्य का हिन्दी में अनुवाद।
(3) अहिन्दीभाषी सरकारी कर्मचारियों का हिन्दी प्रशिक्षण।
(4) हिन्दी टाइपराइटरों एवं अन्य यांत्रिक साधनों की व्यवस्था आदि।

शब्दावली का निर्माण

शब्दावली निर्माण के लिए शिक्षा मंत्रालय ने 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी बोर्ड की स्थापना की थी। इसके मार्गदर्शन में शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी विभाग ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य चालू किया था। बाद में हिन्दी विभाग का विस्तार होते होते सन् 1960 में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना हुई। इसके कुछ समय बाद 1961 में राष्ट्रपति के आदेशानुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। निदेशालय तथा आयोग ने अब तक विज्ञान, मानविकी, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि तथा प्रशासन आदि के 4 लाख अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित कर दिये हैं। इसी प्रकार राजभाषा (विधायी) आयोग तथा राजभाषा खंड ने विधि शब्दावली का निर्माण कार्य लगभग पूरा कर लिया है। सन 1979 में प्रकाशित विधि शब्दावली इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। इसमें लगभग 34000 विधिक शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित किए गए हैं।

प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद

केंद्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों के मैनुअलों, संहिताओं, फार्मों आदि का अनुवाद कार्य पहले शिक्षा मंत्रालय के केंद्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा किया जाता था। मार्च, 1971 से यह कार्य गृह मंत्रालय (राजभाषा विभाग) के आधीन स्थापित केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को सौंपा गया है। ब्यूरो ने निदेशालय द्वारा अनूदित साहित्य के अतिरिक्त अब तक लगभग

3 लाख मानक पृष्ठों का अनुवाद करके विभिन्न मंत्रालयों को उपलब्ध करा दिया है। इस समय ब्यूरो मंत्रालयों, विभागों के अतिरिक्त अन्य सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों आदि के मैनुअलों का भी अनुवाद कर रहा है। इसी प्रकार विधि मंत्रालय के राजभाषा खंड ने भी अब तक 13000 मानक पृष्ठों के 1000 से अधिक केंन्द्रीय अधिनियमों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है और यह कार्य निरंतर चल रहा है। इसके अतिरिक्त नियमों तथा अन्य विधिक साहित्य का भी अनुवाद किया गया है।

हिन्दी शिक्षण योजना

केंद्रीय सरकार के हिन्दी न जानने वाले सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी शिक्षण का कार्य शिक्षा मंत्रालय की देखरेख में 1952 में प्रारंभ हुआ था, किंतु बाद में लिए गए निर्णय के अनुसार अक्टूबर, 1955 से यह कार्य गृह मंत्रालय के तत्त्वाधान में हो रहा है। प्रारंभ में यह प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उन लोंगों के लिए था, जा अपनी इच्छा से हिन्दी पढ़ना चाहते हैं बाद में अप्रॅल 1960 में राष्ट्रपति के आदेश के अधीन हिन्दी का सेवाकालीन प्रशिक्षण उन सभी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया जो 01-01-1961 को 45 वर्ष के नहीं हुए थे। फिर भी, स्वेच्छा से हिन्दी सीखने वालों की तादाद अधिकतर जगहों पर इतनी पर्याप्त है कि राजभाषा विभाग ने अभी तक इस अनिवार्यता का प्रयोग नहीं किया है और हिन्दी प्रशिक्षण का कार्य सारे देश में स्वेच्छा तथा प्रोत्साहन के आधार पर चल रहा है।

इसी प्रकार टंककों और आशुलिपिकों के लिए भी हिन्दी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपि का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है। इस समय देश भर में हिन्दी प्रशिक्षण के 149 केंद्र चल रहे हैं, जिनमें 73 पूर्णकालिक और 76 अंशकालिक हैं। इन केंद्रों के माध्यम से जून, 1981 तक लगभग 4,37,360 कर्मचारियों ने हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएं तथा 34, 531 कर्मचारियों ने हिन्दी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपिक की परीक्षाएं पास कर ली हैं।

यांत्रिक साधनों की व्यवस्था

कुछ वर्ष पहले देवनागरी के टाइपराइटरों का उत्पादन मांग के अनुसार नहीं था। किंतु अब औद्योगिक विकास विभाग, पूर्ति तथा निपटान महानिदेशालय एवं टाइपराटर बनाने वाली कंपनियों के प्रतिनिधियों के सहयोग से देवनागरी

टाइपराइटरों के उत्पादन में प्रगति हुई है। इस समय देवनागरी टाइपराइटरों का उत्पादन मांग के अनुसार है। वर्ष 1978 में 11,573 1979 में 13,686 तथा 1980 में 12,754 देवनागरी टाइपराइटरों का उत्पादन हुआ। वर्ष 1981 में विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों के पास कुल 1367 देवनागरी टाइपराइटर थे।

कम्प्यूटर

कम्प्यूटर में देवनागरी लिपि तथा भारतीय भाषाओं के प्रयोग की सुविधा के विकास के संबंध में इलेक्ट्रॉनिकी विभाग तथा इलेक्ट्रॉनिकी आयोग द्वारा विशेष कदम उठाए जा रहे हैं। कुछ वर्ष पहले ई. सी. आई. एल हैदराबाद ने कम्प्यूटर में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग के संबंध में एक प्रोटोटाइप बनाया था। उसे और उपयोगी बनाने के लिए कदम उठए जा रहे हैं। हाल ही में बिरला इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालॉजी एंड साइंस, पिलानी ने भी ऐसे ही एक कम्प्यूटर का प्रोटोटाइप बनाया है। इसके अलावा टाटा ब्रदर्स, बंबई की एक फर्म ने भी इस प्रकार के कम्प्यूटर प्रोटोटाइप बनाया है। कंप्यूटर में देवनागरी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग करने की दृष्टि से कोड निर्धारित करने के लिए इलेक्ट्रानिकी आयोग द्वारा कर्रवाई की जा रही है।

इलेक्ट्रॉनिक टेलीप्रिंटर

संचार मंत्रालय के अधीन एक सरकारी उपक्रम हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर लि. द्वारा इलेक्ट्रॉनिक टैलीप्रिंटर्स बनाए जाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे है। इलेक्ट्रॉनिकी के लिए एक समिति का गठन किया जा चुका है। इसी प्रकार हिन्दी के बिजली से चलने वाले टइपराइटरों, पतालेखी मशीनों और पिनप्वाइंट टाइपराइटरों के निर्माण के लिए भी कार्रवाई की जा रही है।

हिन्दी की मुद्रण क्षमता में वृद्धि

भारत सरकार के प्रेसों की हिन्दी मुद्रण क्षमता कुद समय पहले संतोषजनक नहीं थी। आवास तथा निर्माण मंत्रालय के सहयोग से मुद्रण निदेशालय ने हिन्दी मुद्रण क्षमता बढाने के लिए विशेष प्रयास किये हैं, जिससे इस दिशा में काफी प्रगति हुई है। पहले हिन्दी मुद्रण क्षमता केवल 400 पृष्ठ प्रतिदिन थी, अब यह बढ़कर 1200 पृष्ठ प्रतिदिन तक पहुंच गई है।

राजभाषा के संबंध में कानूनी व्यवस्थाएं

राजभाषा नीति को लागू करने के लिए 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया गया और इसमें 1976 में संशोधन किया गया। इसकें कुछ प्रमुख उपबंध इस प्रकार हैं–

अधिनियम की धारा 3 के अनुसार (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था और (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए 26 जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।

केंद्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्राचार अंग्रेजी में होगा, वशर्ते उसे राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग करना स्वीकार न किया हो। इसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्राचार करेगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती हैं तो साथ-साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेंगी। पारस्पिरिक समझौते से यदि कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

केंद्रीय सरकार के कार्यालयों, आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। लेकिन जब तक संबंधित कार्यालयों आदि के कर्मचारी हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान प्राप्त न कर लें, तब तक पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा।

राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसार निम्नलिखित कागज-पत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है- 1. संकल्प, 2. सामान्य आदेश, 3. नियम, 4. अधिसूचनाएँ, 5. प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट, 6. प्रेस विज्ञप्तियाँ, 7. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्टें एवं 8. सरकारी कागजपत्र, 9. संविदाएँ, 10. करार, 11. अनुज्ञप्तियाँ, 12. अनुज्ञापत्र, 13. टेंडर नोटिस और 14. टेंडर फार्म।

धारा 3 (4) के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि यदि केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा में प्रवीण हो, तब भी वह अपना सरकारी कामकाज प्रभावी ढंग से कर सके और केवल इस आधारा पर कि वह दोनों भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित न हो।

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा अधिनियम की धारा 3 (5) के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारिन न कर दें।

अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अथवा पारित किसी निर्णय, डिक्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापित यदि कोई निर्णय डिक्री या आदेश अंग्रेजी से किसी भिन्न किसी भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ-साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी दिया जाएगा। अब तक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार के राज्यपालों ने अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए राष्ट्रपति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति ली है।

राजभाषा संशोधन अधिनियम पारित करने के साथ-साथ दिसंबर, 1967 में संसद के दोनों सदनों नले सरकार की भाषा नीति के संबंध में एक सरकारी संकल्प भी पारित किया था। इस संकल्प के पैरा 1 के अनुसार केंद्रीय सरकार हिन्दी के प्रसार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए उसके प्रयोग में तेजी लाने के लिए एक अधिक गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी। इसके अतिरिक्त इस संबंध में किए गए उपायों तथा उसमें हुई प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद के सदनों के सभापटल पर प्रस्तुत करेंगी। सन् 1968 से निरंतर वार्षिक कार्यक्रम बनाया जा रहा है, जिसमें केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों एवं विभाग से अनुरोध किया जाता है कि हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए उसके अनुसार कार्रवाई करें। अब तक इस प्रकार की 10 रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जा चुकी हैं और 11वीं रिपोर्ट मुद्रणाधीन है।

राजभाषा अधिनियम, 1976

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए 1976 में राजभाषा नियम बनाया गया है। यह एक महत्वपूर्ण कदम था, जिससे हिन्दी के प्रयोग में काफी सहायता मिली है। इस नियम की महत्वपूर्ण व्यवस्थाएँ इस प्रकार है:

(क) केंद्र सरकार के कार्यालयों के 'क' क्षेत्र के लिए राज्य व संघ राज्य क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश राज्य और संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली) को ऐसे राज्यों में स्थित किसी अन्य कार्यालय या व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्र आदि हिन्दी में भेजे जाएँगे। यदि किसी खास मामलें में कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा।(ख) केंद्र सरकार के कार्यालयों से 'ख' क्षेत्र के किसी राज्य व संघ राज्य क्षेत्र (पंजाब, गुजरात, और महाराष्ट्र तथा चंडीगढ़ और अंडमान निकोबार द्वीप समूह संघ राज्य क्षेत्र) के प्रशासनों को भेजे जाने वाले पत्र आदि सामान्यत: हिन्दी में भेजे जाएँगे। यदि ऐसा कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा। इन राज्यों में रहने वाले किसी व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी, किसी भी मात्र में हो सकते हैं। (ग) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से 'ग' क्षेत्र के किसी राज्य व संघ राज्य क्षेत्र ('क' और 'ख' क्षेत्र में शामिल न होने वाले सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र) के किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाएँगे। यदि ऐसा कोई पत्र हिन्दी में भेजा जाता है तो उसका अंग्रेजी अनुवाद साथ भेजा जाएगा। (घ) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्र व्यवहार हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकता है, किंतु केंद्र सरकार के किसी मंत्रालयधविभाग और 'क' क्षेत्र में स्थिति संबंद्ध और अधीनस्था कार्यालयों के बीच होने वाला पत्र व्यहार सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात में हिन्दी में होगा। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार कम से कम दो तिहाई पत्र व्यवहार हिन्दी में होना चाहिए। 'क' क्षेत्र में स्थित केंद्र सरकार के किन्दी दो कार्यालयों के बीच सभी पत्र व्यवहार हिन्दी में ही किए जाने का प्रावधान है। (ड.) हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में ही दिए जाएँगे। हिन्दी में लेख या हिन्दी में इस्ताक्षर किए गए आवेदनों या अभ्यावेदनों के उत्तर भी हिन्दी में दिए जाएंगे। (च) राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाएगा और इसे सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति की होगी। (छ) केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी फाइलों में हिन्दी या अंग्रेजी में टिप्पणी या मसौदे लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करें। (ज) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया साहित्य हिन्दी

और अंग्रेजी, दोनों में द्विभाषिक रूप में तैयार और प्रकाशित किए जाएँगे। सभी फार्मो और रजिस्टरों के शीर्ष, नामपट्ट, स्टेशनरी, आदि की अन्य मदें भी हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में होगी। (झ) प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह दायित्व होगा कि वह राजभाषा अधिनियम और उसके अधीन बने नियमों का समुचित रूप से अनुपालन सुनिश्चित करें।

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भारत सरकार के सभी मंत्रालयों-विभागों पर है। इस नीति के समन्वय का कार्य राजभाषा विभाग करता है। यह विभाग समन्वय के लिए वार्षिक कार्यक्रमों को जारी करने के अलावा कई प्रकार की समितियों का गठन करके यह कार्य कर रहा है, जिनका विवरण इस प्रकार है:

(1) केंद्रीय हिन्दी समिति–हिन्दी के विकास और प्रसार तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों का समन्वय करने और नीति संबंधी दिशा निर्देश देने वाली यह सर्वोच्च समिति है। प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में गठित इस समिति में केंद्रीय सरकार के 11 मंत्री तथा राज्य मंत्री, राज्यों के 8 मुख्यमंत्री, 7 संसद सदस्य तथा हिन्दी के 10 विशिष्ट विद्वान् शामिल है। राजभाषा विभाग के सचिव एवं भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार इसके सदस्य सचिव हैं।

(2) हिन्दी सलाहकार समितियाँ–सरकार का यह निर्णय है कि राजभाषा नीति का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने और इस संबंध में आवश्यक सलाह देने के लिए जनता के साथ अधिक संपर्क में आने वाले विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में हिन्दी सलाहकार संमितियाँ गठित की जाएँ। इस निर्णय के अनुसार 25 मंत्रालयों में उनके मंत्रियों की अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है, जिनमे संसदस्यों तथा हिन्दी के विशिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त मंत्रालय विशेष के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते हैं। वे अपने मंत्रलाय में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के संबंध में आवश्यक विचार विर्मश करके निर्णय लेते हैं।

(3) राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ–केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों की संख्या (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोड़कर) 25 या इससे अधिक है, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई हैं। मंत्रालयों व विभागों की राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के अध्यक्षों को मिला कर एक केंद्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति बनाई गई है, जो उसकी समस्याओं पर आंतरिक रूप

से विचार करके उनका समाधान ढूँढ़ती है। 1976 में लिए गए एक निर्णय के अनुसार ऐसे 55 नगरों में भी, जहाँ 10 या इनसे अधिक केंद्रीय कार्यालय है, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है।

उपर्युक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों विभागों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ा है। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में कुल 423990 पत्र हिन्दी में प्राप्त हुए। इनमें से 233030 पत्रों का उत्तर हिन्दी में दिया गया तथा केवल 5088 पत्रों का उत्तर अंग्रेजी में। इसी अवधि में विभिन्न मंत्रालयों-विभागों से 345899 पत्र मूल रूप से हिन्दी में भेजे गए। इसी प्रकार अधीनस्थ कार्यालयों में भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा हे। राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) के अनुसार सामान्य आदेश (जिनमें परिपत्र भी शामिल है) संकल्प, नियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट, प्रेस विज्ञप्तियाँ, संविदा, करार, अनुज्ञप्ति आदि द्विभाषी रूप में जारी किए जाने चाहिए। इस संबंध में राजभाषा विभाग की ओर से सभी मंत्रालयों व विभागों से यह कहा गया है कि वे उन्हें अनिवार्य रूप से द्विभाषी रूप में जारी करें। अधिकतर मंत्रालय व विभाग ऐसा ही कर रहे हैं। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में जारी होने वाले विभाग ऐसा ही कर रहे हैं। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में जारी होने वाले इन कागज पत्रों की कुल संख्या 73341 थी। इनमें 61297 कागजपत्र द्विभाषी रूप में जारी हुए। इसके अतिरिक्त सभी मंत्रालयों व विभागों द्वारा हिन्दी में प्राप्त पत्रों के उत्तर प्रायः हिन्दी में दिए जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होगा कि राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास, प्रचार और प्रयोग में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किंतु अभी भी हम अपेक्षित लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके हैं। इसका कारण यह है कि जो सरकारी कर्मचारी हिन्दी जानते भी हैं, वे भी द्विभाषिक रूप में कार्य करने की छूट होने के कारण हिन्दी के बजाय अंग्रेजी में काम करना पसंद करते हैं, क्योंकि एक तो वे पहले से अंग्रेजी में काम करने के अभ्यस्त रहे हैं दूसरे हिन्दी में काम करने में वे कुछ हीनता अथवा संकोच का अनुभव करते हैं। यह हीनता और संकोच की भावना इस समय सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग करने के लिए अभी जितने यांत्रिक साधन और सुविधाएँ उपलब्ध है, वे हिन्दी में सुलभ नहीं है। इससे विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग अपेक्षित रूप में नहीं हो पा रहा है। अतः विभिन्न प्रकार के टाइपराइटरों, कंप्यूटरों आदि की अपेक्षित सुविधाएँ हिन्दी में सुलभ कराने के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाने की

आवश्यकता है। हिन्दी भाषी राज्य सरकारें भी, जहाँ अधिकांश कर्मचारी हिन्दी जानते हैं, अभी तक संपूर्ण कार्य हिन्दी में नहीं कर पा रही है। इससे अन्य राज्यों में हिन्दी का प्रयोग करने पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि राजभाषा अधिनियम एवं राजभाषा नियम के अनुसार अनेक कागज पत्रों एवं प्रकाशनों को द्विभाषिक रूप में अथवा केवल हिन्दी में जारी करना पड़ता है। किंतु सरकारी प्रेसों की हिन्दी की मुद्रण-क्षमता अभी भी संतोषजनक नहीं है। इससे न तो हिन्दी के प्रकाशन समय पर निकल पाते हैं और न ही समुचित मात्रा में हिन्दी का प्रयोग बढ़ पाता है। यह भी देखा गया है कि राजभाषा नीति के कार्यन्वयन के लिए अभी तक मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों आदि में समुचित हिन्दी स्टाफ की व्यवस्था नहीं हो पाई है। हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उपयुक्त वातावरण न होने की है। प्रायः सभी सही सोचते हैं कि उनके बजाय किसी और को हिन्दी में काम करना है। फिर भी, विविध प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दी का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों विभागो, कार्यालयों, उपक्रमों आदि में वार्षिक कार्यक्रमों को पूरा करने का भरकस प्रयास किया जा रहा है। हिन्दी में सर्वाधिक काम करने वाले मंत्रालयों व विभागों को शील्ड देने की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में पर्याप्त काम करने वाले को आर्थिक प्रोत्साहन देने की योजना भी विचाराधीन है। राजभाषा विभाग अपने विभिन्न प्रकाशनों के माध्यम से राजभाषा नीति, राजभाषा अधिनियम तथा राजभाषा नियमों की जानकारी देने का पूरा प्रयास कर रहा हे। विभिन्न मंत्रालयों की हिन्दी सलाहकार समितियाँ तथा राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठा रही है। हिन्दी कार्यशालाओं के आयोजन से भी कर्मचारियों की झिझक दूर करके उन्हें हिन्दी में काम करने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि हिन्दी में काम करने का वातावरण बनाने के लिए हर संभव उपाय किए जा रहे हैं। यद्यपि हमारी मंजिल कुछ दूर अवश्य है, किंतु हम सब का सहयोग लेते हुए सशक्त और संतुलित कदमों से उसकी तरफ बढ़ रहे हैं। हमें आशा है, हम देर सवेर अपनी मंजिल तक अवश्य पहुँचेंगे।

राजभाषा हिन्दी का भविष्य

हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य का भविष्य बहुत बड़ा है। उसके गर्भ में निहित भवितव्यताएँ इस देश और उसकी भाषा द्वारा संसारभर के रंगमंच पर एक

विशेष अभिनय कराने वाली हैं। मुझे तो ऐसा भासित होता है कि संसार की कोई भी भाषा मनुष्य-जाति को उतना ऊँचा उठाने, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने और संसार को सुसभ्य और सद्भावनाओं से युक्त बनाने में उतनी सफल नहीं हुई, जितनी कि आगे चलकर हिन्दी भाषा होने वाली है। हिन्दी को अपने पूर्व-संचित पुण्य का बल है। संसार के बहुत बड़े विशाल खण्ड में सर्वथा अन्धकार था लोग अज्ञान और अधर्म में डूबे हुए थे, विश्व-बन्धुत्व और लोक-कल्याण का भाव भी उनके मन में उदय नहीं हुआ था, उस समय जिस प्रकार इस देश से सुदूर देश-देशान्तरों में फैलकर बौद्ध-भिक्षुओं ने बडे-बड़े देशों से लेकर अनेकानेक उपत्याकाओं, पठारों और तत्कालीन पहुँच से बाहर गिरि-गुहाओं और समुद्रतटों तक धर्म और अहिंसा का सन्देश पठाया था उसी प्रकार अदूर भविष्य में उन पुनीत सन्देश-वाहकों की सन्तति संस्कृत और पाली की अग्रजा हिन्दी द्वारा भारतवर्ष और उसकी संस्कृति के गौरव का सन्देश एशिया महाखण्ड के प्रत्येक मन्त्रणास्थल में, एशियाई महासंघ के प्रत्येक रंगमंच पर सुनाएगी।

मुझे तो वह दिन दूर नहीं दिखाई देता, जब हिन्दी साहित्य अपने सौष्ठव के कारण जगत-साहित्य में अपना विशेष स्थान प्राप्त करेगा और हिन्दी, भारतवर्ष-ऐसे विशाल देश की राष्ट्रभाषा की हैसियत से न केवल एशिया महाद्वीप के राष्ट्रों की पंचायत में, किन्तु संसारभर के देशों की पंचायत में एक साधारण भाषा के समान न केवल बोली भर जाएगी किन्तु अपने बल से संसार की बड़ी-बड़ी समस्याओं पर भरपूर प्रभाव डालेगी और उसके कारण अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बिगड़ा और बना करेंगे। संसार की अनेक भाषाओं के इतिहास, धमनियों में बहने वाले ठण्डे रक्त को उष्ण कर देने वाली उन मार्मिक घटनाओं से भरे पड़े हैं, जो उनके अस्तित्त्व की रक्षा के लिए घटित हुई। फांस की-किरचों की नोंक छाती पर गड़ी हुई होने पर भी रूर प्रान्त के जर्मनों ने अपनी मातृ-भाषा के न छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और उसका अक्षर-अक्षर पालन किया। कनाडा के फ्रांसीसियों का अपनी मातृ-भाषा के लिए प्रयत्न करना किसी समय अपराध था किन्तु घमण्डी मनुष्यों के बनाये हुए इस कानून का मातृ-भाषा के भक्तों ने सदा उल्लंघन किया। इटली, आस्ट्रेलिया के छीने हुए भूप्रदेशों के गले के नीचे जबर्दस्ती अपनी भाषा उतारना चाहती थी, किन्तु वह अपनी समस्त शक्ति से भी मातृ-भाषा के प्रेमियों को न दबा सकी। आस्ट्रिया ने हंगरी को पद-दलित करके उसकी भाषा का भी नाश करना चाहा, किन्तु आस्ट्रिया-निर्मित

राज-सभा में बैठकर हंगरी वालों ने अपनी भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में बोलने से इन्कार कर दिया था। दक्षिण अफ्रीका के जनरल बोथा ने केवल इस बात के सिद्ध करने के लिए कि उनका देश विजित हुआ और न उनकी आत्मा ही, बहुत अच्छी अंग्रेजी जानते हुए भी बादशाह जार्ज से साक्षात् होने पर अपनी मातृ-भाषा "श्डच" भाषा में ही बोलना आवश्यक समझा, और एक दुभाषिया उनके तथा बादशाह के बीच में काम करता था। यद्यपि हिन्दी के अस्तित्त्व पर अब इस प्रकारके खुले प्रहार नहीं होते, किन्तु उन ढंके-मुंदे प्रहारों की कमी भी नहीं है, जो उस पर, और इस प्रकार देश की सुसंस्कृति पर, विजय प्राप्त करना चाहते हैं। साहस के साथ और उस अगाध विश्वास के साथ जो हमें हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के परमोज्ज्वल भविष्यत् पर है, हमें इस प्रकार के प्रहारों का सामना करना चाहिए, और जितने बल और क्रियाशीलता के साथ हम ऐसा करेंगे, उतनी द्रुत गति के साथ हम अपनी भाषा की त्रुटियों को दूर करेंगे और उसे 82 करोड़ व्यक्तियों की राष्ट्रभाषा के समान बलशाली और गौरवयुक्त बनाएँगे, उतना ही शीघ्र हमारे साहित्य-सूर्य की रश्मियाँ दूर-दूर तक समस्त देशों में पड़कर भारतीय संस्कृति, ज्ञान और कला का सन्देश पहुँचाएगी, उतनी ही शीघ्र हमारी भाषा में दिये गए भाषण संसार की विविध रंग-स्थलियों में गुंजरित होने लगेंगे और उससे मनुष्य-जाति मात्र की गति-मति पर प्रभाव पड़ता हुआ दिखलाई देगा, और उतने ही शीघ्र एक दिन और उदय होगा और वह होगा तब, जब देश के प्रतिनिधि उसी प्रकार, जिस प्रकार आयरलैण्ड के प्रतिनिधियों ने इंग्लैण्ड से अन्तिम सन्धि करते और स्वाधीनता प्राप्त करते समय अपनी विस्मृत भाषा गैलिक में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, भारतीय स्वाधीनता के किसी स्वाधीनता-पत्र पर हिन्दी भाषा में और नागरी अक्षरों में अपने हस्ताक्षर करते हुए दिखाई देगे।

3

राजभाषा हिन्दी का वैश्विक प्रसार

आधुनिक हिन्दी की यह असाधारण विशेषता है कि वह अपने वर्तमान रूप में किसी क्षेत्र विशेष की बोली नहीं है। उन्नीसवीं सदी से प्रचलित खड़ी बोली नाम से उसके किसी क्षेत्र की बोली होने का संकेत नहीं मिलता। यह नाम वास्तव में उसे ब्रजभाषा से भिन्न सूचित करने के लिए दिया गया था। ब्रज की 'ओ' कार बहुलता की जगह उसमें 'आ' कार की प्रधानता है और ब्रज की मधुरता के विपरीत उसमें खरापन या अधिक है। मेरठ-दिल्ली के अतराफ की बोली से उसका उदय अवश्य हुआ, पर उस क्षेत्र की खड़ी बोली क्षेत्र का नाम भाषा के नामकरण के बाद मिला। बाँगरु, कौरवी और हरियाणवी नाम भी बाद में दिए गए।

सबसे पहले इस भाषा को सिंधु के पार के देश 'हिन्द' और उसके निवासी 'हिन्दू' 'हिन्दुई' और 'हिन्दवी' ये सब नाम आठवीं से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं सदी तक लगातार आक्रमण करने वाले अरब, तुर्क, ईरानी और अफगानों ने दिए थे। इस तरह हिन्दी भाषा को संपूर्ण देश की भाषा के रूप में सबसे पहले विदेशियों ने पहचाना और उसी के अनुरूप उसे नाम दिया। 'हिन्दुई', 'हिन्दवी' के साथ 'हिन्दी' नाम भी काफी पुराना है, जैसा कि अमीर खुसरो (1253-1325)

के उल्लेख से सिद्ध होता है, हालांकि अमीर खुसरो ने 'हिन्दी' नाम से, जान पड़ता है, संस्कृत का भी संकेत किया था, क्योंकि हिन्दी को अरबी के समान कहकर उन्होंने जो प्रशंसा की, वह संस्कृत पर अधिक लागू होती है।

बारहवीं-तेरहवीं सदी से शुरू होकर जब वह अपभ्रंश से निकलकर स्वतंत्र भाषा बन रही थी, तभी से हिन्दवी ने अठारहवीं सदी तक सारे देश में दूर-दूर फैलकर संपर्क भाषा का दायित्व संभाल लिया था। विचित्र संयोग है कि उस समय तक और उसके बाद उन्नीसवीं सदी के अंत तक वह हिन्दी साहित्य की मुख्य भाषा भी नहीं थी। अवधी और ब्रज और अंततः ब्रज का हिन्दी का काव्य भाषा के रूप में पांच सौ वर्ष तक वर्चस्व बना रहा। परंतु अठारहवीं शताब्दी से जो नई सामाजिक चुनौतियां आने लगीं, उनका सामना करने में अपने व्यापक प्रसार के बावजूद ब्रजभाषा असमर्थ सिद्ध हुई। यह भारी जिम्मेदारी उठाने का सौभाग्य हिन्दवी नाम से प्रचलित भाषा को ही मिला। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से ही विदेशी विजेताओं के द्वारा राज्य विस्तार के लिए जो सैनिक अभियान किये गए, उनमें यही भाषा जन संपर्क का माध्यम रही। इस कारण शुरू से ही उसकी क्षेत्रीय विशेषताएँ घिसने लगीं और अंतरप्रांतीय व्यवहार में आकर उसका नया रूप निखरने लगा। हिन्दी क्षेत्र की बोलियों के अलावा उसने भारत की प्रायः सभी मुख्य भाषाओं के अनेक तत्त्व आत्मसात् किए और अपनी असीम ग्रहणशीलता के बल पर उसने सारे देश में स्वेच्छा से अपनाए जाने की योग्यता पैदा कर ली। हिन्दी की यही शक्ति उसकी भावी संभावनाओं का स्रोत है।

जिस तरह उत्तर-पश्चिमी स्थल मार्गों से आए विदेशियों ने उसे हिन्दी नाम देकर पूरे देश की प्रमुख भाषा बनाया और उसी के माध्यम से अपना शासन उत्तर-पूर्व, दक्षिण और पश्चिम सभी ओर बढ़ाया, उसी तरह दक्षिण-पश्चिमी समुद्री रास्तों से आए यूरोप के व्यापारी, राजनीतिक विजेताओं ने भी हिन्दुस्तानी नाम से उसकी पहचान की। इस तरह दोनों नाम हिन्दी और हिन्दुस्तानी भाषा की अक्षेत्रीय, अंतरप्रांतीय और सर्व भारतीय व्यवहार योग्यता के सूचक है। इसी योग्यता के बल पर और अपनी मूल प्रकृति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुराग से यह भाषा अंतर्राष्ट्रीय मान्यता की अधिकारी बन जाती है। हर नए राजनीतिक दौर में विदेशियों के द्वारा प्रतिष्ठा पाना इस मान्यता की गारंटी है।

सर्वसाधारण के व्यवहार की हिन्दी या हिन्दुस्तानी अपने दो भिन्न परिनिष्ठित और साहित्यिक रूपों में भारत और पाकिस्तान दो देशों की राजभाषा है। हिन्दी और उर्दू दो स्वतंत्र भाषाओं के रूप में भारतीय संविधान में भी स्वीकृत

है। परन्तु यह सर्वविदित है कि उनकी भिन्नता और अभिन्नता, पृथकता और एकता के बीच लगभग एक सौ वर्ष तक जो मीठा-कड़ुवा विवाद चलता रहा और भारत में जो उनका मिला-जुला व्यवहार होता रहा और हो रहा है, उससे यह साफ प्रकट होता है कि हिन्दी और उर्दू ऐसी भिन्न और परस्पर अनमिल भाषाएँ नहीं हैं कि उनमें परस्पर संवाद संभव न हो। हिन्दी और उर्दू के भारत में कोई अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं। यदि उर्दू पाकिस्तान की राजभाषा है, तो भारत के भी कई राज्यों में उसे यह दर्जा मिला हुआ है। जिस तरह भारत के विभिन्न भाषा क्षेत्रों में हिन्दी कहीं भी अजनबी नहीं है और उसके माध्यम से हर हर जगह सामान्य व्यवहार संभव है, उसी तरह बल्कि उससे भी अधिक पाकिस्तान की सभी भाषाओं- पंजाबी, सिंधी और पश्तों के क्षेत्रों में हिन्दी के लिए सहज अनुकूलता है। भारत के हिन्दी भाषी को पाकिस्तान बनने के पहले से इन भाषा-भाषियों के साथ आत्मीयता स्थापित करने में जो आसानी होती थी, उसमें भी कोई फर्क नहीं पड़ा। विदेशों में हिन्दी भाषी भारतीय और पाकिस्तान के बीच भाषा का कोई अंतर नहीं रहता। फिर भी, हिन्दी और उर्दू नाम से दो भाषाओं वाले देशों की ये भाषाएँ अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की भाषाएँ कही जा सकती हैं।

इतना ही नहीं, भारत के पास-पड़ोस के देशों नेपाल, अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका में हिन्दी के सरल रूप का सामान्य व्यवहार किसी न किसी स्तर पर कमोबेश सीमा में प्रचलित है। हिन्दी के इस सरल रूप को हिन्दुस्तानी कहना अधिक उपयुक्त है। विशेष रूप से उर्दू के साथ अधिक निकटता प्रकट करने के लिए। भारत और पाकिस्तान दोनों की इस सम्मिलित भाषा की अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की संभावनाएँ असीम हैं। पश्चिम एशिया के देशों में जहाँ पर इस समय भारतीयों और पाकिस्तानियों के आवागमन का क्रम बढ़ता जा रहा है, इसका स्पष्ट संकेत मिल रहा है। ज्यों-ज्यों हिन्दी, उर्दू भाषी व्यापार, कारोबार मजदूरी और तकनीकी और गैर-तकनीकी पेशों के सिलसिले में फैलते जाएंगे, हिन्दी-हिन्दुस्तानी का व्यवहार जोर पकड़ता जाएगा। पश्चिम एशिया के देशों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी में अरबी-फारसी मूल के शब्दों की अपेक्षा बहुलता रहेगी। भारत बढ़ने पर दोनों देशों की निकटता में भी वृद्धि हो सकती है। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार में फिल्मों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी फिल्मों और सुगम संगीत की लोकप्रियता पाकिस्तान और पश्चिम एशिया के देशों में निरंतर बढ़ रही है। भाषा के प्रसार में इसमें अनायास सहायता मिलती है।

भारतीय संस्कृति का प्रसार किसी समय दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में हिन्देशिया, मलेशिया, कम्बोज, हिन्द-चीन से लेकर जापान, कोरिया और मंगोलिया तक था। चीन में भी बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था। इस सांस्कृतिक अभियान की आधार भाषाएँ संस्कृत और पालि थीं। इन देशों की भाषाओं में संस्कृत और पालि का प्रभाव आज तक मौजूद है। श्रीलंका की सिंहली भाषा उसी वर्ग की है, जिसकी हिन्दी। संस्कृत और पालि के माध्यम से सिंहली और हिन्दी की निकटता है। इस प्राचीन सांस्कृतिक और भाषिक दाय को हिन्दी ही वहन कर सकती है। इन देशों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का अंतर्राष्ट्रीय रूप अपेक्षाकृत संस्कृतनिष्ठ होगा।

प्रवासी भारतीय दुनिया के अनेक भागों में काफी बड़ी संख्या में फैले हुए हैं। इनमें हिन्दी के अलावा अन्य भाषा-भाषी भी हैं। पर अधिकांश में उनकी समान संप्रेषण भाषा हिन्दी बन गई है। मॉरीशस, फिजी, ट्रिनिडाड, गुयाना आदि भूतपूर्व ब्रिटिश उपनिवेशों में बहुत बड़ी संख्या हिन्दी क्षेत्र के भोजपुरी बोली बोलने वालों की है। अन्य बोलियों और भाषाओं के बोलने वाले भी हैं और हिन्दुओं के अलावा मुसलमान भी हैं। सामान्य संप्रेषण के लिए इन सबने हिन्दी-हिन्दुस्तानी को ही अपनाया है। अफ्रीका के कुछ देशों दक्षिण अफ्रीका, केनिया, युगांडा आदि में भी जहाँ गुजराती भाषियों की संख्या अधिक है हिन्दी भाषा भारतीयों के सामान्य व्यवहार में अधिक आती है। इन देशों में आर्य समाज ने हिन्दी के प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में हिन्दी की पूर्व प्रतिष्ठा होने पर इन देशों के मूल निवासी भी अधिकाधिक संख्या में हिन्दी को अपनायेंगे।

भारत की जनसंख्या बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप अन्य भाषा-भाषियों की तरह हिन्दी भाषियों की प्रवासभीरुता कम होती जाएगी। तमिल भाषी तो कई शताब्दियों पहले दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में जा बसे थे। मलयालम भाषी केरलीय भी हाल में ही विदेशों में जाने लगे हैं। इधर कुछ दिनों से वे हजारों की तादाद में पश्चिम एशिया के देशों में भरते जा रहे हैं। पंजाबी भाषी दुनिया में हर जगह फैल गए हैं। अमरीका के पश्चिमी तट पर कैलिफोर्निया में उन्होंने बड़े-बड़े फार्म बनाए हैं। इन सब की तुलना में हिन्दी भाषी शायद समुद्र तटों से बहुत दूर स्थल में सिमटे रहने के कारण और पंजाबियों की तुलना में साहसिकता और कर्मठता की दृष्टि से पिछड़े होने के कारण अधिक संतोषी प्रवासभीरु हैं। परंतु आबादी का दबाव और बेरोजगारी जैसे उन्हें कलकत्ता और

बंबई जाने के लिए विवश करती है। विदेशों की ओर से आकृष्ट करेगी और भविष्य में जब भारत की विभिन्न भाषाओं वाले विदेशों में बसेंगे, तब अपने सामान्य आपसी व्यवहार के लिए हिन्दी-हिन्दुस्तानी का ही सहारा लेंगे। इंग्लैंड में जा बसे भारतीयों और पाकिस्तानियों का व्यावहारिक भाषा-सर्वेक्षण किया जाए तो कुल मिलाकर निष्कर्ष हिन्दी-हिन्दुस्तानी के पक्ष में ही निकलेगा। यह स्थिति इंग्लैंड के अलावा यूरोप के अन्य देशों में, अमरीका में और अन्यत्र भी होगी। इस संबंध में उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीयों, विशेष रूप से हिन्दी भाषियों का अंग्रेजी के प्रति दासभाव जैसा लगाव बहुत बड़ी बाधा है। पढ़े-लिखे, यानी अंग्रेजीदां हिन्दी भाषियों की अपनी भाषा के प्रति विशेष उदासीनता वास्तव में चिंत्य है।

सामान्य व्यवहार की भाषा के रूप में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रसार हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का प्रबल और मूलभूत अंग है। इस संबंध में भारत के विभिन्न भाषा क्षेत्रों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी के व्यवहार रूपों की विविधता को ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी अंग्रेजिया हिन्दी की न तो लिपि अलग है और न इसका समर्थक रही दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल, पूर्व भारत के बंगाल, असम और उड़ीसा, उत्तर भारत के कश्मीर और पश्चिम भारत के पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र के अनेक मुस्लिम बहुत छोटे-छोटे क्षेत्रों की हिन्दी, कलकतिया हिन्दी, बंबइया हिन्दी, कुछ फिल्मों के मजाक के तौर पर प्रयुक्त दक्षिणी भारतीयों की हिन्दी, पंजाबी हिन्दी, गुजराती हिन्दी, बंगाली हिन्दी आदि की तरह भिन्न-भिन्न देशों में प्रयुक्त हिन्दी-हिन्दुस्तानी में उन-उन देशों की भाषाओं का रंग आना अनिवार्य है। मानक हिन्दी में भी डच, फ्रेंच, पुर्तगाली और अरबी, फारसी-तुर्की भाषाओं के न जाने कितने शब्द और कुछ भाषिक तत्त्व भरे पड़े हैं। वर्तमान समय में हिन्दी के देश व्यापी प्रसार के साथ भारतीय भाषाओं के प्रभाव से उसके रूपों में विविधता आती जा रही है। इसमें भी अधिक विविधता उसके सामान्य व्यवहार के अंतर्राष्ट्रीय प्रयोगों में आयेगी। उसके लक्षण आज भी देखे जा सकते हैं। हिन्दी की यह ऐतिहासिक उदारता बनी रहेगी। अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में इस तरह की उदारता अंग्रेजी में सबसे अधिक है और शायद फ्रेंच में सबसे कम। जिस तरह इंग्लैंड जैसे छोटे से देश में क्षेत्र भेद के अनुसार भाषा का प्रयोग भेद पाया जाता है, और जिस प्रकार अमरीका के भिन्न-भिन्न यूरोपीय भाषाओं के बोलने वालों की अमरीकी अंग्रेजी में विविधता पाई जाती है, उसी तरह भूतपूर्व अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन देशों की अंग्रेजी में संबंधित भाषाओं का रंग लिए अंग्रेजी के तरह-तरह के रूप देखे जाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की हिन्दी-हिन्दुस्तान की भी कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति रहेगी। एक अंतर इस कारण अवश्य रहेगा कि अंग्रेजी का प्रसार शासन के बल पर हुआ, इसलिए सभी देशों की अंग्रेजी को उसके स्टैंडर्ड रूप की ओर उन्मुख बनाए रखने के प्रयास किए जाते रहे। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के विविध रूपों को हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की ओर उन्मुख होने की उस तरह की मजबूरी कभी नहीं हो सकती। राजभाषा हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता और उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा ही इस संबंध में नियामक अधिकरण की भूमिका निभा सकती हैं।

व्यावहारिक हिन्दी की एक और प्रवृत्ति गत पचास-साठ वर्षों से तेजी से बढ़ती जा रही है। वह है, अंग्रेजी शब्द ही नहीं पदबंधों तक की ज्यों का त्यों हिन्दी वाक्यों में ठूँसने की प्रवृत्ति। भाषा व्यवहार के सभी स्तरों पर अंग्रेजी से परिचित हिन्दी भाषियों की हिन्दी-हिन्दुस्तानी में मिश्रण की यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ती जा रही है कि अक्सर क्रिया रूप और उसमें भी केवल सहायक क्रिया के रूप, परसर्ग और शायद क्रिया विशेषण तो हिन्दी के रहते हैं, वाक्य के अन्य सभी घटक अंग्रेजी से लेकर प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी के इस रूप को उस तरह का अभी कोई नाम नहीं दिया गया, जिस तरह अरबी-फारसी शब्दावली के अतिशय बोझ से लदी हिन्दी को उर्दू नाम से अलग कर लिया गया था। इसका कारण शायद यही है कि उर्दू की तरह इस अंग्रेजी हिन्दी की न तो लिपि अलग है और न इसका समर्थक कोई अलग सांस्कृतिक या धार्मिक समुदाय। परन्तु भाषा प्रयोग के आधार पर समाज में वर्ग विभाजन तो इस प्रवृत्ति के कारण बढ़ ही रहा है। आजादी के बाद अंग्रेजी का प्रभाव और उसकी आतंकपूर्ण प्रतिष्ठा घटने के बजाए बढ़ती ही गई है। इस कारण इस अस्वस्थ और कुंठाजनक भाषा मिश्रण को रोकना कठिन जान पड़ता है। हिन्दी ही नहीं भारत की सभी भाषाएँ इस रोग की शिकार हो रही हैं। कोई देशव्यापी जन आंदोलन ही इस प्रवृत्ति को निरुत्साहित कर सकता है। हिन्दी में अंग्रेजी का यह मिश्रण उसके अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी की तकनीकी शब्दावली अवश्य एक सीमा तक हिन्दी के मौखिक व्यवहार में सहायक होगी। बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त विभिन्न व्यावसायिक वर्गों के परस्पर संवाद की अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी में निश्चय ही मुख्य रूपों से अंग्रेजी और सामान्य रूप से अन्य यूरोपीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली का प्रयोग अधिक सुविधाजनक और प्रायः अनिवार्य होगा।

सामान्य व्यवहार की हिन्दी-हिन्दुस्तानी विविध रूपों की स्थिति देश में प्रचलित उसके विविध रूपों के समान स्टैंडर्ड हिन्दी से नीचे के स्तर की होगी। उच्च स्तर की हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय प्रयोग के दो मुख्य संदर्भ हैं और अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी पर विचार करते समय प्रायः उन्हीं पर अधिक ध्यान जाता है। पहला संदर्भ शैक्षणिक प्रयोगों का है और दूसरा राजनैतिक मान्यता का। शैक्षणिक संदर्भ में शिक्षा और उसके विभिन्न स्तर और ज्ञान-विज्ञान संबंधी विविध विद्वत कार्य आते हैं। भाषा की वास्तविक प्रतिष्ठा मुख्य रूप से इस पर निर्भर होती है। राजनीतिक संदर्भ के अंतर्गत वह सब अंतर्राष्ट्रीय कार्य आता है, जिसका संबंध विभिन्न देशों के साथ कूटनीतिक संपर्क और वाणिज्य व्यवसाय से है। राष्ट्रसंघ और उसके अंतर्गत विभिन्न राजनीतिक, शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन भी इसी से संबंधित हैं। भाषा के अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार की यह सर्वोच्च स्थिति है और शैक्षणिक मान्यता बहुत कुछ उस पर निर्भर होती है।

शैक्षणिक दृष्टि से हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार की कई स्थितियाँ हैं। उन देशों में, जहाँ भारतमूल के निवासी अधिक संख्या में हैं, जैसे, फिजी, मॉरीशस, ट्रिनिडाड, सुरीनाम, गुयाना, वहाँ प्रवासी भारतीयों के बीच हिन्दी सीखने-सिखाने की औपचारिक व्यवस्था काफी अर्से से चल रही है। दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में भी जहाँ भारतीय आबादियाँ एक साथ बसी हुई हैं, यह व्यवस्था पाई जाती है। अधिकतर यह कार्य स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा होता है। पर कहीं-कहीं शासन द्वारा भी सहायता और मान्यता प्राप्त हुई है। परंतु यह शिक्षण शिक्षा के उच्च स्तर पर नहीं है, क्योंकि हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने से किसी प्रकार की उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। इसे हिन्दी के शैक्षणिक व्यवहार का एक सीमित अंग ही कह सकते हैं, क्योंकि इसका उपयोग वही करते हैं, जो हिन्दी को अपनी भाषा मानते हैं। जब इन देशों के मूल निवासी भी इसका लाभ उठाने लगेंगे, तभी इसे वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार कहा जा सकेगा। वर्तमान रूप में इसे हिन्दी की भावी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का प्रबल साधन अवश्य कहा जा सकता है। क्योंकि इसका असर हिन्दी-हिन्दुस्तानी के सामान्य व्यवहार पर पड़ता है और उससे गैर हिन्दी भाषी मूल निवासी भी हिन्दी को अपनाने की ओर उन्मुख होते हैं। हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था के साथ-साथ अन्य शैक्षणिक कार्य, साहित्यिक क्रियाकलाप, सामयिक साहित्य, साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थाएँ, प्रकाशन कार्य आदि के द्वारा भी हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण बनता है और उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की पृष्ठभूमि तैयार होती है। हम आशा कर सकते हैं कि

भविष्य में इन देशों में हिन्दी को राजनीतिक मान्यता मिलेगी और शासन की सहभाषा के रूप में उसका प्रयोग होने लगेगा। अभी केवल फिजी के संविधान में संसद में भाषण देने के लिए हिन्दुस्तानी की छूट मिली है। उच्च शिक्षा की लालसा पूरी करने के लिए इन देशों के नवयुवक अच्छी संख्या में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग और राष्ट्रभाषा समिति वर्धा की परीक्षाओं में बैठते हैं।

शैक्षणिक हिन्दी का वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय प्रसार यूरोप, अमरीका और एशिया के कुछ देशों में हुआ है। पश्चिमी और पूर्वी यूरोप में मिलाकर कम से कम एक दर्जन देशों में तीन दर्जन विश्वविद्यालय और संस्थानों में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था है। कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका में लगभग चार दर्जन विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और रूसी में हिन्दी की अनेक कृतियों के अनुवाद हुए हैं। इन भाषाओं में हिन्दी के द्विभाषी कोश, व्याकरण, इतिहास और समीक्षा संबंधी महत्त्वपूर्ण शोधपरक और परिचयात्मक प्रकाशन भी हुए हैं। प्राच्य शिक्षा और भारतीय विद्या सम्मेलनों में हिन्दी और उर्दू को भी स्थान मिलने लगा। एशिया में नेपाल ही ऐसा देश है, जहाँ हिन्दी को उच्चतम शिक्षा तक स्थान मिला है। त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की प्रतिष्ठा है। श्रीलंका के कोलम्बो विश्वविद्यालय में भी इस तरह की व्यवस्था हुई है। जापान में भी कम से कम आधे दर्जन विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिन्दी के पाठ्यक्रम चलते हैं, जिनमें कई में उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिन्दी-उर्दू के सम्मिलित विभाग हैं। कुछ देशों में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ भी मुद्रित या हस्त लिखित रूप में प्रकाशित होती हैं। परन्तु रूस और पूर्वी यूरोप के अन्य देशों को छोड़ सभी पश्चिमी देशों में हिन्दी शिक्षण या तो दक्षिण-पूर्व एशिया संबंधी अध्ययनों या भाषा विज्ञान विभागों के एक अंग के रूप में होता है। निश्चय ही हिन्दी को उन्नत देशों की भाषाओं के समान आदर नहीं मिला है। चीनी और अरबी भाषाओं की भी अंतर्राष्ट्रीय शैक्षणिक स्थिति हिन्दी से बेहतर है। जब तक शैक्षणिक, प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टि से स्वयं देश में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी से ऊँचा रहेगा। अभी तो यही आशा की जा सकती है कि हिन्दी भाषा और साहित्य स्वयं अपने बल पर, अर्थात् समृद्धि और गौरव अर्जित करके सम्मान प्राप्त करता जाएगा। यही वास्तव में स्थायी प्रतिष्ठा का मूल आधार है।

अंतर्राष्ट्रीय भूमि का अंतिम लक्ष्य हिन्दी के विश्वव्यापी राजनीतिक और कूटनीतिक व्यवहार और राष्ट्र की वास्तविक मान्य भाषा के रूप में विदेशों द्वारा

उसे स्वीकार किया जाना है। राष्ट्रसंघ की अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, स्पेनिश, चीनी और अरबी भाषाओं के साथ उसे सातवीं भाषा के रूप में मान्यता मिलना, उसी व्यवहार का तर्क सम्मत प्रतिफल हो सकता है। परन्तु उपर्युक्त छह भाषाओं में अंतिम दो चीनी और अरबी का राष्ट्रसंघ के कार्यों में अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है। प्रधानता केवल पहली तीन अंग्रेजी, रूसी और फ्रेंच की है। कहना न होगा इसका कारण राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक और सामरिक शक्ति ही है। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले फ्रेंच और जर्मन का जो महत्त्व था, वह बाद में नहीं रहा। अंग्रेजी को फ्रेंच के बराबर का दर्जा मिल गया और जर्मनी की पराजय जर्मनी भाषा के राजनीतिक पराभव का कारण बन गई। द्वितीय विश्वयुद्ध में फिर पराजित होकर जर्मनी के दो खंडों में विभाजित होने पर जर्मन भाषा विश्व के राजनीतिक मंच से विदा हो गई।

इसके विपरीत अंग्रेजी ने फ्रेंच को भी पीछे ढकेलकर विश्व भाषाओं में पहला स्थान प्राप्त कर लिया। इसका कारण अमरीका का राजनीतिक प्रभुत्व है, यद्यपि अंग्रेजी के पीछे खिसकती जा रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले दुनिया के भाषा मानचित्र पर रूसी का महत्त्व नहीं था, पर द्वितीय युद्ध के विजेताओं में अमरीका के साथ रूस का बराबरी का स्थान हो गया और रूसी भाषा भी दुनिया की दो महान भाषाओं में गिनी जाने लगी। फ्रेंच भाषा की महत्ता बनाए रखने के अनेक कारण हैं। फ्रेंच की अपनी भाषिक, विशेषताएँ विशेष रूप से उसकी अर्थभ्रम से रहित अपेक्षाकृत सुनिश्चित अभिव्यक्ति क्षमता उसकी अंतर्राष्ट्रीय उपयोगिता को कायम रखने का बहुत बड़ा कारण है। साथ ही राजनीतिक दृष्टि से यूरोप में फ्रांस का महत्त्व अद्वितीय रहा है।

आधुनिक काल में उसका गौरवपूर्ण इतिहास जर्मनी की विश्वविजय का महत्त्वकांक्षा की पूर्ति में उसके द्वारा उपस्थित की गई बाधाएँ और अदम्य साहस के साथ जर्मनी का मुकाबला करते रहने की उसकी संकल्प शक्ति आदि अनेक कारणों से फ्रांस की राजनीतिक प्रतिष्ठा स्थिर बनी रही। उसकी भाषा की प्रतिष्ठा के पीछे इन राजनीतिक घटकों का बहुत बड़ा हाथ है। स्पेनिश भाषा की मान्यता के पीछे जो ऐतिहासिक कारण हैं, उनमें दक्षिण अमरीका के अनेक देशों में उसके एकाकी प्रभुत्व का सबसे अधिक महत्त्व है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के विरुद्ध चीन के अमरीका-रूस के मित्र पक्ष में रहकर विजयी होने से चीन का राजनीतिक महत्त्व बढ़ने के साथ चीनी भाषा को भी महत्त्व मिला। साथ ही भौगोलिक विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से भी चीन का पहला स्थान रहा है।

अरबी भाषा अपने प्राचीन गौरव के बावजूद सदियों तक दबी रही, क्योंकि आधुनिक काल में अरब देशों की राजनीतिक स्थिति दुर्बल और पराधीनतापूर्ण थी। पर तेल भंडारों के धन से अरबों के भाग्य पलट गए और अचानक उनका महत्त्व बढ़ गया। धन के जोर से ही अरबी भाषा राष्ट्रसंघ की छठी अधिकृत भाषा हो गई।

भाषाओं की सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय मान्यता की उपरिलिखित परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में भारत और उसकी राजभाषा-राष्ट्रभाषा हिन्दी को देखने पर दोनों के अंतर्राष्ट्रीय मान और महत्त्व का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ही भारत ने दुनिया की बड़ी शक्तियों का ध्यान आकर्षित कर लिया था। भारतीय राजनेताओं में महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू के नाम विशेष रूप से विश्व विख्यात होने लगे थे। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उसका राजनीतिक, आर्थिक स्वाधीनता का संघर्ष विश्व के इतिहास में अद्वितीय था। आजादी के बाद उसकी राजनीतिक सुस्थिरता, वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति विश्व की परस्पर संघर्षशील शक्तियों के राजनीतिक, सामरिक प्रभावों से मुक्त उसकी स्वतंत्र विदेश नीति और एशिया और हिन्द महासागर के देशों में उसकी भौगोलिक स्थिति आदि अनेक कारण हैं, जिनसे अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत का सम्मान ऊँचा हुआ। क्षेत्रीय विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया में वह दूसरे स्थान पर है। लोकतांत्रिक व्यवस्था वाला वह सबसे बड़ा देश है। नव स्वतंत्रता प्राप्त विकासशील देशों को गुटनिरपेक्ष विदेश नीति के आधार पर संगठित करने और उनके साथ मिलकर सामूहिक रूप में विश्वशांति, समता, बंधुत्व मानवता और आर्थिक न्याय का प्रबल आंदोलन चलाने में उसकी शानदार भूमिका रही है। विश्व की राजनीति में उसकी बात का वजन है। ऐसे महान देश की भाषा आदर होना अवश्यंभावी है। इस प्रतिष्ठा के कारण स्वतंत्र भारत की संविधान स्वीकृत राजभाषा हिन्दी का सम्मान भी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बढ़ा है। यह सम्मान कहीं अधिक बढ़ गया होता, अगर हिन्दी को पूरे तौर पर राजभाषा का दायित्व निभाने का अवसर मिल जाता। राजकीय कार्यों में अंग्रेजी का साम्राज्य अब भी कायम है। विदेश नीति और कूटनीति संबंधी सभी कार्य अंग्रेजी में होते हैं। भारतीय दूतावासों में अंग्रेजी ही चलती है। हिन्दी का प्रयोग केवल औपचारिक प्रतीक रूप में होता है। परन्तु यह आशा निराधार नहीं है कि हिन्दी अंग्रेजी के द्वारा अपहृत अपना पद अवश्य प्राप्त कर लेगी। जब कभी ऐसा हो सकेगा, हिन्दी विश्व भाषाओं के मंच पर ऊँचा स्थान पाएगी और तब वह दिन दूर न रहेगा, जब

राष्ट्रसंघ में उसका वही स्थान होगा, जो अंग्रेजी, रूस और फ्रेंच को प्राप्त है। चीनी और अरबों की तुलना में एशिया के देशों में उसका प्रसार और सम्मान अधिक होगा। इसका संकेत उसके सरल हिन्दी-उर्दू के मूल रूप हिन्दुस्तानी के संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप और उसके पास-पड़ोस के देशों में व्यापक प्रचलन में मिलता है। इसकी अपरिचित संभावनाओं का उल्लेख पीछे किया गया है। परंतु भारत को अपनी भाषा नीति के निर्धारण, नियोजन और राजकीय हिन्दी के स्वरूप पर व्यावहारिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण से सतत विचार और पुनर्विचार करते रहना जरूरी है।

यह बारम्बर समझते रहने और स्मरण रखने की बात है कि हिन्दी गत आठ सौ वर्षों से देश व्यापी संपर्क की भाषा राष्ट्रभाषा के पथ पर अग्रसर होती रही है। औपचारिक राजकीय मान्यता भी उसे मिली और यह मार्के की बात है कि इसे मान्यता दूर दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में मध्य युग में ही मिल गई थी। लगभग तीन सौ वर्ष तक बहमनी सल्तनत में वह पद पर आसीन रही। लिपि अवश्य उसकी देवनागरी नहीं थी और उसका नाम दकनी या दक्खिनी हिन्दी था। परंतु उसी भाषा का उत्तर भारतीय आधुनिक रूप सामान्य संपर्क भाषा की तरह कमोबेश देश भर में प्रचलित रहा। इसी ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण उसे राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, महात्मा गांधी और अनेक गैर-हिन्दी क्षेत्र के सामाजिक नेताओं ने अखिल भारतीय भाषा के रूप में पहचाना। आगे चलकर वह स्वाधीनता संग्राम की मुख्य माध्यम भाषा बनी और अंत में स्वतंत्र भारत की राजभाषा चुनी गई। हिन्दी उसका प्राचीनतर नाम है, जो मध्य युग में उसके अधिक प्रचलित नाम हिन्दुई या हिन्दवी जितना ही पुराना है। फारसी-अरबी की शब्दावली और उसकी साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा के अधिक मिश्रण से हिन्दी की जो शैली अठारहवीं सदी में अलग उभर कर आई, उसका नाम उर्दू हो गया। लिपि की भिन्नता के कारण भाषा के दो रूपों का अलगाव अधिक स्पष्ट और स्थायी जैसा हो गया। परंतु दोनों के मूल में भाषा का जो एक ही सामान्य रूप विद्यमान है, उसे हिन्दुस्तानी नाम देना स्वाभाविक ही है। पूरे हिन्दुस्तान में वही प्रचलित है। उसके द्वारा हिन्दी का भारत की भाषाओं विशेषकर उर्दू के साथ सम्मिलन सहज हो जाता है। साथ ही वह भारत और पाकिस्तान के बीच भावनात्मक एकता स्थापित करने का साधन भी है। संविधान की 351 वीं धारा में हिन्दी के विकास के लिए दिये गए निर्देश में हिन्दुस्तानी शैली का उल्लेख भारत की मिली-जुली संस्कृति के संदर्भ में किया जाना

महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्तानी उस संस्कृति की वाहक, संरक्षक और उन्नायक है। उसकी ग्रहण शीलता उसे एशिया की अनेक भाषाओं से अपनी भाषा संपदा बढ़ाते हुए बड़े विस्तार में ग्राह्य बनने में सहायक होती रहेगी।

परन्तु हिन्दुस्तानी कोई अलग भाषा नहीं है। इसी कारण संविधान की अष्टम अनुसूची में उसे नहीं दिखाया गया। हिन्दुस्तानी एक भावना है। देश के विभाजन को उस भावना द्वारा बचाने के उद्देश्य से ही उस पर अधिक जोर दिया गया था और भावनात्मक उद्देश्य से ही संविधान में हिन्दी के स्थान पर राजभाषा हिन्दुस्तानी नाम से अंकित कराने के प्रयास किये गए थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी इस भावना के प्रेरणा स्रोत थे, परन्तु उसे पूर्ण भाषा के रूप में विकसित करना संभव नहीं था। हिन्दी और भारत की सभी विकासशील भाषाओं का संस्कृत के साथ ऐसा स्वाभाविक संबंध है कि उसे तोड़ने का प्रयास करना भाषा प्रवाह के स्रोत पर ही बाँध बनाने के समान है। संस्कृत का मुख्य उत्तराधिकार हिन्दी को ही मिला है। महात्मा गांधी की हिन्दुस्तानी भावना को भाषा रूप देने के उद्देश्य से संस्कृत की तत्सम शब्दावली को अरबी-फारसी की शब्दावली के साथ बराबरी का संबंध जोड़ते हुए हिन्दी से दूर रखने के जो प्रयास किये गए उनकी परिणति हास्यास्पद ही रही। आधुनिक युग में हिन्दी के नये पथ पर चलने के शुरू में 1800 के आस पास मुंशी इंशा अल्ला खाँ ने 'हिन्दवी छुट किसी और बोली का पुट' न आने देकर अरबी, फारसी, संस्कृत और ब्रजभाषा आदि के प्रभावों से मुक्त भाषा गढ़ने का जो प्रयोग 'उदयभान चरित' में किया था, वह भी विफल रहा था। इसके बाद बीसवीं सदी के दूसरे दशक में संस्कृत की घनघोर तत्समप्रधान शैली में रचित 'प्रियप्रवास' के प्रसिद्ध कवि पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ', 'चौखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' लिखकर इसी प्रकार के जो नमूने पेश किए उन्हें भी गंभीरता से नहीं लिया गया। भाषा की जिमनास्टिक कभी सफल नहीं हो सकती।

भाषा को उसकी परम्परा से काटा नहीं जा सकता। हिन्दी ने अपभ्रंश की गोद से उठकर चलना शुरू करते ही संस्कृत की संचित संपदा से पोषण पाना आरंभ कर दिया था। मध्य युग के संपूर्ण साहित्य में कबीर से लेकर पद्माकर तक संस्कृत की शब्द संपत्ति का जो प्रयोग हुआ, उसके बगैर साहित्य की रचना और भाषा का विकास हो ही नहीं सकता था। अरबी और फारसी के प्रभाव से भी उसने बहुत लाभ उठाया। परंतु किसी भाषा के विकास में स्वयं उसकी ऐतिहासिक परंपरा और आगत विदेशी प्रभावों की

बराबरी नहीं हो सकती। अरबी और फारसी के अतिशय प्रभाव ग्रहण करने का परिणाम भाषा विभाजन और उर्दू नाम से एक नई भाषा के उदय में हुआ। जिस तरह मध्य युग के पुनरोदय और नव जागरण को प्रभावशाली वाणी देने के लिए संस्कृत का आश्रय आवश्यक था, उसी प्रकार उन्नीसवीं-बीसवीं सदी के आधुनिक नव जागरण की अभिव्यक्ति के लिए वही अक्षय कोश काम आया। स्वतंत्र भारत की अनेकविध मांगों की पूर्ति भी उसी स्रोत से हो सकती है। यही अनुभव करते हुए संविधान की 351 वीं धारा में हिन्दी के विकास के लिए मुख्य रूप से संस्कृत से लाभ उठाने का निर्देश किया गया है। इस अनिवार्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही, यह भी सहज अनिवार्यता है कि संपूर्ण देश की नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हिन्दी सभी सहभाषाओं के संपर्क सहयोग से लाभ उठाए। परंतु अपने विकास क्रम में सहजभाव से संस्कृत के स्रोत और अन्य भाषाओं के सहचरजन्य प्रभावों का उपयोग करते हुए हिन्दी को अपनी आत्मा-अस्मिता या निजता को सुरक्षित रखना जरूरी है।

हिन्दी की निजता को सबसे बड़ा खतरा अंग्रेजी के अत्यधिक दबाव से पैदा हुआ है। अंग्रेजी की अनुवाद भाषा के रूप में उसके प्रयोग में संस्कृत की शब्दावली का बोझ लदता जा रहा है। इस क्रम में उसके सामान्य जन से कट जाने का भी खतरा है। अपनी बोलियों से भी वह अलग होती चली जा रही है। इसीलिए यह जरूरी है कि उसे अपने सरल सहज रूप में विकास करने दिया जाए। उसे अपने आधारभूत सामान्य भाषा रूप से, जिसका उल्लेख संविधान में हिन्दुस्तानी शैली नाम से किया गया है, लगाव बनाए रखना जरूरी है। तकनीकी और पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग के अलावा अनावश्यक संस्कृत तत्समता से भाषा को बोझिल न बनाकर अगर उसे जहाँ तक संभव हो सरल, सहज रूप में हिन्दी-हिन्दुस्तानी के नजदीक रखा जाए तो वह उर्दू का भी बहुत सा साहित्य आत्मसात कर सकती है। इससे देश में हिन्दी-उर्दू के वर्तमान भाषा विभाजन से उत्पन्न तनाव को दूर किया जा सकता है। यह भी संभव है कि पाकिस्तान के साथ भाषा संपर्क स्थापित हो जाए और भविष्य में भारत और पाकिस्तान इस उपमहाद्वीप की दो प्रधान भाषाओं हिन्दी और उर्दू की अंतर्राष्ट्रीय मान्यता के लिए मिलकर प्रयास करें। कम से कम तीन और राष्ट्र नेपाल, फीजी और मारिशस इस प्रयास में शामिल हो सकते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी भाषा एक अनुमान के अनुसार लगभग 9 लाख लोग बोलते हैं। 22 से 24 सितम्बर 2012 के मध्य यहीं जोहांसबर्ग में नौवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन भी हुआ था। एक स्थान पर यहाँ हिन्दी बोलने वालों कि संख्या 8,90,292 लिखी गई थी।

हिन्दी शिक्षा संघ

हिन्दी शिक्षा संघ एक हिन्दी सेवी संस्थान है, जो दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी के प्रचार और प्रसार का कार्य करती है। पंडित नरदेव वेदलंकार जिनका जन्म 1915 को गुजरात, भारत में हुआ था, वे दक्षिण अफ्रीका आए। इस दौरान उन्होंने देखा कि हिन्दी भाषा का सही तरीके से विकास नहीं हो रहा है। इसके बाद 25 अप्रैल 1948 को उन्होंने हिन्दी बोलने वालों की एक बैठक बुलाई और अपने मातृभाषा के प्रचार और प्रसार का तरीका खोजने के लिए कहा। इसके बाद उन्होंने 'हिन्दी शिक्षा संघ' की स्थापना की। इस कार्य हेतु कुल 35 हिन्दी पाठशाला जुड़े। पंडित जी को इसके बाद पता चला कि हिन्दी सिखाने वाले शिक्षक ही हिन्दी ठीक से नहीं बोल पाते हैं। इसके बाद उन्होंने हिन्दी शिक्षकों को हिन्दी पढ़ाना शुरू किया। जिससे वे अन्य विद्यार्थियों को सही तरीके से हिन्दी सीखा सकें।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के मध्य से ही पूज्य बापू का राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ था। वहां प्रवासी भारतीयों की संख्या अधिक था। यहां से सर्वप्रथम 1903 में 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक का हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम संपादक श्री मनसुखलाल नाजर थे। यह डरबन से 13 मील दूर फिनिक्स आश्रम से प्रकाशि होता था और श्री मदनजीत के प्रेस में मुद्रित होता था। गांधी जी की इस पर कड़ी कृपा थी। नाजर जी की मृत्यु के बाद गाँधी जी के अंग्रेज मित्र श्री हर्बर्ट किचन एवं उनके अनंतर श्री हेनरी एस. एल. पोलक इसके संपादक बने। अब यह पत्र बंद हो चुका है। इस पत्र के माध्यम से वहां के प्रवासी भारतीयों में नई चेतना का उदय हुआ था। इसके बाद 5 मई, 1922 को 'हिन्दी' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसके आद्य संपादक थे पं. भवानीदयाल सन्न्यासी। इससे भी हिन्दी को बढ़ावा मिला। इस प्रकार वहां आज तक हिन्दी की धारा प्रवाहमान है।

बर्मा में हिन्दी

बर्मा कभी भारत का ही अंग था किंतु अब यह एक स्वतंत्र राष्ट्र है। यहां भी प्रचुर मात्रा में प्रवासी भारतीय रहते हैं। यहां हिन्दी के विकास में पं. हरिवदन शर्मा एवं श्री एल. बी' लाठिया का योगदान अद्वितीय है। यहां श्री लाठिया ने 'बर्मा समाचार' का सर्वप्रथम प्रकाशन कर हिन्दी पत्रकारिता की नींव रखी। इसके बाद 'प्राची कलश' मासिक पत्र भी कुछ वर्ष तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। सन् 1934 में 'प्राची कलश' हिन्दी दैनिक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके संस्थापक थे श्री अनंतराम मिश्र। फिर कुछ दिनों के बाद 'प्रवासी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ। जिसके संस्थापक, प्रकाशक एवं संपादक श्री श्यामचरण मिश्र ही हुए। सन् 1951 में श्री रामप्रसाद वर्मा ने 'नवजीवन' दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। किंतु कालांतर में दोनों पत्र बंद हो गये। कुछ समय तक 'जागृति' पत्र का भी प्रकाशन हुआ। इसके बाद 1953 में 'ब्रह्मभूमि' मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके प्रकाशक श्री ब्रह्मानंद एवं संपादक श्री रामप्रसाद वर्मा हैं। यह रंगून से अब तक नियमित प्रकाशित हो रहा है। सन् 1970 में 'आर्य युवक जागृति' पत्रिका का भी मासिक रूप में प्रकाशन हुआ किंतु कुछ काल के बाद इसका प्रकाशन रुक गया। फिर भी बर्मा में हिन्दी पत्रकारिता की ज्योति ब्रह्मभूमि के माध्यम से जल रही है।

हालैंड में हिन्दी

पिछले कुछ वर्षों से सूरीनाम से आए हुए लाखों प्रवासी भारतीयों ने वहां हिन्दी की दीपशिखा प्रज्वलित कर अपने अस्तित्त्व को बनाए रखा है। यहां भारतीय संस्कृति की अनेक संस्थाएं हैं जिनके अंतर्गत हिन्दी शिक्षण एवं प्रकाशन होता है। 'लल्ला रुख' भारतवंशियों की प्रमुख संस्था है। इसी नाम से एक लघु पत्रिका का प्रकाशन होता है जिसमें सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक बातों की सूचनाएं ही छपती हैं। डॉ. जे.पी. कौलेश्वर सुकुल इस पत्र के माध्यम से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

इंग्लैण्ड में हिन्दी

इंग्लैण्ड ही विश्व में पहला राष्ट्र है जहां से सर्वप्रथम 1883 में कालाकांकर नरेश के संपादन में 'हिन्दोस्थान' पत्र का प्रकाशन हुआ। जिसने भारतीय स्वतंत्रता में अभूतपूर्व योगदान दिया था। इसके बाद 'वैदिक पब्लिकेशन्स'

का प्रकाशन हुआ। इसका मुद्रण आफसेट प्रणाली से होता था इसमें सामाजिक चेतना की ध्वनि अधिक थी। इसके बाद लंदन में हिन्दी प्रचार परिषद की स्थापना हुई और फिर उसी परिषद के मुखपत्र के रूप में सन् 1964 में एक हिन्दी त्रैमासिकी 'प्रवासिनी' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके संपादक है श्री धर्मेंद्र गौतम। इस पत्र के कई विशेषांक निकले जिसमें श्री गोपाल कृष्ण विशेषांक सर्वाधिक चर्चित रहा। हिन्दी एवं राष्ट्रीय चेतना का यह पत्र आज भी प्रकाशित हो रहा है।

कनाडा में हिन्दी

भारत की स्वतंत्रता के बाद कनाडा में प्रवासी भारतीयों की संख्या में अपार वृद्धि हुई, जिससे वहां हिन्दी का प्रसार स्वत: हो रहा है। इस समय टोरंटो से एक मासिक पत्र 'भारती' का प्रकाशन हो रहा है। फोटोस्टेट पद्धति से इस पत्र का मुद्रण होता है। तथा हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में सामग्री होती है। इसके अतिरिक्त श्री रघुवीर सिंह के संपादन में 'विश्व भारती' पाक्षिक पत्र का भी प्रकाशन होता है। कनाडा में 'विश्व भारती' राष्ट्रभाषा हिन्दी एवं भारतीय संस्कृति की संवाहिका के रूप में विख्यात है। अब टोरंटो से ही एक नया मासिक पत्र 'जीवन ज्योति' नई आशा, अतिशय उमंग एवं पवित्र लक्ष्य लेकर नवंबर, 1982 से प्रकाशित हो रहा है। इसके संपादक हैं प्रसिद्ध प्रवासी हिन्दी कवि संगीतज्ञ प्रो. हरिशंकर आदेश। इन्होंने ट्रिनिडाड में भी हिन्दी का अलख जगा रखा है। अत: 'जीवन ज्योति' से कनाडा में हिन्दी और भारतीय संस्कृति का गौरवमय प्रकाशन होगा, ऐसी आशा है।

रूस में हिन्दी

रूस में अन्य भारतेतर देशों की अपेक्षा हिन्दी का अध्ययन अध्यापन एवं प्रचार अधिक है। रूस ही ऐसा पहला देश है जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी का सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। रूस से हिन्दी के स्तरीय प्रकाशन हुए हैं तथा मास्को में एक हिन्दी प्रकाशन गृह भी स्थापित है। यहीं से सोवियत संघ नाम का एक हिन्दी मासिक पत्र प्रकाशित होता है। यह सचित्र पत्र है। तथा सोवियत संबंधों पर आधारित अनेक लेख इसमें प्रकाशित होते रहते हैं। यह पत्र हिन्दी के अतिरिक्त संसार की अन्य 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। इसके प्रधान संपादक हैं श्री निकोलाई ग्रिवाचोव। मास्को से दूसरा हिन्दी पत्र है।'सोवियत नारी'। यह

एक मासिक पत्र है तथा इसकी प्रधान संपादिका हैं- व. ई. फेदोतोवा तथा हिन्दी संस्करण के संपादक हैं- श्री ई. पा. गोलुबेन। यह भी संसार की लगभग 20 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है। इसमें सोवियत नारी जीवन का सचित्र चित्रण होता है।

चीन में हिन्दी

चीन संसार में सर्वाधिक आबादी वाला राष्ट्र है। यहां हिन्दी का प्रचार प्रसार तो नहीं किंतु चीन संबंधी जानकारी विभिन्न देशों को देने के लिए वहां से 'चीन सचित्र' नामक एक हिन्दी मासिक पत्र निकलता है। यह विश्व की 19 भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता है हिन्दी में इसके 326 अंक अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इसका मुद्रण एवं प्रकाशन बीजिंग से होता है।

जापान में हिन्दी

संसार में सर्वप्रथम सूर्योदय के दर्शन करने वाला ज्वालामुखियों का देश जापान अपनी वैज्ञानिक कुशलता के लिए जग प्रसिद्ध है। यहां हिन्दी का पठन पाठन अन्य देशों की ही भांति होता है। जापान एवं भारत का सांस्कृतिक एंव साहित्यिक संबंध बहुत प्राचीन है। बौद्ध धर्माबलंबी होने के कारण जापानियों का भारत से भावात्मक लगाव है इसीलिए यहां के लोग हिन्दी सीखते हैं। सन् 1964 में यहां से एक 'अंक' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ। जिसके अब तक 21 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त जापान भारत मित्रता संघ का मासिक पत्र 'सर्वोदय' भी प्रकाशित होता है। वस्तुत: यह धार्मिक पत्र है, किंतु इसमें हिन्दी संबंधी सामग्री रहती है। यथार्थ रूप में ये सभी पत्र जापानी से अनूदित हो कर प्रकाशित होते हैं। जापान का प्रथम हिन्दी पत्र 'ज्वालामुखी' है जिसका प्रथम अंक सितंबर, 1980 में टोक्यो से प्रकाशित हुआ था। इसके संपादक हैं श्री योशिअकि सुजुकि। इसके अब तक दो अंक ही प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशन के बारे में संपादक का प्रथम अंक में मत है कि हिन्दी के माध्यम से जापानी साहित्य का परिचय, जापानी साहित्य का अनुवाद, जापानी साहित्य एवं हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, जापानी संस्कृति का परिचय आदि करने से भारत के लोगों को भी इसका लाभ मिलेगा। पत्रिका का नामकरण फुजि पर्वत की भव्यता को लेकर किया गया है। ज्वालामुखी की तरह सदैव हम भी क्रियाशील रहें इसीलिए इस शीर्षक की सार्थकता है।

इस प्रकार भारत से बाहर विश्व के देशों में हिन्दी पत्र पत्रिकएं अपने अपने उपलब्ध साधनों के आधार पर प्रकाशित हो रहीं हैं, जिन्हें देखकर एक 'विश्व हिन्दी' की सहज ही कल्पना हो जाती है।

अमेरिका में हिन्दी

लगभग 1965 तक, अमरीकी जनता में हिन्दी भाषा के बारे में बहुत कम जानकारी थी, क्योंकि भारत में अंग्रेजी चलती है तथा जो थोड़े-बहुत भारतीय लोग अमरीका आते थे सब अंग्रेजी जानते थे। इसलिए यह भ्रम फैल गया था कि अंग्रेजी ही भारत की राष्ट्रभाषा है। अभी भी अधिकांश लोगों की यही धारणा है।

पिछले 20 वर्षों में तो स्थिति थोड़ी-सी बदल गई है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि भारत से बहुत अधिक लोग अमरीका पहुंच गए हैं, और संख्या की वजह से उनकी अपनी भाषाओं का अधिक प्रयोग है। इसके बारे में अब आगे चलकर चर्चा की जाएगी। दूसरा कारण यह है कि अमरीकी लोगों की ओर से भारत की संस्कृति के अनेक पहलुओं के प्रति आकर्षण होने लगा है। कुछ लोगों में इस समय आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव है। भौतिक विकास तथा व्यक्तिगत सफलता के उद्देश्यों से परे हटकर वे जीवन का मूल अर्थ जानना चाहते हैं और दार्शनिकों की तरह प्रश्न पूछते हैं। इस सिलसिले में भारत की अध्यात्म-परंपरा की ओर से आकर्षित होना स्वाभाविक है। बहुत-से लोग, विशेषकर युवा लोग, भारत के अध्यात्म-गुरुओं के चरणों में बैठने के लिए भारत आते हैं, और भारत के गुरु-संत-स्वामी अमरीका में भी पहुँचते हैं। क्योंकि अमरीका में, जैसे कि भारत में, धर्म के पालन तथा प्रचार के पूर्ण स्वतंत्रता है, उन गुरु-संत-स्वामियों का संदेश बहुत दूर तक फैल गया है। आजकल ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्होंने भारत के अध्यात्म-गुरुओं के बारे में नहीं सुना हो और कुछ ऐसे शब्द भी हैं (जैसे गुरु, योग, आश्रम, धर्म, कर्म) जो वहां की बोलचाल की भाषा में प्रचलित हो गए हैं।

उस आध्यात्मिक झुकाव के कारण भारत की ओर प्रवृत्त होकर बहुत-से लोग यह भी चाहते हैं कि जिस देश की आध्यात्मिक परंपराओं को वे सीख रहे हैं, उसकी भाषाएँ भी सीख लें। इस तरह हिन्दी, संस्कृत आदि की कक्षाओं में विद्यार्थियों का एक नया वर्ग पहुँच गया है।

अध्यात्म के अलावा, भारतीय शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला इत्यादि सांस्कृतिक परंपराओं में भी कुछ लोगों का झुकाव है। भारतीय डिजाइन

लोगों को पसन्द है। चित्रकला तथा मूर्तिकाल भी वहाँ बहुत बिकती है, और हस्तकला का भी काफी निर्यात होता है। कुछ अमरीकान चित्रकार भारतीय बिंबों तथा प्रतीकों से भी प्रभावित हैं और इनका प्रयोग अपनी कला में करते हैं। भारतीय संस्कृति में तो आजकल अमरीका में सबसे अधिक रुचि है। भारत के संगीतकाल बड़ी संख्या में अमरीका पहुँचते हैं और श्रोतागण उनको बड़ी रुचि से सुनते हैं। वहाँ के बहुत से संगीतकार भारतीय शास्त्रीय संगीत का अध्ययन भी करते हैं तथा भारत में अध्ययन के लिए पहुँचते हैं। उन लोगों में भी भाषा सीखने की इच्छा स्वाभाविक है, और ऐसे लोग भी हिन्दी की कक्षाओं में पहुँचते हैं।

इन सब परिस्थितियों के कारण हिन्दी के बारे में जो ज्ञान पहले था, वो अब कम होने लगा है।

अमरीका के भारतीय और हिन्दी

आजकल अमरीका में प्रवासी भारतीयों की संख्या बहुत बढ़ गई है। यहाँ तक की सरकार उनको अब एक सरकारी अल्प-संख्यक समुदाय मानने लगी है। 1965 से पहले, भारतीय अमरीका में बहुत कम थे तथा इधर-उधर बिखरे हुए थे, जिसके कारण उनकी संस्कृति कम विद्यमान थी। अब भारतीय सब क्षेत्रों में उपस्थित हैं और वे अमरीकन समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। संख्या अधिक होने के कारण, भारतीय लोग स्वयं अपनी संस्कृति सुरक्षित करने तथा बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

आजकल, विशेषकर न्यूयार्क या लॉस ऐंजल्स जैसे बड़े शहरों में, साड़ियों या पगड़ियों को देख कर किसी को आश्चर्य नहीं है, और भारतीय नाम-उपनाम भी कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। विभिन्न शहरों में कुछ ऐसे पड़ोस होने लगे हैं जिनमें बहुत-से भारतीय रहते हैं और हर तरह के रेस्तराँ तथा दुकाने हैं। कुछ जगहों में हिन्दी फिल्में दिखाई जाती हैं तथा रेडियो के दो-एक हिन्दी प्रोग्राम भी होते हैं। बहुत-से सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक उत्सव आदि होने लगे हैं। मुख्य त्यौहार बड़े धूम-धाम से मनाए जाते हैं। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारा भी इधर-उधर बनने लगे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक बड़े-बड़े कार्यक्रम भी हुए हैं।

प्रवासी भारतीय लोगों में इस नए सांस्कृतिक उमंग के दो रूप हैं। एक तो ऐसी संस्थाएँ तथा कार्यक्रम जिनमें भारत के सब प्रदेशों के लोग किसी उद्देश्य से मिलते हैं (जैसे 15 अगस्त को मनाने के लिए या सामयिक समस्याओं पर

विचार-विमर्श करने के लिए) ऐसे अवसरों पर ज्यादातर अंग्रेजी बोली जाती है। दूसरी ओर, ऐसी संस्थाएँ या सांस्कृतिक कार्य हैं जिनका आधार भारत के विभिन्न प्रादेशिक, या क्षेत्रीय संस्कृतियाँ हैं। उन्हीं में मातृभाषा का प्रयोग (चाहे हिन्दी हो या कोई अन्य भाषा) अधिक किया जाता है, और क्षेत्रीय परंपराओं (जैसे लोकगीत, कविता आदि) का पालन किया जाता है।

परिवारों में मातृभाषा का पालन तब किया जाता है जब बूढ़े लोग भी हैं, जिनको अंग्रेजी कम आती है। अन्यथा, भारतीय बच्चे अंग्रेजी ही बोलते हैं। लेकिन पिछले 5-6 वर्षों से, ये लड़के-लड़कियाँ विश्वविद्यालयों में पहुँचने लगे हैं। वहाँ हर विद्यार्थी को अकसर अपनी रुचि के अनुसार विदेशी भाषा का दो वर्ष तक अध्ययन करना पड़ता है। जहाँ हिन्दी या कोई और भारतीय भाषा सिखाई जाती है, भारतीय लड़के-लड़कियाँ उसी को सीखना पसंद करते हैं।

जर्मनी संघीय गणराज्य में हिन्दी

इस समय जर्मनी-संघीय गणराज्य के विश्वविद्यालयों में हिन्दी तथा दक्षिण एशिया को अन्य आधुनिक भाषाओं और साहित्य का मुख्य विषय के रूप में अध्ययन किया जा रहा है। यह अध्ययन पी.एच.डी. की उपाधि तक केवल हीडलवर्ग विश्वविद्यालय के साउथ एशिया इंस्टीयूट में ही किया जा सकता है। इस में कोई गर्व की बात नहीं है। इसके विपरित यह भी कहा जा सकता है कि यह स्थिति एक ऐसे देश के लिए निश्चय ही सन्तोषजनक नहीं है, जो परंपरा से भारतीय उपमहाद्वीप के साथ पूरी तरह प्रतिबद्ध रहा है। फिर भी एक ऐसी शुरूआत की गई है कि इससे वर्तमान स्थिति में इस देश में रचनात्मक आत्मआलोचना की प्रवृत्ति में आधुनिक प्राच्यविद्या की समस्याओं और संभावनाओं का परीक्षण करने की आवश्यकता है। कलासिक जर्मन प्राच्यविद्या की व्यापक एवं उपयुक्त परंपरा रही है। अन्य बातों के साथ आधुनिक प्राच्य विद्या का अब तक विकास समान रूप से होता रहा है और अभी भी अपभ्रंश का रूप जो उज्ज्वल सांस्कृतिक अतीत और विकृत वर्तमान के बीच तुलना करने से उभरा है, उस ने हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्य के बारे में हमारे दृष्टिकोण को अधिकांश रूप से निर्धारित किया है।

हिन्दी और अन्य दक्षिण एशियाई भाषाओं के संदर्भ में 'आधुनिक' उस विकास की ओर संकेत करता है, जो 19 वीं शताब्दी के पहले 25 वर्षों में प्रारंभ हुआ था अर्थात यह वह समय था जब पश्चिमी चितंन और लेखन, विशेषकर

अंग्रेजी का प्रभाव बंगाल के माध्यम से काफी पड़ा था। इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का एक युग था जो भारतीय कलाकारों और बुद्धिजीवियों के प्रयास से पश्चिमी संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ था और जिसमें अंधानुकरण से लेकर आलोचनात्मक अस्वीकरण या सर्जनात्मक ग्रहणशीलता की बात भी थी। यह संघर्ष अभी भी धीमे-धीमे चल रहा है। इस प्रसंग में हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन एक प्रकार से मिश्रित संस्कृति या सांस्कृतिक मिश्रण के भाषायी और साहित्यिक पक्षों का अध्ययन होगा। संस्कृति में जो हास हुआ है और सांस्कृतिक निर्देषिता की जो काल्पनिक अवस्था विलीन हो गई, इस पर शोक प्रकट करना तथा इस संघर्ष को अभारतीय या पश्चिमीकृत रूप कहना विकास का अत्यंत सरलीकरण है। इसके लिए हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इसका जिम्मेदार पश्चिम है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिए हम में से कुछ लोग क्षुब्ध भी हैं। उससे हिन्दी और अन्य दक्षिण एशियाई भाषाओं के उन असंख्य प्रयोक्ताओं के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा कि जो अभी भी कितने उपनिवेशी अतीत के प्रभाव को समाप्त करने में प्रयत्नशील है और जो अपनी भाषा और साहित्य की (चाहे वह मौखिक हो या लिखित) बढ़ती हुई सफलता के लिए प्रयत्नशील हैं।

हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह समझना इससे अधिक शैक्षिक रुचि का काम है और इस संघर्ष को समझना शैक्षिक दृष्टि से और अच्छा है। ऐसा समझने से हिन्दी और अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं को समझने में सहायता मिलेगी। यदि मुख्यत: उन भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन करने का निर्णय सांस्कृतिक दृष्टि से उत्प्रेरित हों तो यह उत्प्रेरणा मानवीय भावनाओं से जुड़ी हुई है।

इस क्षेत्र में जिन देशों की तुलना की जा रही है, उनसे हटकर पहले की उपनिवेशवादी शक्तियां तथा संयुक्त राज्य अमरीका या पूर्वी यूरोपीय देश, जिसमें जर्मन जनवादी गणराज्य भी शामिल है- आगे है। इसके आगे होने के कारण वस्तुत: शिक्षा को कम महत्व देना है। जर्मन संघ गणराज्य के पास कभी भी निश्चित कार्य-शैली या स्पष्ट राजनीतिक उत्प्रेरणा नहीं रही जो दूसरे देशों में कुछ न कुछ मिलती है। हिन्दी तथा अन्य आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं के जिस अध्ययन को सरकार ने बड़े पैमाने पर निर्दिष्ट किया है उस के विकास के लिए वह उत्तरदायी है। चूँकि अब भारत और पश्चिम जर्मनी में विकासशील (अर्थात सहायता प्राप्त करने वाले देश) तथा सहायता देने वाले औद्योगिक देश क्रमश:

भ्रामक भूमिका निभानी शुरू की है, इसलिए उनके आपसी संबंधों ने उस परंपरागत सरलता को खो दिया है, जो प्रथमत: और अंतत: आपसी सांस्कृतिक सद्भाव पर आधारित था। यही कारण है कि हमारे इस राजनीतिक या शैक्षिक परिवेश में जब कोई विद्यार्थी हिन्दी या किसी अन्य दक्षिण एशियाई भाषा और साहित्य (कलासिकी हो या आधुनिक) के अध्ययन का यदि व्यक्तिगत रूप से निर्णय लेता है तो उसे बिना किसी सरकारी प्रोत्साहन के मदद ही नहीं मिलती। इतना ही नहीं उसे अभी इससे कोई विशेष रोजगार भी मिलने की संभावना नहीं है। वस्तुत: प्राच्यविदों को अभी भी क्षेत्रीय विशेषज्ञों के रूप में सरकार द्वारा मान्यता मिलना शेष है।

वस्तुत: इस देश में अन्य विषयों के साथ-साथ कलासिकी प्राच्यविद्या के विद्यार्थी की अपेक्षा आधुनिक प्राच्यविद् भारत या दूसरे दक्षिण एशियाई देशों के व्यक्तियों और अधिकारियों से प्रोत्साहन तथा समर्थन मिलने पर कार्य कर पाएगा। ऐसा होना निश्चित रूप में उसके ऊँचे हौंसले के लिए घातक है। अगर आंगल-भारतीय कथा-साहित्य को कोई लब्धप्रतिष्ठित भारतीय लेखक और बुद्धिजीवी उससे कहता है (जैसा कि इस देश में कुछ वर्षों पूर्व हुआ था) कि उसे इस पिछड़ी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन पर अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए या वे ये कहें कि जो कुछ भी आधुनिक भारतीय साहित्य में है वह अंग्रेजी में लिखा जा चुका है।

वस्तुत: अपने पूरे इतिहास में हिन्दी साहित्य शायद ही कभी इतना समृद्ध और जीवंत नजर आया हो जितना वह आज है। यही कारण है कि कोई भी विद्यार्थी जो किसी कठिन भाषा को सीखने की चुनौती स्वीकार करता है वह हिन्दी जैसी कठिन भाषा की ओर आसानी से प्रवृत्त हो सकता है। हांलाकि हिन्दी लेखन में दो मुख्य प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ी हैं, पहली तो यह कि साहित्यिक भाषा आम जनता की भाषा के निकट आई है। अगर उसे राजनीतिक शब्दावली में कहें तो यह होगा कि साहित्यिक भाषा का लोकतंत्रीकरण हुआ है, जिसके कारण ज्यादा से ज्यादा पाठक अथवा श्रोता साहित्य में अपनी भूमिका निभा सकते हैं (ठीक वैसे ही जैसे राजनीति खेल रहे हों)। दूसरी विशेषता है साहित्य का भाषायी स्थानीकरण (लिंविस्टिक लोकोलाइजेशन) विशेष रूप से न केवल खड़ी बोली में वरन् लिखित व्याख्यात्मक गद्य के क्षेत्र में 'अनेकता में एकता' का सिद्धांत स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होता है और यह वह सिद्धांत है जिस पर भारत जैसे विस्तृत और विभिन्नता से भरे देश का भविष्य निश्चित तौर पर निर्भर करता है।

सूरीनाम में हिन्दी

सूरीनाम में रहने वाले भारतीय प्रायः उत्तर भारत से आए हुए हैं और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार प्रदेश के निवासी हैं। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, गुजराती और मराठी हैं। ये सभी भाषाएँ यूरोपीय भाषा वर्ग की हैं। हिन्दी को पाँच प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है। पहाड़ी राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी और बिहारी। इन भाषा क्षेत्रों में कई बोलियाँ हैं। सूरीनाम में हिन्दुस्तानी प्रवासी लोग मुख्य रूप से भोजपुरी और अवधी बोली बोलते थे। इन बोलियों के अतिरिक्त अधिकांश भारतीय मूल के लोग जो सूरीनाम में बस गए थे उत्तर भारत की सार्वजनिक संपर्क भाषा खड़ी बोली भी जानते थे। खड़ी बोली के अलावा उर्दू का भी प्रयोग होता था।

वास्तव में भारतीय प्रवासियों के आपसी संपर्क के कारण उनकी सभी भाषाएँ मिश्रित होकर विशिष्ट प्रचलित हिन्दी बोली जाती है। साहित्य और अध्यापन के प्रभाव से हिन्दुस्तानी या उर्दू (मुस्लिम) और सामान्य उच्च-हिन्दी (हिन्दू) ज्यादातर मानक भाषा का रूप धारण करने लगी। वर्तमान समय में इस भाषा का प्रयोग भाषण, पत्र, सूचना आदि में शुद्ध हिन्दुस्तानी या सरल उच्च हिन्दी के रूप में होता है। बोलचाल की भाषा में स्थानीय भाषाओं का भी प्रभाव आ गया है। गयाना पड़ोसी देश से पश्चिमी प्रांत निकेरी में अंग्रेजी का प्रभाव भी पड़ा है। इसी में एक बोली स्रानांग तोंगो है जिसे नीग्रो इंगलिश भी कहा जाता है। वास्तव में अधिकांश भारतवंशी होने होने के कारण उनकी बोलचाल की भाषा सूरीनाम की धरती पर विकसित हुई है जिसे ''सरनामी हिन्दी'' कहा जाता है और अब वह केवल सरनामी से जानी जाती है। हिन्दी के अलावा बहुत से भारतवंशी स्रानांग तोंगो भी बोलते हैं। विशेष रूप से पुरुष वर्ग और युवा वर्ग हिन्दी के अतिरिक्त यह भाषा अच्छी तरह से बोलते हैं। परिवार में युवा वर्ग प्रायः सरनामी का ही प्रयोग करता है।

पारामारिबो राजधानी में भारतवंशियों द्वारा हिन्दी के अतिरिक्त डच भाषा का अधिक प्रयोग किया जाता है। कुछ ऐसे परिवार हैं जहाँ हिन्दी समझी नहीं जाती। ये परिवार बहुत समय पहले से ही पारामारिबो में बसे हुए हैं। अब कई भारतवंशी हिन्दी सीखने की कोशिश कर रहे हैं।

देश और निवासी

यहाँ दुनिया की करीब सभी जातियाँ रह रही हैं–अमरेंद्यन (रेड-इंडियन या भिलनी), नीग्रो, हिन्दुस्तानी, जाबी (इंडोनेशियन), बुश-नीग्रो, चीनी,

लिबानिश (यहूदी) परिवार, यूरोपियन आदि। 1980 की जनगणना के अनुसार 39 प्रतिशत हिन्दुस्तानी, 35 प्रतिशत नीग्रो, 18 प्रतिशत इंडोनेशियन, शेष 8 प्रतिशत अन्य जातियाँ हैं। इस प्रकार सूरीनाम देश केरीबियन क्षेत्र में सब से विषमरूपी समाज है। कई जातियों के साथ-साथ यहाँ कई संस्कृतियाँ और कई भाषाएँ भी हैं। इसकी कुल आबादी लगभग चार लाख है। इस चार लाख में जो भाषाएँ बोली जाती हैं वे हैं–डच, स्रानांग, तोंगों, हिन्दी (सरनामी हिन्दी), उर्दू, जावी, चीनी, अंग्रेजी, बुशनीग्रों की कई भाषाएँ, रेड-इंडियन की कई भाषाएँ आदि। संसार में शायद कोई ऐसा देश हो जहाँ इतनी आबादी में इतनी सारी भाषाएँ बोली जाती हों।

भारतवंशी समाज

आज से यदि 110 वर्षों के भारतवंशियों के इतिहास पर प्रकाश डाला जाए तो यही पता चलता है कि हमारे पूर्वजों ने यहाँ की जमीन को आबाद किया, भूमि पर खेती की और सूरीनाम में शांति तथा प्रगति के साथ अपना जीवन आरंभ किया। इसी तरह से अफ्रीका तथा एशिया के अन्य आप्रवासियों ने भी इस देश की उन्नति और विकास में योगदान दिया। सन् 1873 ई0 में भारतवंशी पूर्वजों ने सूरीनाम देश में अपना प्रथम पग रखा। प्रथम जहाज जो आया था वह था ''लालारुख'' जिसमें 410 लोग थे। समुद्र के रास्ते से आने के कारण 11 लोगों की मृत्यु हो गई थी। कुल योग जो प्रथम बार थे 399 इस जहाज ''लालारुख'' ने 4 जून 1873 को सूरीनाम नदी में प्रवेश किया था और 5 जून को हमारे पूर्वजों ने अपना पैर इस देश की धरती पर रखा। अनेक कठिनाइयों और संकटों के बीच अपने पूर्वजों ने आज भी धर्म, संस्कृति, भाषा आदि को सुरक्षित रखा है। इतिहास बताता है कि सन् 1873 ई0 तक प्रायः 56 वर्षों तक किसी न किसी रूप में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था सरकारी विद्यालयों तथा स्वैच्छिक संस्थाओं में निरन्तर चलती रही, किन्तु सन् 1929 से अब तक प्रायः 55 वर्षों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सरकारी विद्यालयों में बंद हो गया और केवल स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा ही कुछ काम होता है।

मॉरीशस में हिन्दी

हिन्द महासागर में अवस्थित मॉरीशस ही वह पहला देश है, जहां सर्वप्रथम दिसंबर 1834 में प्रवासी भारतीयों के चरण पड़े थे। अन्य देशों में विनीडाड

1845, द. अफ्रीका 1860, गुयाना 1870, सूरीनाम जून 1873, फिजी मई, 1879 में भारतीय मजदूर पहुंचे थे। मॉरीशस ही वह प्रथम भारतेतर देश है जहां विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हुआ और राष्ट्र संघ में हिन्दी को स्थान दिलाने का प्रस्ताव भी सर्वप्रथम इसी ने ही रखा था। अत: विश्व हिन्दी साहित्य में मॉरीशस का अपना विशिष्ट स्थान बन गया है। इस समय वहां भावयित्री एवं कारयित्री दोनों प्रतिभाएं एक साथ कार्यरत हैं। हिन्दी पत्रकारिता की दृष्टि से मॉरीशस में सर्वप्रथम 15 मार्चए 1909 को 'हिन्दुस्तानी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र हिन्दी, अंग्रेजी तथा गुजराती में एक साथ प्रकाशित होता था। इसके प्रथम संपादक डॉ. मणिलाल थे। इस पत्र के माध्यम से ही वहां के लोगों में सामाजिक, राजनीतिक चेतना का उदय होने के साथ-साथ का भी अनुभव किया। लेकिन डॉ. मणिलाल के भारत आने के बाद ही इस पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। सन् 1910 में डॉ. मणिलाल ने वहां आर्य समाज की स्थापना की और एक प्रेस भी खोला। यहीं से सन् 1911 में 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था। पहले यह पत्र आर्य सभा के पदाधिकारियों की देख रेख में चला। फिर सन् 1916 में पं. काशीनाथ किष्ठो इसके संपादक बने जिन्होंने बड़ी लगन और निष्ठा से इसे कई वर्षों तक जीवित रखा। इसमें आर्य समाज की शिक्षा के साथ-साथ वैदिक धर्म को भी प्रधान स्थान मिलता था। इसी वर्ष श्री रामलाल के संपादन में 'ओरिंटल गजेट' नाम का एक और पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें भारतीयों के बारे में प्रचुर सामग्री छपती थी। सन् 1920 में इंडोमॉरीशस संघ के तत्त्वाधान में 'मारिशस टाइम्स' का प्रकाशन हुआ। 1924 में श्री गजाधर राजकुमार के संपादन में मॉरीशसमित्र' नाम का एक पत्र निकला जिसमें अधिकतर सामाजिक सुधार तथा भ्रातृत्व भावना के लेख छपते थे। फिर सन् 1929 में 'आर्य वीर' नाम का एक द्विभाषिक पत्र निकला। यह एक साप्ताहिक पत्र था जिसके प्रथम संपादक पं. काशीनाथ किष्ठो ही हुए। इसमें आर्य समाज के विचारों का बाहुल्य रहता था।

निज भाषा उन्नति अहैए निज उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान केए मिटै न हिये को सूल।।

सन् 1933 में सनातन धर्मावलंबियों में श्री रामासामी नरसीमुलु (नरसिंह दास) के संपादन में 'सनातन धर्मांक' पत्र निकला। जिसमें हिन्दू धर्म और रीति रिवाजों पर विपुल सामग्री दी जाती थी यह एक द्विभाषिक पत्र था। मॉरीशस के भारतवंशियों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से सन् 1936 में इंडियन

कल्चरल एसोशिएशन की स्थापना हुई। इस संस्था ने 'इंडयन कल्चरल रिव्यू' नाम का एक पत्र निकाला जिसके प्रथम संपादक थे डॉ. के. हजारी सिंह जो मोक स्थित महात्मा गांधी के वर्तमान निदेशक हैं। इसी संस्थान में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन सन् 1976 में हुआ था। सन् 1936 में रिव्यू के एक पूरक हिन्दी पत्र 'वसंत' का प्रकाशन हुआ जिसके संपादक थे पं. गिरजानन उमाशंकर। कुछ वर्ष प्रकाशित होने के बाद यह पत्र बंद हो गया। पाँच वर्ष पूर्व 'वसंत' का पुनर्जन्म हुआ और इसके वर्तमान संपादक हैं मारिशस के प्रसिद्ध लेखक श्री अभिमन्यु अनंत। यह एक मासिक पत्र है तथा महात्मा गांधी संस्थान के तत्त्वाधान में प्रकाशित हो रहा है। यह पूर्ण साहित्यिक धारा पत्र है। इसमें नवोदित रचनाकारों को अधिक स्थान मिलता है। इसका कहानी विशेषांक काफी ख्याति अर्जित कर चुका है। विदेशी हिन्दी पत्रों में वसंत का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है तथा इसका स्तर भी भारतीय श्रेष्ठ पत्रों के समान ही है।

सन् 1942 में पब्लिक रिलेशंस ऑफिस से 'मासिक चिट्ठी' नाम से एक लघु पत्र निकला जो सूचनात्मक अधिक था। सन् 1945 में 'आर्यवीर जागृति' नाम से एक दैनिक पत्र निकला जिसके संपादक थे प्रो. विष्णुदयाल वासुदेव। इसने भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी परंतु कुछ वर्षों के बाद इस बंद होना पड़ा। सन् 1948 में 'जनता' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके प्रथम संपादक हुए श्री जयनरायण राय। इसमें साहित्यिक और हिन्दी के लिए समर्पित भाव को स्थान मिला। बाद में इसको कुछ समय के लिए बंद होना पड़ा परंतु पुनः सन् 1974 में इसका पुनःप्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस समय 'जनता' मॉरीशस का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक माना जाता है। तथा इसके वर्तमान संपादक हैं श्री राजेन्द्र अरुण। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के समय इसने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए उत्कृष्ठतम भूमिका निभाई थी।

सन् 1948 में ही एक और पत्र 'जमाना' भी विष्णुदयाल बंधु के संपादन में निकला। यह मॉरीशस के हिन्दी लेखकों का सहयोगी पत्र था। और इसमें अधिकतर हिन्दी की रचनाओं का स्थान दिया जाता था। अब यह पत्र कभी कभार ही निकल पाता है। इसके उपरांत आर्य सभा मॉरीशस ने पुनः 'आर्योदय' नाम का एक और पत्र निकाला। यह पत्र आज भी वैदिक धर्म और हिन्दी की सेवा बड़ी निष्ठा से कर रहा है। सन् 1953 में मॉरीशस आमाल गामटेड के तत्त्वाधान में 'मजदूर' का प्रकाशन हुआ जिसमें प्रवासी भारतीयों के समाचारों को प्रमुखता से छापा जाता था। सन् 1959 में श्री भगतसुरज मंगर और श्री रामलाल

विक्रम के संपादन में 'नवजीवन' का प्रकाशन हुआ। फिर सन् 1960 में मॉरीशस हिन्दी परिषद का त्रैमासिक पत्र 'अनुराग' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका को सम्पूर्ण मॉरीशसीय लेखकों का सहयोग प्राप्त था। इसके प्रथम संपादक थे पं. दौलत शर्मा। इसमें कविताए कहानी, नाटक, संस्मरण, भेंटवार्ता तथा निबंध को भरपूर स्थान दिया जाता है। यह पत्र इस समय मॉरीशस का एकमात्र त्रैमासिक साहित्यिक पत्र है। संप्रति इसके संपादक हैं मारिशस के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कवि और लेखक श्री सोमदत्त बखौरी। इसी वर्ष 'समाजवाद' पत्र का भी प्रकाशन हुआ जो थोड़े दिनों बाद बंद हो गया। हिन्दू मॉरीशस कांग्रेस ने 'कांग्रेस नाम से तथा प्रशिक्षण महाविद्यालय ने 'प्रकाश' नाम से सन् 1964 में अपने अपने पत्र निकाले। प्रकाशन में वहां के प्रशिक्षणार्थियों की रचनाओं का बाहुल्य होता है। यह पत्र अब भी वार्षिक अंक के रूप में प्रकाशित हो जाता है। प्रो. रामप्रकाश इसके संपादक हैं। सन् 1965 में मॉरीशस में सर्वप्रथम एक बाल पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसका नाम था 'बाल सखा'। यह पत्रिका हिन्दी लेखक संघ के तत्त्वाधान में प्रकाशित हुई।

सन् 1970 में मॉरीशस के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री मोहनलाल मोहित के संपादन में 'आर्य समाज' का हीरक जयंती विशेषांक प्रकाशित हुआ तथा सन् 1973 में 'वैदिक जरनल' का प्रकाशन। इन दोनों पत्रों का संकल्प हिन्दी भाषा को सुदृढ़ बनाना था। सन् 1974 में त्रियोले से 'आभा' दर्पण' नाम के दो विशुद्ध साहित्यिक पत्र निकले। ये मासिक पत्र थे। 'आभा' के समपादक हैं मारिशस के उदयीमान कवि तथा कहानीकार श्री महेश रामजियावन। 'आभा' का कहानी विशेषांक पाठकों में काफी चर्चित रह चुका है। इसी के साथ द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री दयानंदलाल वसंतराय के संपादन में 'शिवरात्रि' वार्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र आज भी अपनी गरिमा और गौरवमयी परंपरा के साथ प्रकाशित होता है। इसमे भी हिन्दी साहित्य को प्रचुर स्थान दिया जाता है तथा संस्कृत शिक्षा के लिए भी कभी कभार अच्छे लेख प्रकाशित होते हैं। सन् 1975 में हिन्दी सरस्वती संघ, त्रियोले की त्रैमासिक पत्रिका 'रणभेरी' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसमें वहां के हिन्दी रचनाकारों को विशेष रूप से प्रोत्साहन देने का संकल्प है। इस प्रकार मॉरीशस में हिन्दी पत्रों की एक लंबी पृष्ठ श्रंखला समय के साथ निरंतर बढ़ती जा रही है, जो कि विश्व हिन्दी साहित्य के लिए एक शुभ लक्षण है।

नेपाल में हिन्दी

नेपाल में हिन्दी देश के अधिकांश क्षेत्र में स्थानीय नेपाली भाषा की तरह बोली जाती है और बहुसंख्य लोग हिन्दी बोल या समझ सकते है। यही कारण है कि भारत से नेपाल जा रहे लोगों को बोल-चाल में अधिक समस्या नहीं होती है।

यों देखा जाए तो डेढ़ करोड़ की आबादी वाले इस देश में लगभग पचहत्तर प्रतिशत लोग हिन्दी का किसी न किसी रूप में प्रयोग करते हैं। बाकी आबादी में उन निरे अशिक्षित हिमालय की ऊपरी या सुदूर उत्तरी सीमा पर रहने वाले तिब्बती या उनके मिश्रित नस्ल के लोगों को ले सकते हैं, जिनका कोई संपर्क निचले भाग या तलहटी के लोगों से नहीं हो पाता। परंतु ऐसे लोग भी सामान्य व्यवहार की हिन्दी की समझ जरूर लेते हैं, क्योंकि तम्बाकू या अन्य कई चीजों के हिन्दी भाषी व्यापारी वहाँ भी पहुँचते ही रहते हैं। वास्तव में नेपाल की तराई और पहाड़ के लोगों के बीच आपसी आदान-प्रदान और संपर्क ने वहाँ पहाड़ी क्षेत्रों में हिन्दी को और भी सुलभ और ग्राह्य बनाया। इस संपर्क से नेपाली भाषा का भी बहुत विकास हुआ है और नेपाली के इस विकास के पीछे हिन्दी का मुख्य रूप से हाथ रहा है। हिन्दी और उसकी बोलियाँ जहाँ तराई के लोगों को आसानी से नेपाली के निकट ले गईं वहीं पहाड़ के लोगों के बीच सुगम और लोकप्रिय भी होती गईं। इसके साथ ही पहाड़ों में चलने वाली नेपाली की समानांतर अन्य कई भाषाएँ जैसे गुरूड़, मगर, लेप्चा, तामाडु, डोटेली, शेर्पाली, नेवारी आदि अनेक भाषाओं के बीच नेपाली को तेजी से फलने-फूलने और राष्ट्रभाषा होने का अवसर भी हिन्दी के कारण मिला। यदि नेपाली भाषा की प्रवृत्तियाँ हिन्दी से संबद्ध नहीं होतीं, उसकी शैलियों से अगर वह जुड़ी नहीं होती तो आज नेपाली भाषा वहाँ की राष्ट्रभाषा कहलाने का अवसर संभवतः नहीं पा सकती। क्योंकि नेवारी जैसी समृद्ध, प्राचीन और लोकप्रिय भाषा पहले से ही डटी थी। फिर भी वह तो काठमांडू उपत्यका के सभी राज्यों की राजभाषा भी कभी रह चुकी थी। पर चूंकि नेपाली (जिसका पुराना नाम खसकुरा, पर्वते या गोरखा भाषा है) हिन्दी की उत्तर-पश्चिमी धारा की पहाड़ी राजस्थानी बोलियों से विकसित हुई थी, इसलिए उसमें हिन्दी की वे सभी मूल प्रवृत्तियाँ ज्यों की त्यों आज तक बनी हुई हैं। फलतः वह नेपाल के पहाड़ों में चलने वाली मगर, तामाडु, लेप्चा, डोटेली, शेर्पाली, नेवारी आदि कई विकसित एवं समृद्ध भाषाओं को पीछे धकेल कर आसानी से राष्ट्रभाषा के स्तर तक पहुँच गई।

नेपाल में हिन्दी का व्यवहार मुख्यतया तीन रूपों में होता है। प्रथम तो तराई के लगभग अस्सी-पचासी लाख लोगों की वह पहली भाषा है। अर्थात् भारत के उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा से लगे आबादी की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण नेपाल के इस तराई क्षेत्र में हिन्दी उसी रूप में प्रथम भाषा है, जिस रूप में बिहार और उत्तर प्रदेश में है। द्वितीय–हिन्दी वहाँ पहाड़ों एवं पहाड़ी नगरों में निवास करने वाले उन बहुसंख्यक लोगों की द्वितीय और संपर्क भाषा है, जिनकी मातृभाषा नेपाली है। इस प्रकार उस देश की आबादी के लगभग नब्बे प्रतिशत लोगों की हिन्दी प्रथम और द्वितीय एवं संपर्क भाषा है। सच तो यह है कि हिन्दी के इस व्यापक प्रयोग ने ही उसे सर्वप्रथम 1950-60 के दशक और फिर बाद के दशकों में कुछ राजनीतिक पेचीदगी में जकड़ दिया और राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने की मांग जोर पकड़ने लगी। नेपाल-तराई-कांग्रेस तथा उसके प्रमुख नेता बेदानंद झा ने तो इसे ही अपनी पार्टी का मूल मुद्दा बनाया और हिन्दी को संवैधानिक स्तर प्रदान करने का हर संभव प्रयास जारी रखा। उधर नेपाली कांग्रेस के कई प्रमुख नेता मातृका प्रसाद कोइराला, सूर्य प्रसाद उपाध्याय, रामनारायण मिश्र तथा प्रजा परिषद के भद्रकाली मिश्र आदि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने भी हिन्दी को संविधान में द्वितीय राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की मांग की। नेपाली कांग्रेस सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री बी. पी. कोईराला तो हमेशा हिन्दी से संबद्ध ही नहीं रहे वरन् उसके अच्छे लेखक भी थे। उस समय संविधान में हिन्दी को उपर्युक्त द्वितीय स्थान देने का निर्णय लगभग हो चुका था। हिन्दी को संवैधानिक स्तर तो वहाँ नहीं मिल सका, लेकिन जनस्तर पर वह उसी रूप में विकसित होती रही, भले ही बाद के सरकारी आंकड़ों में हिन्दी भाषियों की संख्या चाहे कितनी कर करके दिखाने की कोशिश होती रही है।

फिजी में हिन्दी

प्रशांत महासागर के मोती फिजी में भी भारतीय श्रमिक कुली के रूप में लाए गए थे। वे अपनी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से हिन्दी का अलख जगाए हुए हैं। यह संसार में दूसरा विदेशी राष्ट्र है जहां हिन्दी का बाहुल्य है। फिजी में सर्वप्रथम सन् 1913 में पं. शिवदत्त शर्मा की देखरेख में डॉ. मणिलाल द्वारा संपादित पत्र 'सेटलर' का हिन्दी अनुवाद साइक्लोस्टाइल रूप में प्रकाशित हुआ था। इसका लोगों ने भरपूर स्वागत किया। फिर सन् 1923 में 'फिजी समाचार' का प्रकाशन हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था इसके प्रथम संपादक थे श्री बाबूराम

सिंह और अंतिम श्री चंद्रदेव सिंह। यह पत्र कुछ वर्षों तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। इसी समय 'भारत पुत्र', 'बुद्धि' तथा 'बुद्धिवाणी' आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ जो अधिक दिन न चल सके और शीघ्र ही इतिहास की एक घटना बन कर रह गए। सन् 1930-40 के मध्य दो मासिक पत्र और निकले, एक पं. श्री कृष्ण शर्मा के संपादन में 'वैदिक संदेश' तथा दूसरा 'सनातन धर्म'। किंतु दोनों पत्र पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना के शिकार हुए और अकाल ही काल कवलित हो गये।

सन् 1935 में 'शांतिदूत' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पं. गुरुदयाल शर्मा इसके संस्थापक संपादक थे। अब श्री जगनरायण शर्मा संपादक तथा श्रीमती निर्मला पथिक सह संपादिक हैं। यह फिजी का सर्वाधिका प्रसार वाला हिन्दी पत्र है तथा फिजी टाइम्स समूह प्रकाशन से संबंधित है। इसमें साहित्यिक, राजनीतिक विषयों पर भरपूर सामग्री रहती है। इसका प्रकाशन स्तर भारतीय पत्रों के समान ही है। सन् 1940 के आस पास फिजी में कई हिन्दी पत्र उदित हुए, जैसे पं. वी. डी. लक्ष्मण के संपादन में 'किसान' अखिल फिजी कृषक महासंघ के तत्त्वाधान में 'दीनबंधु' श्री ज्ञानीदास के संपादन में 'ज्ञान' और 'तारा', आर्य पुस्ताकलय के अन्तर्गत 'पुस्तकालय', श्री काशीराम कुमुद के संपादन में 'प्रवासिनी' तथा श्री राम खेलावन के संपादन में 'प्रकाश' आदि। इन सभी पत्रों में हिन्दी लेखन और साहित्य के अलावा फिजी में प्रवासी भारतीयों की दशा का भी चित्रण होता था। ये सभी पत्र अधिक दिनों तक प्रकाशित न रह सके और एक एक कर सभी बंद हो गये। फिर भी फिजी में हिन्दी पत्रकारिता में इनका योगदान सराहनीय रहा। इसी प्रकार 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश' और 'मजदूर' पत्र भी हैं, जो दो चार अंकों के बाद अपने अस्तित्त्व की रक्षा न कर सके।

इसके बाद पं. राघवानंद शर्मा के कुशन संपादन में 'जागृति' पत्र का प्रकाशन हुआ जिसने काफी लोकप्रियता प्राप्त की। पहले यह पत्र अर्द्ध साप्ताहिक था। कालांतर में साप्ताहिक हो गया। इसमें किसानों से संबंधित समाचार अधिक रहते थे। कुछ वर्ष पहले ही इसका प्रकाशन बंद हुआ है। सन् 1953 में 'आवाज' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसमें राजनीतिक चेतना के स्वर अधिक थे। श्री ज्ञानदास के संपादन में 'झंकार' साप्ताहिक का प्रकाशन भी हुआ। इसका प्रकाशन बड़े उत्साह के साथ हुआ। इसमें सिने समाचारों का बाहुल्य होने से इसे शीघ्र ही लोकप्रियता मिली, पर सन् 1958 में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

सन् 1960 में 'जय फिजी' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक हैं पं. कमलाप्रसाद मिश्र। यह फिजी का अति लोकप्रिय पत्र है तथा साप्ताहिक रूप में अब भी प्रकाशित हो रहा है। इसका मुद्रण फोटो सेट विधि से होता है। इस पत्र के संपादक पं. कमला प्रसाद मिश्र की हिन्दी सेवा और उनका फिजी में हिन्दी पत्रकारिता में योगदान के आधार पर भारत सरकार ने उन्हें 'विदेशी हिन्दी सेवी' पुरस्कार से भी पुरष्कृत किया। स्व, श्री नंदकिशोर के संपादन में 'फिजी संदेश' का भी प्रकाशन हुआ। इनमें स्थानीय लेखकों को बहुत प्रोत्साहन मिलता था फिर भी ये अधिक लोकप्रिय नहीं हुए और बंद हो गये। सन् 1974 में पं. विवेकानंद शर्मा के कुशल संपादन में 'सनातन संदेश' का प्रकाशन हुआ। यह मासिक पत्र था। यह फिजी की सनातन धर्म सभा का प्रमुख पत्र था। श्री शर्मा के अनथक प्रयासों के बाद भी इसका प्रकाशन अधिक वर्षों तक न हो सका। इसके अतिरिक्त 1926 में 'राजदूत' पत्र का राजकीय प्रकाशन हुआए जिसमें राजकीय बातों को ही प्रश्रय दिया जाता था। इसी प्रकार 'विजय' के भी कुद अंक निकले, पर विजय भी अपनी रक्षा न कर सका और समय के हाथों पराजय को प्राप्त हुआ। फिजी के सूचना मंत्रालय द्वारा 'फिजी वृत्तांत और शंख के भी प्रकाशन हुए जिनमें वहां के जन-जीवन की चर्चाए प्रधान होती थी। इस प्रकार विश्व हिन्दी पत्रकारिता में फिजी के हिन्दी पत्रों की अविरल अनवरत चली आ रही है।

गुयाना में हिन्दी

यह राष्ट्र भी दक्षिणी अमेरिका में अवस्थित है और यहां भी काफी संख्या में प्रवासी भारतीय रहते हैं। हिन्दी और भारतीय संस्कृति यहां के जन जीवन में सर्वत्र फैली है। यहां सर्वप्रथम हिन्दी पत्र का प्रकाशन एक रविवारीय परिशिष्ट के अंग के रूप में हुआ। यहां से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक पत्र 'आर्गोसी' के रविवारीय अंक में एक पृष्ठ हिन्दी का रहा करता था। जिसमें धार्मिक एवं सामाजिक समाचार ही प्रकाशित होते थे, पर पांच वर्षों तक अविरल प्रकाशित होने के बाद यह पृष्ठ बंद हो गया। अन्य देशों की भांति यहां भी आर्य समाज द्वारा 'आर्य ज्योति' का प्रकाशन होता है जिसमें आर्य समाज के सिद्धांतों तथा वैदिक धर्म के समाचारों को ही स्थान मिलता है। इसके अतिरिक्त सनातन धर्म सभा द्वारा 'अमर ज्योति' नाम का एक पत्र प्रकाशित होता है। पं. रामलाल का हिन्दी पत्रकारिता एवं हिन्दी शिक्षण से अधिक लगाव होने से वहां हिन्दी की

ज्योति ज्योतित है। गुयाना का एकमात्र उत्कृष्ट पत्र 'ज्ञानदा' है। यह एक मासिक पत्र है जिसके संपादक श्री योगीराज शर्मा हैं। यह पूर्ण साहित्यिक पत्र है तथा इसका आवरण मुद्रित एवं शेष सामग्री साइक्लोस्टाइल पद्धति से छपती है। श्री शर्मा जी ने इसके अस्तित्त्व के लिए अहोरात्रि श्रम किया और गुयाना में हिन्दी पत्रकारिता को अक्षुण्ण रखा। इस प्रकार गुयाना में हिन्दी पत्रों की अस्मिता प्रेस की असुविधाओं के होते हुए भी सुरक्षित है।

त्रिनीडाड-टुबैगो में हिन्दी

कैरिबियन समुद्र में स्थित त्रिनीडाड-टुबैगो में जो वेस्ट इंडीज के नाम से भी जाना जाता है, भारतीयों की संख्या अधिक है। यहां भी अन्य देशों की भांति भारतीय मजदूर शर्तनामा कुली के रूप में लाए गए थे। हिन्दी का लेखन, पाठन, वाचन अन्य देशों की भांति ही चल रहा है। यहां से सर्वप्रथम हिन्दी में 'कोहेनूर अखबार' निकला जो अब बंद हो गया है। इसमें धार्मिक सामग्री के अलावा कुछ स्थानीय समाचार भी प्रकाशित होते थे। यहां का सर्वाधिक लोकप्रिय पत्र 'ज्योति' है। यह एक मासिक पत्र है तथा इसका सर्वप्रथम प्रकाशन मार्च, 1968 को हुआ था। इसके संस्थापक संपादक हैं प्रो. हरिशंकर आदेश। यह पत्र जीवन ज्योति प्रकाशन के अंतर्गत प्रकाशित होता है। पहले यह पत्र हिन्दी शिक्षा संघ द्वारा प्रकाशित होता था परंतु अब संघ के बंद हो जाने पर यह भारतीय विद्या संस्थान के मुख्यत्र के रूप में प्रकाशित होता है। यह प्रत्येक मास की सात तारीख को प्रकाशित होता है। प्रो. आदेश ने इसे साहित्यिक बनाने का भरसक प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं। हिन्दी-अंग्रेजी मिश्रित इस पत्र में संगीत की तकनीकी शिक्षा के लिए भी लेख छपते हैं। नवोदित हिन्दी लेखकों को इससे काफी प्रोत्साहन मिलता है। त्रिनिडाड में हिन्दी प्रेस के अभाव में हिन्दी प्रकाशन को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस समय वहां स्व. पं. काशीप्रसाद मिश्र का एक ही प्रेस है जिसमें पर्याप्त टाइप न होने से मुद्रण में अप्रत्यासित संघर्ष उठाना पड़ता है। अत: ज्योति का प्रकाशन लीथो एवं आफसेट प्रणाली से होता है। फिर भी प्रो. आदेश वहां हिन्दी पत्रकारिता का दीप जलाए हुए हैं।

4

हिन्दी साहित्य का स्वरूप

हिन्दी साहित्य हिन्दी भाषा का रचना संसार है। हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं। परंतु हिन्दी साहित्य की जड़ें मध्ययुगीन भारत की ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य में पाई जाती हैं। हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है। गद्य, पद्य और चम्पू। हिंदी की पहली रचना कौन सी है। इस विषय में विवाद है, लेकिन ज्यादातर साहित्यकार देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखे गये उपन्यास चंद्रकांता को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं।

इतिहास

बाबर, हुमायूँ और शेरशाह के समय में हिन्दी को राजकीय संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु व्यक्तिगत प्रयासों से 'पद्मावत' जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना हुई। मुगल सम्राट अकबर ने हिन्दी साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। मुगल दरबार से सम्बन्धित हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राजा बीरबल, मानसिंह, भगवानदास, नरहरि, हरिनाथ आदि थे। व्यक्तिगत प्रयासों से हिन्दी साहित्य को मजबूती प्रदान करने वाले कवियों में महत्त्वपूर्ण थे- नन्ददास, विट्ठलदास, परमानन्द दास, कुम्भन दास आदि। तुलसीदास

एवं सूरदास मुगल काल के दो ऐसे विद्वान थे, जो अपनी कृतियों से हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर हो गये। अर्बुदुरहमान खानखाना और रसखान को भी इनकी हिन्दी की रचनाओं के कारण याद किया जाता है। इन सबके महत्त्वपूर्ण योगदान से ही 'अकबर के काल को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल' कहा गया है। अकबर ने बीरबल को 'कविप्रिय' एवं नरहरि को 'महापात्र' की उपाधि प्रदान की। जहाँगीर का भाई दानियाल हिन्दी में कविता करता था।

शाहजहाँ के समय में सुन्दर कविराय ने 'सुन्दर श्रृंगार', 'सेनापति ने 'कवित्त रत्नाकर', कवीन्द्र आचार्य ने 'कवीन्द्र कल्पतरु' की रचना की। इस समय के कुछ अन्य महान् कवियों का सम्बन्ध क्षेत्रीय राजाओं से था, जैसे- बिहारी महाराजा जयसिंह से, केशवदास ओरछा से सम्बन्धित थे। केशवदास ने 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' एवं 'अलंकार मंजरी' जैसी महत्त्वपूर्ण रचनायें की। अकबर के दरबार में प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता कश्मीर के मुहम्मद हुसैन को 'जरी कलम' की उपाधि दी गई। बंगाल के प्रसिद्ध कवि मुकुन्दराय चक्रवर्ती को प्रोफेसर कॉवेल ने 'बंगाल का क्रैब' कहा है। हिन्दी में पहली प्रमुख पुस्तक 12वीं सदी में लाहौर के चंदबरदाई का पृथ्वीराजरासो महाकाव्य है, जिसमें इस्लामी आक्रमण से पहले दिल्ली के अंतिम हिंदू राजा पृथ्वीराज के साहसिक कार्यों का वर्णन किया गया है, यह पुस्तक राजपूतों के दरबार की भाट परंपरा पर आधारित है, फारसी कवि अमीर खुसरो की कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अवधी में लिखा। हिन्दी में अधिकतर प्रारंभिक साहित्य की प्रेरणा धर्म पर आधारित है।

आदिकाल

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को आलोचक 1400 इसवी से पूर्व का काल मानते हैं जब हिन्दी का उद्‌भव हो ही रहा था। हिन्दी का विकास दिल्ली, कन्नौज और अजमेर क्षेत्रों में हुआ माना जाता है। पृथ्वीराज चौहान का उस वक्त दिल्ली में शासन था और चंदबरदाई नामक उसका एक दरबारी कवि हुआ करता था। कन्नौज का अंतिम राठौड़ शासक जयचंद था जो संस्कृत का बहुत बड़ा संरक्षक था।

भक्तिकाल

हिन्दी के महान् कवि तुलसीदास राजापुर के ब्राह्मण थे, जिन्होंने जीवन के शुरू में ही संसार त्याग दिया और बनारस (वर्तमान वाराणसी) में भक्त के रूप

में दिन व्यतीत किए। उन्होंने अधिकतर लेखन कार्य अवधी भाषा में किया और राम की पूजा को हिंदू धर्म का केंद्र बनाया, उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना रामचरितमानस है, जो संस्कृत रामायण से प्रेरित है। यह हिन्दीभाषी क्षेत्र का पवित्र हिंदू ग्रंथ बन गया है तथा प्रत्येक साल लोकप्रिय रामलीला के रूप में इसका मंचन होता है।

मध्ययुग

मध्ययुग में दार्शनिक एवं भक्तिमार्ग के समर्थक वल्लभ अनुयायियों में नेत्रहीन कवि सूरदास सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने कृष्ण और राधा की स्तुति में अनगिनत भजन रचे। इन्हें सूरसागर में संकलित किया गया है, हालांकि भक्त कवियों में से अनेक सामान्य परिवारों से थे, लेकिन जोधपुर की राजकुमारी मीराबाई अपवाद थीं, जिन्होंने हिन्दी और गुजराती, दोनों में अपने प्रसिद्ध गीत लिखे। पूर्व अवध प्रांत के मुस्लिम कवि जायसी द्वारा रचित धार्मिक महाकाव्य पद्मावत (1540) अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है। अवधी में रचित यह महाकाव्य संस्कृत काव्य शैली के अनुरूप रचा गया है। इस युग के अन्य रचनाकारों में रहीम, रसखान, केशवदास, नंददास के नाम उल्लेखनीय हैं।

रीतिकाल

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल का सूत्रपात हुआ, जिसके रचनाकारों ने समकालीन ऐतिहासिक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी। भोग-विलास, प्रेम-सौंदर्य और श्रृंगारिकता से परिपूर्ण इस युग की कविताओं को जिन रचनाकारों ने रूप दिया, उनमें मतिराम, केशव, बिहारी, घनानंद, बोधा आदि का नाम उल्लेखनीय है। प्रेमचंद के साहित्य एवं लघु कहानियों में सामान्य ग्रामीण जीवन का वर्णन है तथा बनारस के भारतेंदु हरिश्चंद्र, जिन्होंने ब्रजभाषा में लिखा।

आधुनिक काल

आधुनिक हिन्दी साहित्य की जड़े कविता एवं नाटक में भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में, आलोचना और अन्य गद्य लेखन में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा कथा साहित्य में प्रेमचंद के साहित्य में हैं, 19वीं सदी के उत्तरार्ध की इस अवधि में मुख्य रूप से संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी से अनुवाद का जोर रहा। राष्ट्रवाद एवं आर्य समाज के सामाजिक सुधार आंदोलन से प्रभावित होकर लंबी

वर्णनात्मक कविताएं, जैसे मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद द्वारा नाटक तथा चतुरसेन शास्त्री एवं वृंदावनलाल वर्मा द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास रचे गए। इन उपन्यासों की पृष्ठभूमि मुख्यत: मौर्य, गुप्त एवं मुगलकालीन थी।

सत्याग्रह एवं असहयोग आंदोलन

इस अवधि के बाद महात्मा गांधी के सत्याग्रह एवं असहयोग आंदोलनों का दौर आया, जिसने माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त एवं सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे कवियों तथा प्रेमचंद व जैनेंद्र कुमार जैसे उपन्यासकारों को प्रेरित किया। अतंत: गांधीवादी प्रयोग से मोहभंग तथा यूरोपीय साहित्य पर मार्क्सवाद के बढ़ते प्रभाव ने यशपाल, रांगेय राघव और नागार्जुन जैसे लेखकों को प्रभावित किया। 1930 के दशक के सर्जनात्मक कवियों सुमित्रानंदन पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा ने अंग्रेजी एवं बांग्ला कविता की स्वच्छंदतावादी तथा मध्यकालीन हिन्दी कविता की रहस्यवादी परंपरा से प्रेरणा ली। प्रतिक्रियास्वरूप मार्क्सवादी कवि रामविलास शर्मा और नागार्जुन तथा हीरानंद सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं भारत भूषण अग्रवाल जैसे प्रयोगवादी कवि सामने आए। निराला, जिनका विकास रहस्यवादी, स्वच्छंदतावादी से यथार्थवादी एवं प्रयोगवादी कवि के रूप में हुआ। 1950 के दशक के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। 1960 के दशक में मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना एवं रघुवीर सहाय जैसे मौलिक कवि हुए।

आधुनिक साहित्य की दिशा

प्रेमचंद एवं जैनेंद्र कुमार के साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाली दो प्रवृत्तियाँ हिन्दी कथा साहित्य को दो भिन्न दिशाओं में ले गईं। जबकि सामाजिक यथार्थवादियों जैसे यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, नागार्जुन एवं फणीश्वरनाथ रेणु ने भारतीय समाज के बदलते परिवेश का ईमानदारी से विश्लेषण किया। 1930 एवं 1940 के दशकों के नाटककारों में गोविंद बल्लभ पंत और सेठ गोविंद दास भी थे। उनकी अत्यधिक संस्कृत युक्त भाषा के कारण उनके नाटकों के दर्शक सीमित थे। अन्य साहित्यकारों में नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, ज्ञानरंजन, विनोद कुमार शुक्ल, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, उदय प्रकाश आदि अनेक महत्त्वपूर्ण नाम हैं।

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं।

गद्य साहित्य

सामान्यत: मनुष्य की बोलने या लिखने-पढ़ने की छंदरहित साधारण व्यवहार की भाषा को गद्य कहा जाता है। इसमें केवल आंशिक सत्य है क्योंकि इसमें गद्यकार के रचनात्मक बोध की अवहेलना है। साधारण व्यवहार की भाषा भी गद्य तभी कही जा सकती है जब यह व्यवस्थित और स्पष्ट हो। रचनात्मक प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए गद्य को मनुष्य की साधारण किंतु व्यस्थित भाषा या उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति कहना अधिक समीचीन होगा।

परिचय

मनुष्य की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति का रूप गद्य है। कविता और गद्य में बहुत सी बातें समान हैं। दोनों के उपकरण शब्द हैं, जो अर्थ परिवर्तन के बिना एक ही भंडार से लिए जाते है, दोनों के व्याकरण और वाक्यरचना के नियम एक ही हैं (कविता के वाक्यों में कभी कभी शब्दों का स्थानांतरण, वाक्यरचना के आधारभूत नियमों का खंडन नहीं), दोनों ही लय और चित्रमय उक्ति का सहारा लेते हैं। वर्डस्वर्थ के अनुसार गद्य और पद्य (या कविता) की भाषा में कोई मूलभूत अंतर न तो है और न हो सकता है।

लेकिन इन सारी समानताओं के बावजूद कविता और गद्य अभिव्यक्ति के दो भिन्न रूप हैं। समान उपकरणों के प्रति भी उनके दृष्टिकोणों की असमानता प्राय: स्तर पर उभर आती है। लेकिन उनमें केवल स्तरीय नहीं बल्कि तात्विक या गुणात्मक भेद है, जिसका कारण यह हैं कि कविता और गद्य जगत् और जीवन के विषय में मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया के दो भिन्न रूपों की अभिव्यक्ति हैं। उनके उदय और विकास के इतिहास में इसके प्रमाण मौजूद है।

अपनी पुस्तक इल्यूजन ऐंड रिएलिटी में कॉडवेल ने कविता की उत्पत्ति, सामाजिक उपादेयता और तकनीक का विस्तृत विवेचन करते हुए लिखा है कि साहित्य के सबसे प्रारंभिक रूप में कविता मनुष्य की साधारण भाषा का उन्मेषीकरण थी। उस काल में कविता केवल रागात्मक न होकर इतिहास, धर्म, दर्शन, तंत्र, मंत्र, ज्योतिषि, नीति और भेषज संबंधी ज्ञान का भी वहन करती थी। उसे उन्मेष प्रदान करने के लिए संगीत, छंद, तुक, मात्र या स्वराघात, अनुप्रास,

पुनरावृत्ति, रूपक इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। कालांतर में सभ्यता के विकास, समाज के वर्गीकरण, श्रमविभाजन और उद्‌बुद्ध साहित्यिक चेतना के कारण पहले की उन्मेषपूर्ण भाषा भी विभक्त हो गई–कविता ने अपने को रागों की उन्मेषपूर्ण भाषा के रूप में सीमित कर लिया और विज्ञान, दर्शन, इतिहास, धर्मशास्त्र, नीति, कथा और नाटक ने साधारण व्यवहार, अर्थात् कथ्य की भाषा को अपनाया। आवश्यकतानुसार प्रत्येक शाखा ने अपनी विशिष्ट शैली की विधि का विकास किया, उनमें आदान-प्रदान हुआ और उनसे स्वयं साधारण व्यवहार की भाषा भी प्रभावित हुई। मनुष्य का मानसिक जगत् अपने को भाषा के दो विशिष्ट रूपों-कविता और गद्य-में प्रतिबिंबित करने लगा।

कविता और गद्य के उद्देश्यों में भेद और भाषा के उपकरण शब्दों के प्रति उनके दृष्टिकोण में भेद का गहरा संबंध है। कविता की उत्पत्ति मनुष्य के सामूहिक श्रम के साथ हुई। शब्द अनिवार्यत: संगीत और प्राय: नृत्य के सहारे पूरे समूह के आवेगों को एक बिंदु पर संगठित कर कार्य संपन्न करने की प्रेरणा देते थे। फसल सामने नहीं थी, बीज बोना था। शब्दों का कार्य था लहलहाती फसल का मायावी चित्र उपस्थित कर पूरे समूह को बीज बोने के लिए प्रेरित करना। कॉडवेल के अनुसार इस मायावी सृष्टि के द्वारा शब्द शक्ति बन जाते थे। कविता सामूहिक भावों और आंकाक्षाओं का प्रतिबिंब थी और उन्हें उद्‌बुद्ध और संगठित करने का अस्त्र थी। इसलिए कविता का सूक्ष्म कथ्य-उसके तथ्यों की वस्तु-नहीं, बल्कि समाज में उसकी गद्यात्मक भूमिका-उसके सामूहिक भावों की वस्तु-कविता का सत्य है।

सामाजिक जीवन में शब्द वस्तुनिष्ठ जगत् के शुष्क प्रतीक मात्र नहीं रह जाते बल्कि उनके साथ जीवन के अनुभव से उत्पन्न सरल से जटिल होते हुए भावात्मक संदर्भ जुड़ जाते हैं। कविता शब्दों के शुद्ध प्रतीकात्मक अर्थ की उपेक्षा नहीं कर सकती, लेकिन उसका मुख्य उद्देश्य शब्दों के भावात्मक संदर्भों को अर्थपूर्ण संगठन है। कविता शब्दों की नई सृष्टि है। हर्बर्ट रीड के शब्दों में कविता में चिंतन के दौरान शब्द बार-बार नया जन्म लेते हैं। अनेक भाषाओं में कवि के लिये प्रयुक्त शब्द का अर्थ स्रष्टा है।

गद्य शब्दों के भावात्मक संदर्भों के स्थान पर उनके वस्तुनिष्ठ प्रतीकात्मक अर्थ को ग्रहण करता है। गद्य में शब्दों के इस प्रकार के प्रयोग को ध्यान में रखकर हर्बर्ट रीड ने गद्य को निर्माणात्मक अभिव्यक्ति कहा है, ऐसी अभिव्यक्ति जिसमें शब्द निर्माता के चारों ओर प्रयोग के लिए ईंट गारे की तरह बने बनाए तैयार करते हैं।

स्पष्ट है कि शब्द के वस्तुनिष्ठ अर्थ और उसके भावात्मक संदर्भ को पूर्णतया विभक्त करना संभव है। यही कारण है कि कविता सर्वथा कथ्यशून्य नहीं हो सकती और गद्य सर्वथा भावशून्य नहीं हो सकता। कविता और गद्य की तकनीकों में पास्परिक आदान-प्रदान स्वाभाविक है। किंतु जहाँ उनके विशिष्ट धर्मों का बोध नहीं होता, वहाँ हमें कविता के स्थान पर फूहड़ गद्य और पद्य के स्थान पर फूहड़ कविता के दर्शन होते हैं।

वस्तुनिष्ठ सत्य की भाषा कहने का अर्थ यह नहीं कि गद्य कविता से हेय है, या उसका सामाजिक प्रयोजन कविता से कम है या वह भाषा की कलाशून्य अभिव्यक्ति है। वास्तव में बहुत से ऐसे कार्य जो कविता की शक्ति के बाहर है, गद्य द्वारा संपन्न होते हैं। बहुत पहले यह अनुभव किया गया कि कविता की छंदमय भाषा में विचारों का तर्कमय विकास संभव नहीं। कविता से कम विकसित अवस्था में भी गद्य की विशष्ट शक्ति को पहचानकर अरस्तु ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रेटॉरिक में उसे प्रतीति परसुएशन, दूसरों को अपने विचारों से प्रभावित करने की भाषा कहा था, जिसके मुख्य तत्त्व हैं-विचारों का तर्कसंगत क्रम, वर्णन की सजीवता, कल्पना, चित्रयोजना, सहजता, लय, व्यक्तिवैचित्र्य, उक्ति-सौंदर्य, ओज, संयम। इनमें से प्रत्येक बिंदु पर कविता और गद्य की सीमाएँ मिलती हुई जान पड़ती हैं, किंतु दोनों में इनके प्रयोग की अलग अलग रीतियाँ हैं।

उदाहरणार्थ, उनके दो तत्त्व, लय और चित्रयोजना, लिए जा सकते हैं जिनकी बहुत चर्चा होती है। गद्य की लय में कविता की लय से अधिक लोच या विविधता होती है क्योंकि गद्य में लय वाक्य रचना की नहीं बल्कि विचारों की इकाई होती है। कविता में प्राय:। लय को वाक्य रचना की इकाई बनाकर पुनरावृत्ति से प्रभाव को तीव्रता दी जाती है। कविता से कहीं ज्यादा गद्य में लय अनुभूति की वाणी है। प्राय: लय के माध्यम से ही गद्यकार के व्यक्तिव का उद्‌घाटन होता है।

कविता के प्राण चित्रयोजना में बसते हैं, जबकि गद्य में उसका प्रयोग अत्यंत संयम के साथ विचार को आलोकित करने के लिये ही किया जाता है। अंग्रेजी गद्य के महान शैलीकर स्विफ्ट के विषय में डॉ. जान्सन ने कहा था-यह दुष्ट कभी एक रूपक का भी खतरा मोल नहीं लेता। मुख्य वस्तु यह है कि गद्य में भाषा की सारी क्षमताएँ विचार की अचूक अभिव्यक्ति के अधीन रहती हैं। कविता में भाषा को अलंकृत करने की स्वतंत्रता अक्सर शब्दों के प्रयोग और वाक्य रचना के प्रति असावधान रहने की प्रवृत्ति का कारण है। विशेषणों का

जितना दुरुपयोग कविता में संभव है उतना गद्य में नहीं। कविता में संगीत को अक्सर सस्ती भावुकता का आवरण बना दिया जाता है। गद्य में कथ्य का महत्व उसपर अंकुश का काम करता है। इसलिये गद्य का अनुशासन भाषा के रचना सौंदर्य के बोध का उत्तम साधन है। टी. एस. इलियट के शब्दों में अच्छे गद्य के गुणों को होना अच्छी कविता की पहली और कम से कम आवश्यकता है।

गद्य का प्रारंभ इतिहास, विज्ञान, सौंदर्यशास्त्र इत्यादि की भाषा के रूप में हुआ। बाद में वह उपयोग से कला की ओर प्रवृत्त हुआ। रूपों के विकास के आधार पर उसकी तीन स्थूल कोटियाँ बनी हैं–वर्णनात्मक, जिसमें कथा, इतिहास, जीवनी, यात्रा इत्यादि आते हैं। विवेचनात्मक, जिसमें विज्ञान, सौंदर्यशास्त्र आलोचना, दर्शन, धर्म और नीतिशास्त्र विधि, राजनीति इत्यादि आते हैं, एवं भावात्मक, जिसमें ऊपर के अनेक विषयों के अतिरिक्त आत्मपरक निबंध और नाटक आते हैं। विषयों के अनुसार गद्य में प्रवाह, स्पष्टता, चित्रमयता, लय, व्यक्तिगत अनुभूति, अलंकरण इत्यादि की मात्राओं में हेर फेर का होना आवश्यक हैं, किंतु गद्य की कोटियों के बीच दीवारें नहीं खड़ी की जा सकती। लेखक की रुचि और प्रयोजन के अनुसार वे एक दूसरे में अंत:प्रविष्ट होती रहती है।

आधुनिक युग में उपन्यास गद्य की विशेष प्रयोगशाला बन गया है। कविता रह रहकर काफी दिनों तक शब्दों के पथ्य पर रहती है, गद्य में नए पुराने, सूखे चिकने सभी प्रकार के शब्दों को पचाने की अद्‌भुत शक्ति होती है। बोनामी डाब्री के अनुसार सारा अच्छा जीवित गद्य प्रयोगात्मक होता है। उपन्यास गद्य की इस क्षमता का पूरा उपयोग कर सकता है। ऐसे प्रयोग इंग्लैंड की अपेक्षा अमरीका में अधिक हुए हैं और विंढम लिविस, हेमिंग्वे, स्टीन, फाकनर, ऐंडर्सन इत्यादि ने अपने प्रयोगों के द्वारा अंग्रेजी गद्य को नया रक्त दिया है। गद्य में तेजी से केंचुल बदलने की शक्ति का अनुमान हिंदी गद्य के तेज विकास से भी किया जा सकता है, हालाँकि उसका इतिहास बहुत पुराना नहीं। भविष्य में गद्य के विकास की और संकेत करते हुए एक अंग्रेज आलोचक मिडिलटन मरी ने लिखा है–गद्य की विस्तार सीमा अनंत है और शायद कविता की उपेक्षा उसकी संभावनाओं की कम खोज हुई है।

संसार की समस्त भाषाओं में पद्य-रचना पहले हुई थी, गद्य-रचना इसके बाद की मानी जाती है। अतएव गद्य साहित्य का विकसित रूप है। हिंदी साहित्य के विगत कालों में धार्मिक उपदेश, जीवन चरित्र लेखन आदि के माध्यमों से ब्रजभाषा का प्रयोग सीमित दायरे में होता रहा।

आधुनिक काल में प्रजातांत्रिक आदर्शों के बल पर जीवन-ढाँचा बदलने लगा, तो शिक्षा, प्रशासन, उद्योग, विज्ञान आदि क्षेत्रों में गद्य की अनिवार्यता आई, जिसका कि साहित्य पर भी असर पड़ा। आगे चलकर, हिंदी साहित्य के आधुनिक काल को भी 'गद्य युग' कहा गया।

भारत में अंग्रेजी राज्य का पैर जमाने के लिए अंग्रेज प्रशासकों ने जनसंपर्क के माध्यम के रूप में खड़ी बोली हिंदी की दो भाषा-शैलियों को अलग-अलग पनपाया। गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लल्लू लाल, सदल मिश्र, ईशा अल्ला और सदासुख लाल ने अरबी, फारसी मिश्रित तथा रहित दोनों शैलियोंमें गद्य लिखा।

भारतेंदु काल में सामान्य जीवन से संबंधित विषयों पर गद्य लिखा जाने लगा और विषयानुसार भाषा-प्रयोग में वैविध्य लाया गया। गद्य का क्षेत्र व्यापक बना। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, व्यंग्य आदि सभी कुछ लिखे जाने लगे।

इनके सभी लेखक अपनी-अपनी स्वच्छ प्रवृत्ति के अनुसार भाषा का प्रयोग करते रहे, मगर यह प्रयोग की स्थिति में ही रहा। गद्य का रूप निश्चित नहीं हो पाया था, साथ ही व्याकरण-व्यवस्था भी कमजोर बनी रही।

राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद, देवकी नंदन खत्री, प्रताप नारायण मिश्र, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, बद्री नारायण चौधरी आदि भारतेंदु काल के प्रमुख गद्य लेखक रहे। भारतेंदु काल की भाषा-विषयक स्वच्छंदता तथा व्याकरण शिथिलता को मिटाकर हिंदी-भाषा की स्थिरता तथा गद्य-साहित्य का वैविध्य प्रदान किया, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' पत्रिका ने। इसी काल में कामता प्रसाद गुरु लिखित हिंदी का प्रामाणिक व्याकरण ग्रंथ प्रकाशित हुआ था।

हिंदी-ग्रंथ के परिष्कार के साथ आचार्य द्विवेदी ने प्रचलित विधाओं के अलावा विविध सामयिक तथा विज्ञान-विषयक निबंध, संस्मरण, आत्मकथा, पत्रकारिता आदि विषयों पर लिखने की प्रेरणा दी थी। समीक्षा विधा में विविध शैलियों का भी प्रवर्तन किया गया थाय जैसे-विश्लेषणात्मक गवेषणात्मक निर्णयात्मक शैलियाँ। इस युग में अनुवाद का भी काम बढ़-चढ़कर हुआ।

इस प्रकार द्विवेदी युग में गद्य-साहित्य सर्वांगीण तथा बहुमुखी बना। इस युग के गद्यकारों में प्रेमचंद, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा ' गुलेरी पद्य सिंह शर्मा, सरदार पूर्ण सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि प्रमुख हैं। इस युग के कवियों में

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रनंदन पंत आदि।

छायावाद को मध्यवर्गीय चेतना का विद्रोह कहा जाता है। काव्य-विधा में ही नहीं, अपितु गद्य-विधाओं में भी विद्रोह की वह छटा द्रष्टव्य है। भाषा में लाक्षणिक और कलात्मक शब्दावली को प्रश्रय मिला था। गद्य-साहित्य में जीवन के अंतद्वंद्वों की मनोवैज्ञानिक परख का स्वागत हुआ।

समीक्षा-विधा में रचनाओं के मूल्यांकन में कवि के दृष्टिकोण और वातावरण को भी मान्यता प्राप्त हुई। रेडियो-नाटकों तथा भाव-चित्रों का पर्याप्त विकास हुआ। ये विशेषताएँ महादेवी, प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, पं. बेचन शर्मा 'उग्र', राम कुमार वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, वियोगी हरि तथा रायकृष्ण दास की गद्य-कृतियों में प्रस्फुटित है।

गद्य का वर्तमान अधुनातन स्वरूप अधिक बौद्धिक है, अर्थ-ग्रहण में ध्वनि और लाक्षणिकता की प्रधानता है। व्यंग्य-परिहास की तीक्ष्माता भी कम नहीं है। वर्तमान युग में गद्य का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि पद्य भी गद्य से त्रस्त है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रभूत प्रचलन के कारण गद्य के विकास की असीम संभावनाएँ हैं।

हिंदी-साहित्य में गद्य का प्रारंभ जितना सरल था, आज उसकी गति उतनी ही तीव्र और जटिल है। उसकी अभिव्यक्ति में इतना विस्तार हुआ है कि स्वतंत्र भारत की राजभाषा बनने की उसकी अर्हता सर्वाधिक सुनिश्चित है।

19वीं सदी से पहले का हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य के उद्‌भव को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान हिन्दी गद्य की शुरूआत 19वीं सदी से ही मानते हैं जबकि कुछ अन्य हिन्दी गद्य की परम्परा को 11वीं-12वीं सदी तक ले जाते हैं। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की निम्न परम्पराएं मिलती हैं-

(1) राजस्थानी में हिन्दी गद्य,
(2) ब्रजभाषा में हिन्दी गद्य,
(3) दक्खिनी में हिन्दी गद्य,
(4) गुरूमुखी लिपि में हिन्दी गद्य,

भारतेंदु पूर्व युग

हिन्दी में गद्य का विकास 19वीं शताब्दी के आस-पास हुआ। इस विकास में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस कॉलेज के दो विद्वानों लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने सुखसागर तथा मुंशी इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की इन सभी ग्रंथों की भाषा में उस समय प्रयोग में आनेवाली खड़ी बोली को स्थान मिला। ये सभी कृतियाँ सन् 1803 में रची गयी थीं।

आधुनिक खड़ी बोली के गद्य के विकास में विभिन्न धर्मों की परिचयात्मक पुस्तकों का खूब सहयोग रहा जिसमें ईसाई धर्म का भी योगदान रहा। बंगाल के राजा राम मोहन राय ने 1815 ईस्वी में वेदांत सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके बाद उन्होंने 1829 में बंगदूत नामक पत्र हिन्दी में निकाला। इसके पहले ही 1826 में कानपुर के पं जुगल किशोर ने हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला। इसी समय गुजराती भाषी आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली. साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं- चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी। ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए। इस काल में निबंध नाटक उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि

इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इस युग की कहानियों में शिवप्रसाद सितारे हिन्द की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

बलदेव अग्रहरि की सन 1887 में प्रकाशित नाट्य पुस्तक 'सुलोचना सती' में सुलोचना की कथा के साथ आधुनिक कथा को भी स्थान दिया गया हैं, जिसमे संपादकों और देश सुधारको पर व्यंग्य किया गया है। कई नाटको में मुख्य कथानक ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। बलदेव अग्रहरि की सुलोचना सती में भिन्नतुकांत छंद का आग्रह भी दिखाई देता हैं।

द्विवेदी युग

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया। सन 1903 ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं। किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिंदी कहानी का वास्तविक विकास द्विवेदी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। हरिऔध, शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए। इस युग ने कई सम्पादकों जन्म दिया। पन्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने आधा दर्जन से अधिक पत्रों का सम्पादन किया। शिव पूजन सहाय उनके योग्य शिष्यों में शुमार हुए। इस युग में हिन्दी आलोचना को एक दिशा मिली। इस युग ने हिन्दी के विकास की नींव रखी। यह कई मायनों में नई मान्यताओं की स्थापना करने वाला युग रहा।

रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतूहल और नीति का विषय ही नहीं रहा बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया।उन्होंने सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाडी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियां खूब लोकप्रिय हुई। इसकाल के अन्य कथाकारों में विश्वंभर शर्मा कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुंमुखी विकास हुआ। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद

द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी राय, ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसांई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के पी सक्सेना, के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की। नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया। आज गद्य की अनेक नयी विधाओं जैसे यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएं एक दूसरे से मिल रही हैं।

काव्य साहित्य

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की शृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

काव्य वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दलंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ' की 'रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार विश्वनाथ

का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संचार की काव्य की आत्मा है।

काव्यप्रकाश में काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है जिस, में शब्दों से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत ब्यंग्य वह है जिसमें गौण हो। चित्र या अलंकार वह है जिसमें बिना ब्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुंण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमें शृंगार, वीर या शांत रसों में से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच-बीच में करुणाय हास्य इत्यादि और रस तथा और और लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है, जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे, नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनेन योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं- कथा और आख्यायिका। चंपू, विरुद और कारंभक तीन प्रकार के काव्य और माने गए हैं।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल 1850 से आरम्भ होता है। हिंदी साहित्य के इस युग में भारतीय-राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। इसी युग में हिन्दी पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडियो, टी. वी, व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यतः पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग और यथार्थवादी युग इन चार नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)

ईस्वी सन 1850 से 1900 तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह हैं। उन्होंने भाषा को एक चलता हुआ रूप देने की कोशिश की। आपके काव्य-साहित्य में प्राचीन एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं आपके काव्य में देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी आपकी कविताओं में पाए जाते हैं। आपने भक्ति-प्रधान, श्रृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-प्रधान कविताएं की हैं। आपने ब्रजभाषा से खड़ीबोली की ओर हिंदी-कविता को ले जाने का प्रयास किया। आपके युग में अन्य कई महानुभाव ऐसे हैं जिन्होंने विविध प्रकार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया।

द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)

सन 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण श्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं।

छायावादी युग की कविता (1920-)

सन 1920 के आस-पास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव,

शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

प्रगतिवादी युग की कविता (1930)

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है।

प्रयोगवादी युग की कविता

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप 'नयी कविता' कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी किए गए हैं। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त इस धारा के मुख्य कवि हैं।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर सर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाटय वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो

नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

हिंदी-काव्य में राष्ट्रीय विचारधारा

राष्ट्रीय काव्य-रचना के लिए वातावरण का प्रक्षुब्ध होना तथा समाज का संघर्षरत होना अपेक्षित है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारंभ से देश में आजादी की लड़ाई का वातावरण तैयार हो गया था।

इसी तरह वीरगाथा काल से ही राष्ट्रीय भावना और प्रभुब्ध वातावरण के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं, जिनका प्रभाव तत्कालीन कवियों की रचना पर पड़ा था। वीरगाथा काल की राष्ट्रीयता राजाओं के व्यक्तिगत मानापमान, शौर्य-प्रदर्शन तथा अपने राज्य की रक्षा तक ही सीमित था।

उस समय कवियों को राज्याश्रय प्राप्त था, जो अपने आश्रय-दाताओं पर वीर रस प्रधान कविताएँ रचते थे। वीरगाथा काल के 'रासो' काव्य इसके प्रमाण हैं। भक्तिकाल के भक्त-कवियों ने तत्कालीन हिंदू जनता की युद्धजन्य पराजित दैन्य को राम-कृष्ण गाथाओं द्वारा दूर करने की कोशिश अवश्य की थी, किंतु उनके काव्यों को राष्ट्रीय काव्य नहीं कहा जा सकता।

रीतिकाल में मुगल शासन के विरुद्ध छिटपुट राजाओं का व्यक्तिगत मुक्ति-संग्राम तथा उनके दरबारी कवियों द्वारा रचित वीरकाव्य द्रष्टव्य हैं। अकबर के विरुद्ध राणाप्रताप और औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी का युद्ध-प्रयास हिंदू राष्ट्रीयता तक सीमित था।

अतः भूषण, सूदन और लाल की वीर रचनाएँ आश्रयदाता से हटकर साधारण जनता की नहीं बन पाई थीं। सन् 1857 के बाद भारत में सामंतवादी राष्ट्रीयता के बदले जनतांत्रिक राष्ट्रीयता का श्रीगणेश होता है। अंग्रेजों की दमन नीति और अर्थशोषण के विरुद्ध पहला स्वर भारतेंदु की रचना 'भारत दुर्दशा' में फूट पड़ा।

द्विवेदी-युग में राष्ट्र के गौरवशाली अतीत के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रगीतों में मुक्ति-संग्राम के अभियान-गीतों का स्वर विशेष उच्चारित हुआ। क्रांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में आया। उन्होंने सत्य, अहिंसा, सविनय अवज्ञा, असहयोग आदोलन का राजनीति में प्रयोग किया, जिसके समांतर सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक सुधार-आंदोलन भी जोर पकड़ता गया।

यह संपूर्ण आंदोलन हिंदी कविता में प्रतिबिंबित हुआ। गुप्त, दिनकर, पंत, निराला, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, श्याम नारायण पांडे आदि सभी कवियों ने देश के लिए त्याग-बलिदान से ओत-प्रोत मुक्तक गीत और खंडकाव्य रचे। राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में 'वंदे मातरम्', 'जन गण मन अधिकनायक' जैसे गीतों तथा राष्ट्रीय पताका का गौरव बढ़ा।

इस राष्ट्रीय विचारधारा से जनता की भावना जाति और धर्म की संकीर्णता से उठकर राष्ट्रीय एकता के पक्ष में व्यापक बनीय आत्मगौरव बढ़ा, अपनी संस्कृति के प्रति आस्था का प्रत्यावर्तन हुआ। इस तरह जन-जागरण का काम राष्ट्रीय कविताएँ सफलतापूर्वक करती रहीं। राष्ट्रीय विचारधारा के कारण आधुनिक हिंदी कविता-विधा की प्रतिष्ठा बड़ी। इतना ही नहीं, हिंदी स्वयं राष्ट्रभाषा कहलाई।

साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण समाज में व्याप्त विचारधारा साहित्य की काव्य-विधा में भाव-प्रवणता के साथ व्यक्त होती है। हिंदी सदा देशकाल के अनुसार जन- भावना को व्यक्त करती रही है। जीवन में राष्ट्रीय भावनाओं का बड़ा महत्त्व है। हिंदी कविता ने इस दायित्व का पूरी तरह से निर्वाह किया है और देश को जाग्रत् किया। कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में राष्ट्रीय भावनाएं हिंदी कविता में सर्वाधिक व्यक्त हुई हैं।

5

राजभाषा हिन्दी का मानक स्वरूप

मानक हिन्दी हिन्दी का मानक स्वरूप है जिसका शिक्षा, कार्यालयीन कार्यों आदि में प्रयोग किया जाता है। भाषा का क्षेत्र देश, काल और पात्र की दृष्टि से व्यापक है। इसलिये सभी भाषाओं के विविध रूप मिलते हैं। इन विविध रूपों में एकता की कोशिश की जाती है और उसे मानक भाषा कहा जाता है।

हिन्दी में 'मानक भाषा' के अर्थ में पहले 'साधु भाषा', 'टकसाली भाषा', 'शुद्ध भाषा', 'आदर्श भाषा' तथा 'परिनिष्ठित भाषा' आदि का प्रयोग होता था। अंग्रेजी शब्द 'स्टैंडर्ड' के प्रतिशब्द के रूप में 'मान' शब्द के स्थिरीकरण के बाद 'स्टैंडर्ड लैंग्विज' के अनुवाद के रूप में 'मानक भाषा' शब्द चल पड़ा। अंग्रेजी के 'स्टैंडर्ड' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग इसे 'स्टैंड' (खड़ा होना) से जोड़ते हैं तो कुछ लोग एक्सटैंड (बढ़ाना) से। मेरे विचार में यह 'स्टैंड' से संबद्ध है। वह जो कड़ा होकर, स्पष्टत: औरों से अलग प्रतिमान का काम करे। 'मानक भाषा' भी अमानक भाषा-रूपों से अलग एक प्रतिमान का काम करती है। उसी के आधार पर किसी के द्वारा प्रयुक्त भाषा की मानकता अमानकता का निर्णय किया जाता है।

मानक भाषा का अभिप्राय

मानक भाषा किसी भाषा का वह परिष्कृत रूप है, जो उच्चारण या लेखन में प्रयोग आदि की दृष्टि से अपने पूरे व्यवहार क्षेत्र में शुद्ध और आदर्श माना जाता है, वहाँ के सुशिक्षित लोग उसे शुद्ध मानकर उसी का अधिकाधिक प्रयोग करते हैं। शिक्षा, प्रशासन, साहित्य रचना आदि के लिए भाषा का यही मानक रूप व्यवहृत होता है।

मानक शब्द का सामान्य अर्थ है–आदर्श, शुद्ध अथवा परिनिष्ठित। भाषा के संदर्भ में मानक शब्द अंग्रेजी के 'स्टैंडर्ड शब्द के पर्याय के रूप में प्रचलित है। मानक के अलावा 'स्टैंडर्ड शब्द के दो अर्थ–एक–परिनिष्ठित तथा दूसरा–स्तर–ध्यान देने योग्य है। एक ओर भाषा के शुद्ध, व्याकरणसम्मत तथा परिनिष्ठित रूप को उसका मानक रूप माना जाता है, तथा दूसरी ओर भाषा प्रयोग के विभिन्न स्तरों में से उसके उच्च स्तरीय रूप को मानक भाषा कहा जाता है। हम जीवन के अनौपचारिक संदर्भो में अर्थात घर–परिवार या मित्रों के बीच बातचीत करते समय जिस बोलचाल के स्तर की भाषा का प्रयोग करते हैं, उसका कार्यालय के किसी अधिकारी पद पर कार्य करते हुए या साहित्यिक परिचर्चा–गोष्ठी में या शिक्षा के क्षेत्र में नहीं कर सकते। अनौपचारिक या आपसी बोलचाल की भाषा का स्तर साधरण, क्षेत्रीय बोलियों, अधूरे वाक्यों, अशुद्ध या असंगत शब्दों या उच्चारणों से युक्त हो सकता है, लेकिन शिष्ट समाज में, प्रशासनिक कार्यों में या शिक्षा संस्थाओं आदि में हम जिस 'उच्च स्तर की आदर्श भाषा का प्रयोग करते हैं, उसे ही मानक भाषा कहा जाता है। यह मानक भाषा व्याकरण सम्मत तथा व्यवस्थित होती है, उसमें स्थानीय बोलियों के वैकलिपक रूप नहीं होते बलिक एकरूपता होती है। मानक भाषा का एक सर्वस्वीकृत रूप होता है, जो सभी जगह उसी रूप से प्रयुक्त होता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं–

मानक भाषा किसी राष्ट्र, राज्य या समाज की वह प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है जिसका प्रयोग वहां के सुशिक्षित समुदाय द्वारा अपने साहित्यिक, प्रशासनिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी औपचारिक कार्यों में समान रूप से किया जाता है। यही समान मानक भाषा रूप अंतर्राष्ट्रीय संदर्भो में व्यवहार में लाया जाता है।

परिभाषा

'मानक भाषा' को लोगों ने तरह-तरह से स्पष्ट करने का यत्न किया है। रॉबिन्स (1966) के अनुसार सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लोगों की बोली को मानक भाषा का नाम दिया जाता है। स्टिवर्ट (1968) ने प्रकृति, आंतरिक व्यवस्था तथा सामाजिक प्रयोग आदि के आधार पर भाषा के विभिन्न प्रकारों में अंतर दिखाने के लिए चार आधार माने हैं।

मानक हिंदी की विशेषताएँ

मानक हिंदी मूल रूप में खड़ी बोली का वह परिष्कृत रूप है, जो उच्चारण या लेखन में प्रयोग आदि की दृष्टि से शुद्ध और आदर्श माना जाता है। हिंदी प्रदेश की सभी सत्रह बोलियों का विशाल परिवार उसमें समाविष्ट है।

वास्तव में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यापारिक कारणों से हिंदी प्राचीन काल से ही अपने विविध् रूपों में भारत के प्राय: सभी प्रदेशों में प्रचलित रही है। बारहवीं-शताब्दी में यह केवल अपने मूल स्थान दिल्ली, मेरठ के आस-पास की सीमित जनबोली थी।

लगभग छ:-सात सौ वर्षों तक यह बोली के रूप में प्रचलित रही, इसकी अपेक्षा इसके साथ की अन्य बोलियाँ जैसे अवधी, ब्रज आदि अधिक विकसित हुई और 'भाषा के रूप में उच्च साहित्य का माध्यम बनीं।

मुगल काल में फारसी का प्रभुत्त्व रहा तथा अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी का प्रभुत्त्व स्थापित हुआ लेकिन भारतीय समाज में हिंदी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान बना रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही ऐसी स्थितियां बनती गई-जिनके कारण खड़ी बोली ने अत्यंत तीव्रता से भाषा का दर्जा प्राप्त किया और लगभग एक सौ-वर्ष के भीतर ही हिंदी का मानक स्वरूप निर्धारित हो गया। स्वतंत्रता प्रापित के बाद संवैधानिक तौर पर हिंदी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया क्योंकि यह देश के अधिकांश भागों में बोली और समझी जाती है। साथ ही सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। भारत में ही नहीं, विदेशों में भी इसके प्रयोक्ताओं की संख्या बहुत अधिक है। मॉरीशस, सूरीनाम, नेपाल, रूस, जर्मनी तथा कई यूरोपीय देशों में भी शिक्षण तथा साहित्य के स्तर पर मानक हिंदी का प्रचार-प्रसार है।

किसी मानक भाषा की संकल्पना कुछ विशेषताओं के आधार पर निर्मित होती है। जैसे व्याकरण-सम्मतता, एकरूपता, जीवंतता आदि। मानक भाषा की निर्धारक विशेषताओं की दृष्टि से हिंदी के मानक रूप में सभी अनिवार्य विशेषताएँ मौजूद हैं-

1. व्याकरण सम्मतता-व्याकरण भाषा के विभिन्न अंगों को व्यवस्थित करने वाला तथा नियमों में बांधने वाला शास्त्र है। जिस भाषिक रूप में व्याकरण से भिन्नता या नियम पालन में उल्लंघन होगा वह रूप अमानक व अशुद्ध माना जाएगा दूसरी ओर किसी भी भाषा के व्याकरण सम्मत रूप को ही उसका शुद्ध तथा मानक रूप माना जाता है। व्याकरण सम्मतता की दृष्टि से मानक हिंदी का अपना व्याकरण है, जिसके अनुसार सर्वत्र उसकी शिक्षा दी जाती है। इसी विशेषता के कारण हिंदी के मानक रूप की एक निशिचत संकल्पना इसके बोलने वालों के सामने स्पष्ट रूप से विद्यमान है, जिसके कारण मानक हिंदी का ज्ञाता और प्रयोक्ता अपने आस-पास बोलने वालों की भूलों को महसूस कर पाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई कहता है कि 'उनका किताब हम ले लिया तो इसे सुनकर मानकर हिंदी का प्रयोक्ता समझ जाएगा कि बोलने वाला स्थान पर 'उनका, 'हमने के स्थान पर 'हम और ले ली के स्थान पर ले लिया का गलत प्रयोग कर रहा है। इसी प्रकार-

- मैंने जाना है।.. (मुझे जाना है)
- आपको कहां जाना मांगता है-(आपको कहां जाना है)
- मैंने मेरे दोस्त को वहां पहुंचा दिया है-(मैंने अपने दोस्त को वहां पहुंचा दिया है)

मानक हिंदी को जानने वाला इन वाक्यों को सुनकर सहज ही पहचान लेगा कि गलती या अशुद्धि क्या है और कहां है और साथ ही भाषा के मानक रूप के आधार पर वह इनमें स्वयं संशोधन भी कर सकेगा।

वास्तव में मानक भाषा के मानदंड कसौटी की भांति होते हैं जिन पर कसकर हम किसी भाषिक प्रयोग को गलत या सही कह सकते हैं। गलत या अमानक भाषा वह होती है, जो मानक से अलग या विचलित होती है। मानक हिंदी से विचलित प्रयोग शिक्षित समाज के द्वारा स्वीकार्य नहीं होते। प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक और वैज्ञानिक कार्यो आदि में केवल मानक हिंदी के भाषिक प्रयोग ही शुद्ध माने जाते हैं।

हिंदी को मानवता के इस स्तर तक पहुँचाने में अनेक विद्वानों का योगदान रहा। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, कामताप्रसाद गुरू, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, बाबू श्यामसुन्दरदास, सुनीति कुमार चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. भोलानाथ तिवारी, उदयनारायण तिवारी आदि विभिन्न मूर्धन्य विद्वानों ने हिंदी के व्याकरणिक स्वरूप को सुनिश्चितता तथा एकरूपता प्रदान की।

2. ऐतिहासिकता या ऐतिहासिक परंपरा से निर्मित मूलाधर भाषा–किसी समाज की विभिन्न बोलियों या भाषा रूपों में से जिस बोली को एक लंबी परंपरा से प्रधानता प्राप्त होती है, वहीं प्रायः विकसित परिष्कृत होकर मानक भाषा के रूप में ढलती है। इस प्रकार भाषा के मानक रूप की स्वीकृति में एक सुदीर्घ ऐतिहासिक परंपरा विद्यमान रहती है।

इस दृष्टि से 'खड़ी बोली ने मानकीकरण की ऐतिहासिक और प्राकृतिक प्रक्रिया से गुजरकर 'मानक हिंदी के रूप में एक सुनिश्चित तथा नियमित रूप ग्रहण किया है। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से मानक भाषा के स्तर तक पहुंचने वाली 'खड़ी बोली का नाम लगभग दो सौ वर्ष पुराना है। जबकि 'हिंदी शब्द लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व प्रयोग में आना शुरू हो गया था। 'हिंदी शब्द की व्युत्पत्ति 'हिन्द से हुई, जो मूलतः 'सिन्धु शब्द का परिवर्तित रूप है। प्राचीन समय में अरब–फारस से भारत आने वाले यात्री, जिनके लिए सिंधु प्रदेश ही भारत था, वे महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण अल्पप्राण ध्वनियों के रूप में करते थे, इसलिए वे 'सिन्धु को 'हिन्दु और बाद में 'हिन्द कहने लगे। इसी 'हिन्द शब्द में ईरानी भाषा का 'ईक प्रत्यय जोड़कर हिन्द ईक त्र 'हिन्दीक शब्द बना। कालान्तर में अंतिम व्यंजन 'क का लोप हो गया और 'हिन्दी शब्द 'हिन्द के विशेषण के रूप में प्रचलित हो गया, जिसका अर्थ है–हिन्द का या हिन्दी की।

भाषा के अर्थ में हिंदी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फारस (ईरान) और अरब में हुआ। छठी शताब्दी में संस्कृत–आख्यानक 'पंचतंत्र का फारसी में अनुवाद करने वाले हकीम बजरोया नामक विद्वान ने भूमिका में लिखा कि 'यह अनुवाद 'जबाने हिंदी से किया। यहां हिंदी से उनका अभिप्राय–भारत की भाषा, 'संस्कृत से था। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में उत्तर भारत विशेषतः दिल्ली के आस–पास की जनभाषा 'हिन्दी 'हिंदवीं के नाम से जानी जाने लगी थी–जिसका तात्पर्य स्पष्टतः आज की खड़ी बोली से था। इसका प्रमाण अमीर खुसरो द्वारा रचित पद्यबद्ध 'फारसी–हिंदी कोश 'खालिकबारी में मिलता है, जिसमें अनेक स्थलों पर ब्रज, हरियाणवी आदि से मिश्रित खड़ी बोली को 'हिन्दवी 'हिंदी कहा गया।

आगे चलकर भकित-आंदोलन के प्रभाव से हिंदी लगभग संपूर्ण भारत में प्रचार-प्रसार पाकर जनभाषा बन गई। मध्ययुग के प्रारंभ से ही 'संस्कृत के समानांतर जनसामान्य में प्रयुक्त हिंदी को 'भाषा या 'भाखा कहा जाने लगा था। उदाहरण के रूप में कुछ मध्ययुगीन कवियों की काव्य पंक्तियों को देखा जा सकता है-

(क) संसकिरत है कूप-जल, भाषा बहता नीर (कबीर)

(ख) लिखि भाखा चौपाई कहैं। (जायसी)

(ग) भाषा भनिति मोर मति थोरी। (तुलसी)

(घ) भाषा बोल न जानहीं, जेहि के कुल के दास। (केशव)

(ङ) दसम कथा भागौत की, भाखा कही बनाइ। (गुरु गोविंद सिंह)

मध्य युग में यही 'भाषा, 'भाखा अथवा 'बोली या 'बुलि समस्त भारत में जन-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। जिस प्रकार आदिकाल में अमीर खुसरो ने इसे 'हिन्दवी अथवा 'हिंदी कहा था, उसी प्रकार मध्ययुग में विभिन्न सूफी कवियों ने भी इस लोकभाषा को 'हिन्दवी अथवा 'हिन्दी नाम से संबोधित किया। पंद्रहवीं शताब्दी के लगभग-इसी अर्थ में जायसी ने भी कहा है- 'तुरकी-अरबी-हिन्दवी भाषा जेति आहिं। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक आते-आते यहीं 'हिन्दवी शब्द 'हिंदी शब्द में समाहित हो गया। संस्कृत इस 'खड़ी बोली हिंदी की आदि या स्रोत भाषा है, तो दूसरी ओर मानक हिंदी इसका वर्तमान रूप है।

खड़ी बोली का जनप्रयोग तथा साहित्यिक प्रयोग तो 12-13वीं शताब्दी (अमीर खुसरो में भी) से मिलता है। लेकिन इसका नाम 'खड़ी बोली के रूप में सर्वप्रथम सन 1903 ई. में श्री लल्लू लाल ने अपनी कृति 'प्रेमसागर में किया। इसी प्रकार सदल मिश्र ने अपनी रचनाओं 'नासिकेतोपाख्यान तथा 'रामचरित में 'खड़ी बोली शब्द का प्रयोग किया। 'इंशा अल्लाखाँ ने अपनी रचना 'रानी केतकी की कहानी में 'खड़ी बोली शब्द का प्रयोग करते हुए उसे आंचलिक (गंवारी) बोलियों के शब्दों से मुक्त रखने पर बल दिया। वास्तव में उस युग के अनेक साहित्यकार 'खड़ी बोली के मानकीकरण के प्रति अत्यंत सचेष्ट थे। क्षेत्रीय बोलियों के प्रभाव के अतिरिक्त उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को विदेशी भाषाओं के प्रभाव से भी मुक्त रखने का प्रयास किया। यद्यपि इसके लिए उन्होंने 'शुद्ध एवं 'शिष्ट समुदाय की भाषा आदि विशेषणों का प्रयोग किया, लेकिन उनकी दृष्टि में 'शुद्ध होते हुए भी इसमें संस्कृत के कठिन-किलष्ट शब्दों का

अधिक प्रयोग नहीं होना चाहिए। यही 'शुद्ध तथा 'शिष्ट हिंदी आगे चलकर 'ठेठ हिंदी कहलाई। 'ठेठ शब्द अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔद्य की कृति 'ठेठ हिंदी का ठाठ में दृष्टव्य है। यही 'ठेठ हिंदी आधुनिक युग के विभिन्न साहित्यकारों-जैसे-भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, प्रेमचंद, निराला, रामचंद्र शुक्ल द्वारा निरंतर परिमार्जित होते हुए 'परिनिष्ठित हिंदी या 'उच्च साहित्यिक हिंदी के स्तर पर पहुँची। यही शुद्ध, परिनिष्ठित हिंदी अंग्रेजी के स्टैंडर्ड शब्द के लिए 'मानक पर्याय को अपनाकर 'मानक हिंदी कहलाने लगी।

3. एकरूपता-यह मानक भाषा की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता है। ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, वर्तनी आदि सभी स्तरों पर भाषा के मौखिक तथा लिखित रूपों में एकरूपता होनी जरूरी है।

मानक भाषा की एकरूपता 'चयन या चुनाव पर आधारित होती है। उसमें यथासंभव विकल्प नहीं होते। इस दृष्टि से एक ही भाषिक इकाई या संकल्पना के लिए प्रयुक्त एकाधिक विकल्पों में से किसी एक रूप को मान्य तथा दूसरे रूप को अमान्य ठहराना मानकीकरण कहलाता है। हिंदी के मानक रूप में भी विकल्पों का परिहार हो जाता है। जिन शब्दों या भाषिक इकाइयों के विकल्प हिंदी में प्रचलित हैं उनमें से किसी एक को चुनकर मानक हिंदी में स्थान दिया गया है जैसे पहले-पहिले, मुझे-मेरे को, दरअसल-दरअसल में। इन विकल्पों में हिंदी भाषा ने पहले विकल्प का चुनाव किया है अर्थात 'पहले मुझे, दरअसल को मानक हिंदी में सम्मिलित किया गया है और शेष को अमानक मानकर छोड़ दिया गया है।

भाषा में विकल्प सभी भाषिक स्तरों पर हो सकते हैं। इन सभी स्तरों पर हिंदी में भी विकल्प मिलते हैं। उदाहरण के लिए उच्चारण के स्तर पर कई विकल्प मिलते हैं, जो प्रायः बोलने वाले के अपने प्रदेश की बोली, सामाजिक तथा पारिवारिक परिवेश आदि के कारण उत्पन्न होते हैं। जैसे क्षमा-छमाऋ कहना-कहना, पहले-पहिले-पैले आदि। शब्द के स्तर पर (चींटा-कीड़ा-मकोड़ा), रूप के स्तर पर (है-हैंगे, हूँगा-होउंगा), वाक्य के स्तर पर (मुझे जाना है-मैंने या मेरे को जाना है), वर्तनी के स्तर पर (हुआ-हुवा, गयी-गई) भी विकल्प मिलते हैं। मानक हिंदी में इनमें से किसी एक को दो आधरों पर चुन लिया गया है। उदाहरणतः जिन रूपों के विकल्पों में श्य-व श्रुति का प्रयोग होता है वहां स्वरात्मक रूप का प्रयोग किया जाता है, जैसे 'हुवा, गयी, गये के स्थान पर

'हुआ, गए, गई आदि स्वरात्मक रूपों का प्रयोग किया जाता है। यह चुनाव इसलिए आवश्यक है क्योंकि यदि सभी विकल्पों को स्वीकार कर लिया जाए तो एक अराजकता सी फैल जाए। इसलिए इनमें से किसी एक को स्वीकार करके हिंदी को एकरूपता तथा सुनिशिचता प्रदान की गई है। ऐसा अनेक विद्वानों के सजग प्रयास से संभव हो पाया है। राजकीय स्तर पर तथा विभिन्न स्वायत्त संस्थाओं द्वारा हिंदी के अनेक मानक काव्य प्रकाशित किए जा चुके हैं। अनेक साहित्यिक तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं द्वारा यह प्रयास आज भी जारी है।

4. स्वायत्तता-भाषा का मानक रूप अपने विकास के दौरान स्वायत्तता के गुण से भी युक्त हो जाता है अर्थात अपनी भाषिक संरचना और प्रकार्य की दृष्टि से वह स्वायत्त या विशिष्ट और स्वतंत्र होता है, अपने अस्तित्त्व के लिए वह किसी दूसरी भाषिक व्यवस्था का सहारा नहीं लेता। उदाहरण के लिए, वर्तमान मानक हिंदी आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व अपने आरंभिक रूप में पूर्ण स्वायत्त नहीं थी। उसे विभिन्न स्तरों पर संप्रेषण के लिए फारसी भाषा तथा अन्य स्थानीय बोलियों के भाषिक प्रयोगों पर निर्भर रहना पड़ता था। यद्यपि उसमें अनेक काव्यग्रंथों की रचना हो चुकी थी लेकिन जनजीवन से जुड़े अनेक सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक आदि विषयों पर व्यावहारिक तथा साहित्यिक गद्य भाषा में लिखी गई रचनाओं का अभाव था। लेकिन धीरे-धीरे विभिन्न विद्वानों ने हिंदी को हर दृष्टि से सक्षम तथा व्यवहार योग्य बनाया। आज संप्रेषण के विभिन्न स्तरों पर पूर्ण स्वायत्त हो जाने के कारण वह मानक भाषा कहलाने की अधिकारिणी है। शिक्षा, प्रशासन, व्यापार, कानून, शास्त्र, विज्ञान, पत्रकारिता आदि सभी क्षेत्रों में अभिव्यक्ति के लिए उसके पास निजी शब्द भंडार, निजी प्रयुक्तियाँ तथा निजी भाषिक व्यवस्था है। यह पूर्ण निजीपन या स्वायत्तता ही उसकी मानकता का आधार है।

5. केन्द्रोन्मुखता-मानक भाषा अपने क्षेत्र की बोलियों को बहुत अधिक प्रभावित करती है। दूसरी ओर वह खुद भी उनके शब्द, पद, मुहावरे, अभिव्यक्ति शैलियों आदि की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण गुणों को ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार वह भाषा अपने संपूर्ण प्रदेश या भाषा-क्षेत्र में केंद्रीय महत्त्व प्राप्त कर लेती है। उस प्रदेश की सभी उपभाषाएं और बोलियां उसके इस केंद्रीय रूप से जुड़ी रहती है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी चक्र या पहिए की उस धुरी से कर सकते हैं, जिसके सहारे-चक्र के अरे घूमते रहते हैं। मानकता भी किसी भाषा रूपी चक्र

की धुरी कही जा सकती है। भाषा का विकास, प्रसार, प्रचार उसी मानकता रूपी धुरी पर निर्भर करता है। जिस प्रकार किसी चक्र के अरे अलग-अलग होते हुए भी केंद्रीय धुरी से समान रूप से जुड़कर स्वयं चलते हुए चक्र को भी संचालित करते है, उसी प्रकार मानक भाषा की उपभाषाएं या बोलियों भी ऊपरी स्तर पर विविधता-संपन्न या पृथक प्रतीत होते हुए भी एक समान सूत्र से केंद्रीय मानक भाषा से जुड़ी रहती है।

उदाहरण के लिए, मानक हिंदी की विभिन्न बोलियों में से भोजपुरी भाषी हरियाणवी या गढ़वाली को या मेवाती भाषी ब्रज को शायद न समझ पाए, लेकिन इन सभी बोलियों के प्रयोक्ता हिंदी के केंद्रीय मानक रूप को अवश्य समझ सकते हैं। राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी केंद्रोन्मुखता की दृष्टि से हिंदी को एक मानक रूप देने में सहायक बनीं। पहले मुगलों ने दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रों को अपने शासन का केंद्र बनाया तो यहां की खड़ी बोली एक केंद्रीय मानक रूप पाने लगी। खिलजी वंश से मुसिलमों का शासन जब दिल्ली से दक्षिण पहुँचा तो यहां की भाषा दक्षिण में 'दक्खिनी हिंदी के रूप में विकसित हुई। अंग्रेजों ने पहले कलकत्ता को केंद्र बनाया तो उन्नीसवीं शताब्दी में वहां खड़ी बोली गद्य का विकास और प्रचार हुआ। फिर दिल्ली सत्ता का केंद्र बनी तो यहां से हिंदी के मानक स्वरूप का प्रचार-प्रसार संपूर्ण भारत तथा विदेशों तक में हुआ। अपनी इस प्रयोग बहुलता व बोधगम्यता की दृष्टि से केद्रीय स्थिति के कारण ही हिंदी मानक भाषा के स्तर तक पहुंच पाई।

6. प्रयोग बहुलता-यह मानक भाषा की एक प्रमुख विशेषता है कि वह किसी सीमित क्षेत्र की भाषा नहीं होती बल्कि एक व्यापार क्षेत्र के अधिकांश लोग उसे शुद्ध मानकर उसी का अधिकाधिक प्रयोग करते हैं, अर्थात वह प्रयोगबहुल होती है। उसके प्रयोक्ताओं की संख्या जितनी अधिक होगी, अर्थात जितने अधिक लोग, अपने जितने अधिक प्रयोग क्षेत्रों या प्रयुक्तियों में अभिव्यक्ति के लिए उसे अपनाएंगे, उतना ही अधिक उसका विकास होगा। तब उसके एक ऐसे सर्वस्वीकृत रूप के निर्धरण का प्रयास होगा जो सभी जगह उसी रूप में प्रयुक्त होता हो और यह प्रयास ही उसे एक आदर्श या मानक रूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है।

इस दृष्टि से हिंदी में प्राचीन समय से ही प्रयोगबहुलता की विशेषता मिलती है। देश-विदेश में करोड़ों लोग हिंदी को प्रयोग में लाते हैं। इस व्यापक संप्रेषणीयता तथा सुग्राह्यता की जरूरत के कारण ही उसने बड़ी शीघ्रता से एक

मानक रूप प्राप्त कर लिया, जिसे संपूर्ण राष्ट्र में समान रूप से समझा-बोला जाता है।

7. स्वाभाविकता और सुबोधता-मानक भाषा अपने विकास तथा मानकीकरण की प्रक्रिया में स्वाभाविकता लिए होती है। उसका मानकीकरण शब्दकोश या व्याकरण को देख देखकर ही नहीं किया जाता। उसके भाषिक रूप धीरे-धीरे समाज में स्वीकृत होते हैं और इस प्रकार मानकीकरण की प्राकृतिक प्रक्रिया से गुजरते हैं इसलिए वह अधिकाधिक लोगों के लिए सहजतापूर्वक बोधगम्य बनकर मानक भाषा के स्तर तक पहुँचाती है। किलष्ट या दुर्बोध् भाषा 'क्लासिकल तो कहला सकती है। लेकिन 'मानक नहीं। उदाहरण के लिए संस्कृत आज अधिकांश लोगों के लिए किलष्ट है, इसलिए पूर्णत: व्याकरण-सम्मत तथा समर्थ होते हुए भी वह मानक-रूप में प्रचलित नहीं है। दूसरी ओर, हिंदी अपेक्षाकृत कम समय में मानक भाषा का रूप प्राप्त कर सकी क्योंकि अधिकांश भारतीयों के लिए उसे समझना, बोलना तथा जीवन के विभिन्न अभिव्यक्ति क्षेत्रों में व्यवहार में लाना अधिक सहज सरल है। इस प्रकार अपनी स्वाभाविकता व सुबोधता की विशेषता के कारण हिंदी एक व्यापक समाज के द्वारा मानक भाषा के रूप में अपनाई जा सकती है।

8. जीवन्तता-मानक भाषा में जीवंतता की विशेषता होना भी जरूरी है। जीवंत भाषा का भाषी समुदाय इसका मातृभाषा तथा संपर्कभाषा के रूप में भी प्रयोग करता है। यह जीवंतता भाषा में एक प्रकार का लचीलापन उत्पन्न करती है, जिससे वह नई वैज्ञानिक उपलब्धियों, नए-नए व्यापारिक और राजनैतिक आयामों को अभिव्यक्त करने में भी सक्षम बनती है। वह केवल मौखिक भाषा भी नहीं होती। बोलचाल की मौखिक भाषा मानक भाषा का एक रूप होकर भी उसके जैसे सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाती क्योंकि उसमें व्याकरण सम्मतता या मानकीकरण का अभाव होता है। इस दृष्टि से मानक हिंदी के मौखिक और लिखित दोनों रूप पूर्णत: मानकीकृत है-लेकिन वे ठहरे हुए जड़ रूप नहीं हैं-बलिक निरंतर प्रयोग में लाए जाने के कारण जीवंत है। भविष्य की नई अभिव्यक्ति की जरूरतों के योग्य बनते हुए मानक हिंदी समरूपता और स्थिरता की ओर निरंतर अग्रसर है।

इस प्रकार आज की 'मानक हिंदी एक समय में एक बोली मात्र थी, लेकिन अब वह मूलत: एक बोली (खड़ी बोली) होते हुए भी अपनी स्थानीय या क्षेत्रीय विशेषताओं से ऊपर उठकर एकरूपता प्राप्त कर चुकी है। वह अपनी

बोलियों तथा कुछ दूसरी भाषाओं की शब्द समूह, वाक्य रचना आदि से संबंधित महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को आत्मसात करके एक सशक्त तथा केंद्रीय भाषा बन चुकी है। शिक्षा, प्रशासन, संचार तथा अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में मानक हिंदी की क्षमता तथा स्वायत्तता निर्विवाद है। क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से मानक हिंदी भारत की सबसे ज्यादा व्यापक भाषा है इसलिए इसे राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा होने का गौरव भी प्राप्त है।

भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया

मानकीकरण की एक स्वाभाविक प्रक्रिया से गुजरकर मानक भाषा का रूप परिनिषिठत होता है। भाषा के मानकीकरण का अभिप्राय है, उसकी 'बोली की स्थानीय विशेषताओं से ऊपर उठकर एक ऐसी उच्च स्तर की सशक्त, केन्द्रीय भाषा के रूप में विकसित होना, जो किसी सभ्य समाज या राष्ट्र के विभिन्न औपचारिक कार्यों में समान रूप से समझी और बोली जाए। इस मानकीकरण की प्रक्रिया के मुख्य रूप से तीन सोपान या स्तर हैं-

पहले या प्रारंभिक स्तर पर हर भाषा अपने मूल रूप में किसी सीमित क्षेत्र के जनसाधारण में बोलचाल के रूप में प्रचलित 'बोली होती है। इस स्थानीय, आंचलिक या क्षेत्रीय बोली का शब्द-भंडार सीमित होता है। इसका अपना कोई नियमित व्याकरण या भाषा शास्त्र नहीं होता इसलिए जीवन के औपचारिक संदर्भों में इसका प्रयोग नहीं हो पाता।

दूसरे स्तर पर विकसित होते हुए वही बोली कुछ विशेष भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक आदि कारणों से अपने प्रदेश की अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त कर लेती है। उसका लिखित रूप तथा व्याकरणिक रूप भी विकसित होने लगते हैं। उसके प्रयोक्ता अपने स्थानीय क्षेत्र के बाहर भी उसे पत्राचार का माध्यम बना लेते हैं। इसके अलावा वह शिक्षा, प्रशासन, साहित्य आदि का माध्यम भी बनने लगती है, तब वह बोली न रहकर भाषा की संज्ञा प्राप्त कर लेती है। बोली का भाषा की संज्ञा पा लेना मानकीकरण की प्रक्रिया का दूसरा सोपान है।

तीसरे स्तर पर पहुंचकर, मानकीकरण की प्रक्रिया तब पूर्ण हो जाती है जब शिक्षित समाज के द्वारा इस भाषा की एकरूपता, स्थिरता, नियमबद्धता व व्याकरण सम्मतता को एक निशिचत आदर्श रूप दे दिया जाता है। शिक्षित समाज द्वारा निरंतर परिष्कृत होते हुए सरकारी कामकाज, समाचारपत्र, सामाजिक

शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में प्रयोग की दृष्टि से उसकी अपनी तकनीकी तथा परिभाषिक शब्दावली होती है। इस स्तर पर पहुंचकर भाषा 'मानक भाषा कहलाने लगती है। यदि कोई भाषा मानकीकरण की इस प्राकृतिक प्रक्रिया से न गुजरे तो वह चन्द शिक्षित लोगों द्वारा बनाई गई किलष्ट, अस्पष्ट, बोझिल और थोपी हुई भाषा लगने लगेगी।

संक्षेप

'मानक भाषा' किसी भाषा के उस रूप को कहते हैं, जो उस भाषा के पूरे क्षेत्र में शुद्ध माना जाता है तथा जिसे उस प्रदेश का शिक्षित और शिष्ट समाज अपनी भाषा का आदर्श रूप मानता है और प्रायः सभी औपचारिक परिस्थितियों में, लेखन में, प्रशासन और शिक्षा, के माध्यम के रुप में यथासाध्य उसी का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है।

भाषाओं को मानक रूप देने की भावना जिन अनेक कारणों से विश्व में जगी, उनमें सामाजिक आवाश्यकता, प्रेस का प्रचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास से एकरूपता के प्रति रूझान तथा स्व की अस्मिता आदि मुख्य हैं। यहाँ इनमें एक-दो को थोड़े विस्तार से देख लेना अन्यथा न होगा। उदाहरण के लिए मानक भाषा की सामाजिक आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। किसी भी क्षेत्र को लें, सभी बोलियों में प्रशासन साहित्य-रचना, शिक्षा देना या आपस में बातचीत कठिन भी है, अव्यावहारिक भी। हिन्दी की ही बात लें तो उसकी बीस-पच्चीस बोलियों में ऐसा करना बहुत संभव नहीं है। आज तो कुमायूंनी भाषी नामक हिंदी के जरिए मैथिली भाषी से बातचीत करता है, किंतु यदि मानक हिंदी न होती तो दोनों एक दूसरे की बात समझ न पाते। सभी बोलियों में अन्य बोलियों के साहित्य का अनुवाद भी साधनों की कमी से बहुत संभंव नहीं है, ऐसी स्थिति में शैलेश मटियानी (कुमायूँनी भाषा) के साहित्य का आनंद मैथिली भाषी नहीं ले सकता था, न नागार्जुन (मैथिली भाषी) के साहित्य का आनंद कुमायूँनी, गढ़वाली या हरियानी भाषी। इस तरह सभी बोलियों के ऊपर एक मानक भाषा को इसलिए आरोपित करना, अच्छा या बुरा जो भी हो, उसकी सामाजिक अनिवार्यता है और इसलिए विभिन्न क्षेत्रों में कुछ मानक भाषाएँ स्वयं विकसित हुई हैं, कुछ की गई हैं और उन्होंने उन क्षेत्रों को काफी दूर-दूर तक समझे जानेवाले माध्यम के रूप में अनंत सुविधाएं प्रदान की हैं। ऐसे ही प्रेस के अविष्कार तथा प्रचार ने भी मानकता को अनिवार्य बनाया है।

हिन्दी का सरलीकरण

भाषा विज्ञान किसी भाषा को सरल या कठिन नहीं मानता, भाषा को केवल भाषा मानता है। सरलता कठिनता की बात भाषेत्तर तत्त्व करते हें। 'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन वैसी के अनुसार हिन्दी की कठिनाईयाँ भी अपनी अपनी भावना से प्रसूत हैं। इसलिए उनका कोई समाधान संभव नहीं है।

एक वर्ग संस्कृत निष्ठता के कारण हिन्दी को कठिन कहता है। इस वर्ग में उर्दूदाँ आते हैं। हिन्दी और उर्दू के व्याकरण में कोई अन्तर नहीं है। अत: इस वर्ग का असंतोष व्याकरण को लेकर नहीं हिन्दी के शब्द भंडार को लेकर हैं। इस वर्ग को देश कठिन मालूम होता है, मुल्क आसान, प्रजातंत्र कठिन, जमहूरियत आसान, जनता कठिन, अवाम आसान, उन्नति कठिन, तरक्की आसान, उत्सव कठिन, जलसा आसान। हिन्दी के शब्दों के बदले यदि अरबी फारसी के शब्द रखे जाएँ तो इस वर्ग को हिन्दी से कोई शिकायत नहीं होगा।

हिन्दी को कठिन कहने वाला दूसरा वर्ग उनका है, जो अंग्रेजीदाँ है अर्थात बाबू या साहब हैं। ये लोग अंग्रेजी शासन-तंत्र के अंग रहे अंग्रेजी पढ़ी ही इसलिए कि वह शासन की भाषा रही। इन्हें दफ्तर की भाषा की बनी बनाई लीक का अभ्यास हो गया है, इसलिए उसमें काम करने में इन्हें असुविधा नहीं होती। अभ्यस्त लीक से जरा भी इधर-उधर चलने में इन्हें असुविधा होने लगती है। हिन्दी शब्दों के प्रयोग में जो थोड़ा बहुत आयास अपेक्षित है, वह इन्हें कष्टकर प्रतीत होता है। अतएव ये हिन्दी का विरोध करते हैं। इन्हें प्रेसिडेंट, प्राइम मिनिस्टर, पार्लियामेंट, मिनिष्ट्री आफ एक्सटर्नल अफेएर्स, मिनिष्ट्री ऑफ अनफारमेशन एंड ब्राडकास्टिंग, मिनिस्ट्री आफ ट्रांसपोर्ट एंड कम्यूनिकेशन, एसेम्बली, कौंसिल, डिपार्टमेंट, सेक्रेटरी, डायरेक्टर, कमेटी, मीटिंग, सेशन, फाइल, आर्डर आदि शब्द इतने मंजे हैं कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, संसद, विदेश मंत्रालय, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, परिवहन और संचार मंत्रालय, परिवहन, सचिव, निदेशक, समिति, बैठक, सत्र, संचिका, आदेश आदि शब्द अजनबी अर्थात कठिन लगते हैं। अंग्रेजी को कायम रखने के लिए यही वर्ग सब से अधिक सचेष्ट है और चूँकि अधिकार इन्हीं के हाथों में है, इसलिए हिन्दी की प्रगति को रोकना इनके लिए आसान भी है।

इस वर्ग में वे अध्यापक भी है, जो अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा पाए हुए है और अंग्रेजी में पढ़ाते भी हैं। दर्शन, अर्थशास्त्री, मनोविज्ञान, भौतिकविज्ञान,

जीवविज्ञान, आयुविज्ञान, अभियांत्रिका आदि विषयों की अपनी अपनी पारिभाषिक शब्दावली है, जो वर्षों के सतत प्रयोग से इन्हें आत्मसात हो चुकी है। अब अंग्रेजी को छोड़ हिन्दी को अपनाने का अर्थ है उस समस्त शब्दावली का परित्याग और नवीन शब्दावली पर अधिकार करने का प्रयास, जो स्पष्ट ही श्रमसाध्य है और श्रम से बचना मनुष्य की सहज प्रवृति होती है।

हिन्दी की कठिनाई का तीसरा आधार है उसका व्याकरण। हिन्दी को इस दृष्टि से कठिन कहने वाले वे लोग हैं, जो हिन्दीतर भाषा-भाषी है। इनके अनुसार हिन्दी की जटिलता में दो उल्लेख है एक तो 'ने' का प्रयोग और दूसरी लिंग व्यवस्था।

कुछ लोगों को लिपि के कारण भी हिन्दी कठिन प्रतीत होती है। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता को लेकर आज तक दो रायें नहीं हुई। संसार में आज जितनी भी लिपियाँ प्रचलित हैं, उनमें देवनागरी सर्वोत्तम मानी जाती है। स्वनिम और संकेत का अर्थात ध्वनि और लेखन का निर्भात सहसबंध भी बहुतों को देवनागरी का दोष प्रतीत होता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें एक भी वास्तविक कठिनाई नहीं है। अपने अपने संस्कार, परम्परा और अभ्यास के आधार पर ये कल्पित या आरोपित हैं।

इन बातों की पृष्ठभूमि में सरलीकरण संबंधी कुछ प्रश्न उठतें हैं। जैसे

1. सरलीकरण का अर्थ क्या है?
2. सरलीकरण किसके लिए?
3. सरलीकरण कौन करे?

हमने ऊपर देखा कि हिन्दी कोई एक कठिनाई नहीं है। कठिनाई एक न होने से सरलीकरण का मार्ग भी एक नहीं हो सकता। जिन्हें अरबी-फारसी के शब्द अभिमत हैं, उन्हें अंग्रेजी के शब्दों से संतोष नहीं होगा और जिन्हें अंग्रेजी शब्दों का अभ्यास है, उनकी कठिनाई अरबी-फारसी के शब्दों से नहीं मिटेगी, फिर भारत की सभी भाषाएँ, संस्कृति निष्ठ हैं क्योंकि संस्कृत यहाँ के साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, इतिहास की भाषा रही है। इसलिए हिन्दी की संस्कृतनिष्ठता उसकी बोधगम्यता की अनिवार्य पक्ष है। इसका यह अर्थ नहीं कि अरबी फारसी या अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को भी हटा कर उनकी जगह अप्रचलित शब्दों का व्यवहार किया जाए किंतु मूलतः भाषा संस्कृतनिष्ठ ही रखनी होगी।

कठिनाई की चर्चा के प्रसंग में एक बात प्रायः भुला दी जाती है कि भाषा का रूप विषय के अनुसार सरल या कठिन हुआ करता है। जिस प्रकार तरल वस्तु का अपना कोई आकार नहीं होता, उसे जैसे पात्र में रखा जाता है वैसा ही उसका आकार हो जाता है, उसी प्रकार भाषा का भी निश्चित रूप नहीं होता। दर्शन की भाषा वैसी नहीं होती जैसे अखबार की और न साहित्यालोचन की भाषा वह होती है, जो विज्ञापन की। लेखक की रुचि, प्रवृति, संस्कार, अध्ययन आदि से भी भाषा में रूपभेद हुआ करता है। प्रेमचंद और प्रसाद दोनों हिन्दी के लेखक हैं, पर गोदान और तितली की भाषा का अंतर किसी पाठक से छिपा नहीं है।

सरलता के आग्रही यह भी भूल जाते हैं कि सरलता किसके लिए? जिस तरह लेखकों का एक स्तर नहीं होता उसी तरह पाठकों का भी एक स्तर नहीं होता। तब किस स्तर के पाठक को ध्यान में रखकर सरलीकरण किया जाए? साक्षर से लेकर विद्वान तक पाठकों की श्रेणी में आते हैं और भी भाषा सरल कर देने से ही विषय सरल हो जाएगा? अद्वैतवाद, विर्वतवाद, परिणामवाद, सपेक्षवाद, रसवाद आदि को चालू भाषा में इन्हें क्या लिखा भी जा सकता है? जब भी विचित्र विरोधाभास है कि सरलीकरण की अर्थात भाषा का स्तर गिराने की तो माँग की जाती है, किंतु पाठक का स्तर उठाने की चिंता किसी को नहीं है। प्रत्येक अंग्रेजी भाषी हवाइटहेड का दर्शन और इलियट की कविता नहीं समझता पर हिन्दी में जो कुछ लिखा जाए, उसे सभी समझ जाएँ, यह ऐसा अव्यावहारिक आग्रह है, जिसका कोई समाधान नहीं। वस्तुतः सरलीकरण शब्द सुनने में जितना सरल मालूम होता है, उतना सरल है नहीं। सच तो यह है कि लेखक, पाठक और विषय से निरपेक्ष उसकी सत्ता ही नहीं है। एक बात और याद रखनी चाहिए। भाषा कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे, जैसे चाहें, काट-छांट दें। भाषा की अर्थात उसके शब्द भंडार की, व्याकरण की एक विकास परंपरा होती है, जो बहुत कुछ जैव (आर्गेनिक) विकास से मिलती जुलती है। जैसे किसी मनुष्य का सरलीकरण उसके हाथ, पैर या सिर काट कर नहीं कर सकते, वैसे ही भाषा का सरलीकरण भी से बिना विकलांग किए संभव नहीं है। अंग्रेजी की कठिनाइयाँ हिन्दी की तुलना में कहीं अधिक है वर्तनी की अवैज्ञानिकता और अस्वाभाविकता तो सर्वसम्मत है – पर उसके सरलीकरण की आवाज किसी ने कभी नहीं उठाई, न इस देश में और न उन देशों में जहाँ की वह भाषा है, क्योंकि भाषा का सरलीकरण ऐसा वायवीय प्रश्न है जिसे ठोस रूप देना आशका है।

तीसरा प्रश्न कि सरलीकरण कौन करे? कोई व्यक्ति, संस्था या सरकार? किसी व्यक्ति का कहना, वह कितना भी समर्थ क्यों न हो, नहीं चल सकता। महात्मा गाँधी जैसे व्यक्ति ने भाषा के संबंध में जो कुछ कहा, उसे साहित्यिकों ने तो नहीं माना, स्वयं उनके अनुयायियों में भी अनेक ने नहीं माना। जब महात्मा गाँधी का कहना नहीं चल सका तो किसका चलेगा? अब रही बात किसी संस्था की, तो इसमें भी वही कठिनाई है। संस्थाएँ अनेक हैं और परस्पर रागद्वेष की भी कमी नहीं है। यह भार कौन उठाए और उठाए भी तो उसके नियमन की बाध्यता क्या है? बची सरकार, तो उसके निर्णयों का भी विरोध होता है, जोरदार विरोध होता है और जिसे सरकार कहते हैं वह व्यक्तियों के समूह के अतिरिक्त है भी क्या? इसलिए ले दे कर बात वहीं की वहीं रह जाती है। तात्पर्य कि सरलीकरण की माँग सैद्धांतिक रूप में चाहे जितनी भी सरल हो, व्यावहारिक रूप में उतनी ही कठिन है।

6

व्यावहारिक बोलचाल के रूप में राजभाषा हिन्दी का स्वरूप

'हिंदी' शब्द विदेशियों का दिया हुआ है। फारसी में संस्कृत की 'स' ध्वनि ह हो जाती है, अत: सिंध से हिंद और सिंधी से हिंदी बना। शब्दार्थ की दृष्टि से हिंद (भारत) की किसी भाषा को हिंदी कहा जा सकता है। प्राचीनकाल में मुसलमानों ने इसका प्रयोग इस अर्थ में किया भी है पर वर्तमान काल में सामान्यत: इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड को भाषा के लिए होता है, जो पश्चिम में जैलसमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं - पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, झारखंडी, कुमाउँनी, मगही आदि।

पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत पाँच बोलियाँ हैं - खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, बिजनौर के आस-पास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाटू या हरियानवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसे पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आस-पास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रांतों के शब्दों और प्रयोगां का भी ग्रहण है। कन्नौजी गंगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमंडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती-जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोड़ा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। बुंदेलखंड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं जिनकी काव्यभाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिन्दी की तीन शाखाएँ मानी गई हैं- बघेली, छत्तीसगढ़ी और अवधी। अवधी बोली अर्धमागधी प्राकृत की परम्परा में आती है। यह बोली मुख्यत: अवध में बोली जाती है। अवध में बोली जाने वाली बोली के दो भेद हैं-

(1) पूर्वी अवधी,

(2) पश्चिमी अवधी।

अवधी को 'बैसवाड़ी' भी कहा जाता है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में अधिकांशत: पश्चिमी अवधी मिलती है और जायसी के 'पद्मावत' में पूर्वी अवधी दृष्टिगोचर होती है।

बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है।

छत्तीसगढ़ी पलामू की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता।

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं – अवधी, बघेली और के छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध में बोली जाती है। इसके दो भेद हैं – पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकांशत: पश्चिमी अवधी मिलती हैं और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (बिहार) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोकसाहित्य रचा गया है।

बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी

हिंदी प्रदेश की तीन उपभाषाएँ और हैं – बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी। बिहारी की तीन शाखाएँ हैं – भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियों में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। इसमें प्राचीन साहित्य तो नहीं मिलता पर ग्रामगीतों के अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिए कैथी लिपि का व्यवहार होता है। इसमें कोई साहित्य नहीं मिलता। मैथिली गंगा के उत्तर में दरभगा के आस-पास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परंपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

राजस्थानी का प्रसार पंजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से

है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं जिसमें चारणों का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परंपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ हैं- मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं - पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परंबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भे हैं - कुमायूँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नहीं मिलता। आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान पहाड़ी को राजस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं।

प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है--

(क) हिन्दी क्षेत्र–हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: सत्रह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में इस प्रकार विभक्त कर के रखा जा सकता है- पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी और बिहारी हिन्दी।

(ख) अन्य भाषा क्षेत्र- इनमें प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं- दक्खिनी हिन्दी (गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि), बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी तथा शिलंगी हिन्दी (बाजार-हिन्दी) आदि।

(ग) भारतेतर क्षेत्र–भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। सीमावर्ती देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रुस, जापान, चीन तथा समस्त दक्षिण पूर्व व मध्य एशिया में हिन्दी बोलने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। लगभग सभी देशों की राजधानियों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ी-पढ़ाई जाती है। भारत के बाहर हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ–ताजुम्बेकी हिन्दी, मॉरीशसी हिन्दी, फिजी हिन्दी, सूरीनामी हिन्दी आदि हैं।

खड़ी बोली

खड़ी बोली से तात्पर्य खड़ी बोली हिंदी से है जिसे भारतीय संविधान ने राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श (स्टैंडर्ड) हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी की मूल आधार स्वरूप बोली होने का गौरव प्राप्त है। खड़ी बोली पश्चिम रुहेलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अंबाला जिले की उपभाषा है, जो ग्रामीण जनता के द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है। इस प्रदेश में रामपुर, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, सहारनपुर, देहरादून का मैदानी भाग, अंबाला तथा कलसिया और भूतपूर्व पटियाला रियासत के पूर्वी भाग आते हैं।

खड़ी बोली वह बोली है जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो। ठेंठ हिंदी। आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है।

'खड़ी बोली' (या खरी बोली) वर्तमान हिंदी का एक रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। दूसरे शब्दों में, वह बोली जिसपर ब्रज या अवधी आदि की छाप न हो, ठेंठ हिंदीं। खड़ी बोली आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप है। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है।

जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्रायः दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे और ब्रजभाष तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आस-पास की बोली ग्रहण की और उसका नाम खड़ी (खरी?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे-धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी 14वीं शताब्दी में पहले-पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। 15वीं और 16 वीं शताब्दी में कोई कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता में कहीं कहीं इसका प्रयोग करने

लगे थे, पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी। अधिकांश कविता बराबर अवधी और ब्रजभाषा में ही होती रही। 18वीं शताब्दी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में, और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुंशी सदासुखलाल, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृत प्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके संबंध में विभिन्न मत

अत्यंत प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विंध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच के प्रदेश को मध्य प्रदेश कहा जाता है, जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केंद्रबिंदु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसैनी प्राकृत विभिन्न युगों में इस मध्यदेश की भाषा थी। कालक्रम से शौरसैनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसैनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल की) शौरसैनी अपभ्रंश भाषा ही कालांतर में कदाचित् खड़ी बोली (हिंदी) के रूप में पारिणत हुई है। इस प्रकार खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसैनी अपभ्रंश से मानी जाती है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यक रूप में नहीं पाया जाता। भोज और हम्मीरदेव के समय से अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक दिखाई पड़ती है। इसके उपरांत भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुण धारा के संत कवि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्त्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है, जिससे आधुनिक हिंदी की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री, डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर,

इंशा आदि उर्दू के अनेक शायर पूरब की ओर आने लगे उसी प्रकार दिल्ली के आस-पास के हिंदू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूरबी शहरों में फैलने लगे। इनके साथ ही साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संबंध में वे लिखते हैं कि यह समय हिंदी (खड़ीबोली) भाषा के जन्म का समय था जिसका आविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने प्रेमसागर में किया।

लल्लू जी लाल और पं. सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक अथवा इसको प्रगति प्रदान करनेवाला तो माना जा सकता है, परंतु इन्हें खड़ी बोली का जन्मदाता कहना सत्य से युक्त तथा तथ्यों से प्रमाणित नहीं है। खड़ी बोली की प्राचीन परंपरा के संबंध में ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस कथन की अयथार्थता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है।

मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं बल्कि खड़ी बोली की ही एक शैली मात्र है जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता पाई जाती है तथा जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू साहित्य के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। अनेक मुसलमान कवियों ने फारसी मिश्रित खड़ी बोली में, जिसे वे 'रेखता' कहते थे, कविता की है। यह परंपरा 18वीं 19वीं शती में दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह तथा लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह तक चलती रही।

साधारणतः लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं परंतु इनमें से किसी को भी इसकी परंपरा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परंपरा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्यशैली का प्रवर्तन किया। कालांतर में लोगों ने भारतेंदु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुत: आधुनिक हिंदी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यत: व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में वर्तमान है।

बृजभाषा

बृजभाषा एक धार्मिक भाषा है, जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड में बोली जाती है। इसके अलावा यह भाषा हरियाणा एवं राजस्थान के कुछ जनपदों में भी बोली जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह ये भी संस्कृत से जन्मी है। इस भाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। भारतीय भक्ति काल में यह भाषा प्रमुख रही।

बृजभाषा मूलत: बृज क्षेत्र की बोली है। (श्रीमद्भागवत के रचनाकाल में 'व्रज' शब्द क्षेत्रवाची हो गया था। विक्रम की 13वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक भारत के मध्य देश की साहित्यिक भाषा रहने के कारण ब्रज की इस जनपदीय बोली ने अपने उत्थान एवं विकास के साथ आदरार्थ 'भाषा' नाम प्राप्त किया और 'ब्रजबोली' नाम से नहीं, अपितु 'ब्रजभाषा' नाम से विख्यात हुई। अपने विशुद्ध रूप में यह आज भी आगरा, हिण्डौन सिटी,धौलपुर, मथुरा, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है। इसे हम 'केंद्रीय बृजभाषा' के नाम से भी पुकार सकते हैं।

बृजभाषा में ही प्रारम्भ में काव्य की रचना हुई। सभी भक्त कवियों ने अपनी रचनाएं इसी भाषा में लिखी हैं जिनमें प्रमुख हैं सूरदास, रहीम, रसखान, केशव, घनानंद, बिहारी, इत्यादि। हिन्दी फिल्मों के गीतों में भी बृज भाषा के शब्दों का प्रमुखता से प्रयोग किया गया है।

भौगोलिक विस्तार

अपने विशुद्ध रूप में ब्रजभाषा आज भी आगरा, धौलपुर, हिण्डौन सिटी, मथुरा, मैनपुरी, एटा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है। इसे हम 'केंद्रीय ब्रजभाषा' के नाम से भी पुकार सकते हैं। केंद्रीय ब्रजभाषा क्षेत्र के उत्तर पश्चिम की ओर बुलंदशहर जिले की उत्तरी पट्टी से इसमें खड़ी बोली की लटक आने लगती है। उत्तरी-पूर्वी जिलों अर्थात् बदायूँ और एटा जिलों में इसपर कन्नौजी का प्रभाव प्रारंभ हो जाता है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा, 'कन्नौजी' को ब्रजभाषा का ही एक

रूप मानते हैं। दक्षिण की ओर ग्वालियर में पहुँचकर इसमें बुंदेली की झलक आने लगती है। पश्चिम की ओर गुड़गाँव तथा भरतपुर का क्षेत्र राजस्थानी से प्रभावित है।

ब्रजभाषा आज के समय में प्राथमिक तौर पर एक ग्रामीण भाषा है, जो कि मथुरा-आगरा केन्द्रित ब्रज क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य दोआब के इन जिलों की प्रधान भाषा है–

1. मथुरा,
2. आगरा,
3. फिरोजाबाद,
4. मैनपुरी,
5. एटा,
6. हाथरस,
7. बुलंदशहर,
8. गौतम बुद्ध नगर,
9. अलीगढ़,
10. कासगंज।

गंगा के पार इसका प्रचार बदायूँ, बरेली होते हुए नैनीताल की तराई, उत्तराखंड के उधम सिंह नगर जिले तक चला गया है। उत्तर प्रदेश के अलावा इस भाषा का प्रचार राजस्थान के इन भरतपुर धौलपुर हिण्डौन सिटीजिलों में भी है–और करौली जिले के कुछ भाग (हिण्डौन सिटी)। जिसके पश्चिम से यह राजस्थानी की उप-भाषाओं में जाकर मिल जाती है।

हरियाणा में यह दिल्ली के दक्षिणी इलाकों में बोली जाती है- फरीदाबाद जिला और गुड़गाँव और मेवात जिलों के पूर्वी भाग।

विकास यात्रा

इसका विकास मुख्यत: पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उससे लगते राजस्थान व मध्य प्रदेश में हुआ। मथुरा, भरतपुर, हिण्डौन सिटी, धौलपुर, आगरा, ग्वालियर आदि इलाकों में आज भी यह मुख्य संवाद की भाषा है। इस एक पूरे इलाके में बृजभाषा या तो मूल रूप में या हल्के से परिवर्तन के साथ विद्यमान है। इसीलिये इस इलाके के एक बड़े भाग को बृजांचल या बृजभूमि भी कहा जाता है।

भारतीय आर्यभाषाओं की परंपरा में विकसित होनेवाली 'ब्रजभाषा' शौरसैनी अपभ्रंश की कोख से जन्मी है। जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केंद्र बना, ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। इसी के प्रभाव से ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि महात्मा सूरदास से लेकर आधुनिक काल के विख्यात कवि श्री वियोगी हरि तक ब्रजभाषा में प्रबंध काव्य तथा मुक्तक काव्य समय समय पर रचे जाते रहे।

स्वरूप

जनपदीय जीवन के प्रभाव से ब्रजभाषा के कई रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु थोड़े से अंतर के साथ उनमें एकरूपता की स्पष्ट झलक हमें देखने को मिलती है।

ब्रजभाषा की अपनी रूपगत प्रकृति औकारांत है अर्थात् इसकी एकवचनीय पुंलिंग संज्ञाएँ तथा विशेषण प्रायः औकारांत होते हैं, जैसे खुरपौ, यामरौ, माँझौ आदि संज्ञा शब्द औकारांत हैं। इसी प्रकार कारौ, गोरौ, साँवरौ आदि विशेषण पद औकारांत है। क्रिया का सामान्य भूतकालिक एकवचन पुंलिंग रूप भी ब्रजभाषा में प्रमुखरूपेण औकारांत ही रहता है। यह बात अलग है कि उसके कुछ क्षेत्रों में 'Õ' श्रुति का आगम भी पाया जाता है। जिला अलीगढ़ की तहसील कोल की बोली में सामान्य भूतकालीन रूप 'Õ' श्रुति से रहित मिलता है, लेकिन जिला मथुरा तथा दक्षिणी बुलंदशहर की तहसीलों में 'Õ' श्रुति अवश्य पाई जाती है। जैसे –

'कारौ छोरा बोलौ' -(कोल, जिला अलीगढ़)।

'कारौ छोरा बोल्यौ' -(माट जिला मथुरा)।

'कारौ लौंडा बोल्यौ' -(बरन, जिला बुलंदशहर)।

कन्नौजी की अपनी प्रकृति ओकारांत है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूपों में ब्रजभाषा जहाँ औकारांतता लेकर चलती है वहाँ कन्नौजी ओकारांतता का अनुसरण करती है। जिला अलीगढ़ की जलपदीय ब्रजभाषा में यदि हम कहें कि– 'कारौ छोरा बोलौ' (= काला लड़का बोला) तो इसे ही कन्नौजी में कहेंगे कि–'कारो लरिका बोलो। भविष्यत्कालीन क्रिया कन्नौजी में तिङंतरूपिणी होती है, लेकिन ब्रजभाषा में वह कृदंतरूपिणी पाई जाती है। यदि हम 'लड़का जाएगा' और 'लड़की जाएगी' वाक्यों को कन्नौजी तथा ब्रजभाषा में रूपांतरित करके बोलें तो निम्नांकित रूप प्रदान करेंगे –

कन्नौजी में - (1) लरिका जइहै। (2) बिटिया जइहै।

ब्रजभाषा में - (1) छोरा जाइगौ। (2) छोरी जाइगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के सामान्य भविष्यत् काल रूप में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार परिवर्तित होती है, जब कि कन्नौजी में एक रूप रहती है।

इसके अतिरिक्त कन्नौजी में अवधी की भाँति विवृति की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जिसका ब्रजभाषा में अभाव है। कन्नौजी के संज्ञा, सर्वनाम आदि वाक्यपदों में संधिराहित्य प्रायः मिलता है, किंतु ब्रजभाषा में वे पद संधिगत अवस्था में मिलते हैं। उदाहरण –

(1) कन्नौजी –'बउ गओ' (= वह गया)।

(2) ब्रजभाषा –'बो गयौ' (= वह गया)।

उपर्युक्त वाक्यों के सर्वनाम पद 'बउ' तथा 'बो' में संधिराहित्य तथा संधि की अवस्थाएँ दोनों भाषाओं की प्रकृतियों को स्पष्ट करती हैं।

क्षेत्र विभाजन

ब्रजभाषा क्षेत्र की भाषागत विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए हम उसका विभाजन निम्नांकित रूप में कर सकते हैं –

(1) केंद्रीय ब्रज अर्थात् आदर्श ब्रजभाषा - अलीगढ़, मथुरा तथा पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा को 'आदर्श ब्रजभाषा' नाम दिया जा सकता है।

(2) बुदेली प्रभावित ब्रजभाषा - ग्वालियर के उत्तर पश्चिम में बोली जानेवाली भाषा को यह नाम प्रदान किया जा सकता है।

(3) राजस्थान की जयपुरी से प्रभावित ब्रजभाषा - यह भरतपुर तथा उसके दक्षिणी भाग में बोली जाती है।

(4) सिकरवाड़ी ब्रजभाषा - ब्रजभाषा का यह रूप ग्वालियर के उत्तर पूर्व के अंचल में प्रचलित है जहाँ सिकरवाड़ राजपूतों की बस्तियाँ पाई जाती हैं।

(5) जादोबाटी ब्रजभाषा - करौली के क्षेत्र तथा चंबल नदी के मैदान में बोली जानेवाली ब्रजभाषा को 'जादौबारी' नाम से पुकारा गया है। यहाँ जादौ (यादव) राजपूतों की बस्तियाँ हैं।

(6) कन्नौजी से प्रभावित ब्रजभाषा - जिला एटा तथा तहसील अनूपशहर एवं अतरौली की भाषा कन्नौजी से प्रभावित है।

ब्रजभाषी क्षेत्र की जनपदीय ब्रजभाषा का रूप पश्चिम से पूर्व की ओर कैसा होता चला गया है, इसके लिए निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

जिला गुड़गाँवा में – 'तमासो देखने कू गए। आपस् मैं झग्रो हो रह्यौ हो। तब गानो बंद हो गयो।'

जिला बुलंदशहर में –'लौंडा गॉम् कू आयौ और बहू सू बोल्यौ कै मैं नौक्री कू जाङ्गौ।'

जिला अलीगढ़ में – 'छोरा गाँम् कूँ आयौ औरु बऊ ते बोलौ (बोल्यौ) कै मैं नौक्री कूँ जाङ्गो।'

जिला एटा में – 'छोरा गॉम् कूँ आओ और बऊ ते बोलो कै मैं नौक्री कूँ जाउँगो।'

इसी प्रकार उत्तर से दक्षिण की ओर का परिवर्तन द्रष्टव्य है–

जिला अलीगढ़ में –'गु छोरा मेरे घ ंते चलौ गयौ।'

जिला मथुरा में –'बु छोरा मेरे घ ंतैं चल्यौ गयौ।'

जिला आगरा में –'मुक्तौ रुपइया अप्नी बइयरि कूँ भेजि दयौ।'

ग्वालियर (पश्चिमी भाग) में – 'बानैं एक् बोकरा पाल लओ। तब बौ आनंद सै रैबे लगो।'

हरियाणवी

हरियाणवी उत्तर भारत में बोली जाने वाली भाषाओं का एक समूह है।, इसे भाषा नहीं कहा जा सकता...वैसे तो हरियाणवी में कई लहजे हैं साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में बोलियों की भिन्नता है। उत्तर हरियाणा में बोली जाने वाली हरियाणवी थोड़ा सरल होती है तथा हिन्दी भाषी व्यक्ति इसे थोड़ा बहुत समझ सकते हैं। दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली बोली को ठेठ हरियाणवी कहा जाता है। यह कई बार उत्तर हरियाणा वालों को भी समझ में नहीं आती।

इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में हरियाणवी भाषा समूह के कई रूप प्रचलित हैं जैसे बाँगर, राँघड़ी आदि।

हरियाणवी ध्वनिविज्ञान

स्वानिकी

स्वर

हरीयाणी में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ सहित दस स्वर हैं।

व्यंजन

हरियाणवी में 32 व्यंजन हैं। हरियाणवी में व्यंजनक्रम देवनागरी लिपि में ध्वनिक्रम के अनुसार होता है। इसमें वर्गीय व्यंजन और अवर्गीय व्यंजन दोनों मौजुद हैं।

वर्गीय व्यंजन

कवर्ग- क, ख, ग, घ,

चवर्ग- च, छ, ज, झ,

टवर्ग- ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण

तवर्ग- त, थ, द, ध, न

पवर्ग- प, फ, ब, भ, म

अवर्गीय व्यंजन

य, र, ल, घ, व, स, ह

सह-स्वानिकी

हरियाणवी में बड़बड़ाहटी व्यंजन अपने से पहले व्यंजन यानी सघोष व्यंजन में बदल जाते हैं। जैसे– 'भित्तर' को 'बित्तर' बोला जाता है, 'झंडा' को 'जंडा', 'घर' को 'गर' और 'ढक्कण' को 'डक्कण' एवं 'धरम' को 'दरम' आदि।

हरियाणवी भारत के हरियाणा प्रान्त में बोली जाने वाली हिन्दी की बोली (उपभाषा) है।

वैसे तो हरियाणवी में कई लहजे हैं साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में बोलियों की भिन्नता है। लेकिन मोटे रुप से इसको दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक उत्तर हरियाणा में बोली जाने वाली तथा दूसरी दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली।

उत्तर हरियाणा में बोली जाने वाली हरियाणवी थोड़ा सरल होती है तथा हिन्दी भाषी व्यक्ति इसे थोड़ा बहुत समझ सकते हैं। दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली बोली को ठेठ हरियाणवी कहा जाता है। यह कई बार उत्तर हरियाणा वालों को भी समझ में नहीं आती।

इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में हरियाणवी के कई रुप प्रचलित हैं जैसे बाँगर, राँघड़ी आदि।

बुंदेली भाषा

बुंदेलखंड के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली बोली बुंदेली है। यह कहना बहुत कठिन है कि बुंदेली कितनी पुरानी बोली हैं, लेकिन ठेठ बुंदेली के शब्द

अनूठे हैं, जो सादियों से आज तक प्रयोग में हैं। केवल संस्कृत या हिंदी पढ़ने वालों को उनके अर्थ समझना कठिन हैं। ऐसे सैकड़ों शब्द जो बुंदेली के निजी है, उनके अर्थ केवल हिंदी जानने वाले नहीं बतला सकते किंतु बंगला या मैथिली बोलने वाले आसानी से बता सकते हैं।

प्राचीन काल में बुंदेली में शासकीय पत्र व्यावहार, संदेश, बीजक, राजपत्र, मैत्री संधियों के अभिलेख प्रचुर मात्रा में मिलते है। कहा तो यह भी जाता है कि औरंगजेब और शिवाजी भी क्षेत्र के हिंदू राजाओं से बुंदेली में ही पत्र व्यवहार करते थे। ठेठ बुंदेली का शब्दकोष भी हिंदी से अलग है और माना जाता है कि वह संस्कृत पर आधारित नहीं हैं। एक-एक क्षण के लिए अलग-अलग शब्द हैं। गीतों में प्रकृति के वर्णन के लिए, अकेली संध्या के लिए बुंदेली में इक्कीस शब्द हैं। बुंदेली में वैविध्य है, इसमें बांदा का अक्खड़पन है और नरसिंहपुर की मधुरता भी है।

डॉ. वीरेंद्र वर्मा ने हिंदी भाषा का इतिहास नामक ग्रंथ में लिखा है कि बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। शुद्ध रुप में यह झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रुप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाए जाते हैं। कुछ कुछ बांदा के हिस्से में भी बोली जाती है

बुंदेली का इतिहास

वर्तमान बुंदेलखंड चेदि, दशार्ण एवं कारुष से जुड़ा था। यहां पर अनेक जनजातियां निवास करती थीं। इनमें कोल, निषाद, पुलिंद, किराद, नाग, सभी की अपनी स्वतंत्र भाषाएं थी, जो विचारों अभिव्यक्तियों की माध्यम थीं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में इस बोली का उल्लेख प्राप्त है, शबर, भील, चांडाल, सजर, द्रविड़ोद्भवा, हीना वने वारणम् व विभाषा नाटकम् स्मृतम् से बनाफरी का अभिप्रेत है। संस्कृत भाषा के विद्रोहस्वरुप प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। इनमें देशज शब्दों की बहुलता थी। हेमचंद्र सूरि ने पामरजनों में प्रचलित प्राकृत अपभ्रंश का व्याकरण 10 वीं शती में लिखा. मध्यदेशीय भाषा का विकास इस काल में हो रहा था। हेमचन्द्र के कोश में विंध्येली के अनेक शब्दों के निघंटु प्राप्त हैं।

बारहवीं सदी में दामोदर पंडित ने उक्ति व्यक्ति प्रकरण की रचना की। इसमें पुरानी अवधी तथा शौरसैनी ब्रज के अनेक शब्दों का उल्लेख मिलता है।

इसी काल में अर्थात एक हजार ईस्वी में बुंदेली पूर्व अपभ्रंश के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसमें देशज शब्दों की बहुलता थी। पं. किशोरी लाल वाजपेयी, लिखित हिंदी शब्दानुशासन के अनुसार हिंदी एक स्वतंत्र भाषा है, उसकी प्रकृति संस्कृत तथा अपभ्रंश से भिन्न है। बुंदेली की माता प्राकृत शौरसैनी तथा पिता संस्कृत भाषा है। दोनों भाषाओं में जन्मने के उपरांत भी बुंदेली भाषा की अपनी चाल, अपनी प्रकृति तथा वाक्य विन्यास को अपनी मौलिक शैली है। हिंदी प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत के निकट है।

मध्यदेशीय भाषा का प्रभुत्व अविच्छन्न रुप से ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के सारे काल में और इसके पूर्व कायम रहा। नाथ तथा नाग पंथों के सिद्धों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उसके स्वरुप अलग-अलग जनपदों में भिन्न-भिन्न थे। वह देशज प्रधान लोकभाषा थी। इसके पूर्व भी भवभूति उत्तर रामचरित के ग्रामीणजनों की भाषा विंध्येली प्राचीन बुंदेली ही थी। संभवत: चंदेल नरेश गंडदेव (सन् 940 से 999 ई.) तथा उसके उत्तराधिकारी विद्याधर (999 ई. से 1025 ई.) के काल में बुंदेली के प्रारंभिक रूप में महमूद गजनवी की प्रशंसा की कतिपय पंक्तियां लिखी गई। इसका विकास रासो काव्य धारा के माध्यम से हुआ। जगनिक आल्हाखंड तथा परमाल रासो प्रौढ़ भाषा की रचनाएं हैं। बुंदेली के आदि कवि के रुप में प्राप्त सामग्री के आधार पर जगनिक एवं विष्णुदास सर्वमान्य हैं, जो बुंदेली की समस्त विशेषताओं से मंडित हैं।

बुंदेली के बारे में कहा गया है– बुंदेली बा है जौन में बुंदेलखंड के कवियन ने अपनी कविता लिखी, बारता लिखवे वारन ने वारता (गद्य) लिखी। जा भासा पूरे बुंदेलखंड में एकई रुप में मिलत है। बोली के कई रुप जगा के हिसाब से बदलते जाते हैं। जाई से कही गई है कि कोस-कोस पे बदले पानी, गांव-गांव में बानी. बुंदेलखंड में जा हिसाब से बहुत सी बोली चलन में हैं जैसे डंघाई, चौरासी पवारी आदि।

बुंदेली का स्वरूप

बुंदेलखंड की पाटी पद्धति में सात स्वर तथा 45 व्यंजन हैं। कातन्त्र व्याकरण ने संस्कृत के सरलीकरण प्रक्रिया में सहयोग दिया। बुंदेली पाटी की शुरुआत ओना मासी। मौखिक पाठ से प्रारंभ हुई। विदुर नीति के श्लोक विन्नायके तथा चाणक्य नीति चन्नायके के रुप में याद कराए जाते थे। वणिक प्रिया के गणित के सूत्र रटाए जाते थे। नम: सिद्ध मने ने श्री गणेशाय नम: का स्थान ले

लिया। कायस्थों तथा वैश्यों ने इस भाषा को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान किया, उनकी लिपि मुड़िया निम्न मात्रा विहीन थी। स्वर बैया से अक्षर तथा मात्रा ज्ञान कराया गया। चली चली बिजन वखों आई, कां से आई का का ल्याई ... वाक्य विन्यास मौलिक थे। प्राचीन बुंदेली विंध्येली के कलापी सूत्र काल्पी में प्राप्त हुए हैं।

कन्नौजी भाषा

कन्नौज और उसके आस-पास बोली जाने वाली भाषा को कन्नौजी या कनउजी भाषा कहते हैं। 'कान्यकुब्ज' से 'कन्नौज' शब्द व्युत्पन्न हुआ और कन्नौज के आस-पास की बोली 'कन्नौजी' नाम से अभिहित की गयी। कन्नौज वर्तमान में एक जिला है, जो उत्तर प्रदेश में है। यह भारत का अति प्राचीन, प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगर रहा है। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों रामायण आदि में मिलता है। कन्नौजी का विकास शौरसैनी प्राकृत की भाषा पांचाली प्राकृत से हुआ। इसीलिए आचार्य किशोरीदास बाजपेई ने इसे पांचाली नाम दिया। वस्तुतः पांचाल प्रदेश की मुख्य बोली 'पांचाली' अर्थात् 'कन्नौजी' ही है। यह बोली उत्तर में हरदोई, शाहजहाँपुर और पीलीभीत तक तथा दक्षिण में इटावा, मैनपुरी की भोगाँव, मैनपुरी तथा करहल तहसील, एटा की एटा और अलीगंज तहसील, बदायूँ की बदायूँ तथा दातागंज तहसील, बरेली की बरेली, फरीदपुर तथा नवाबगंज तहसील, पीलीभीत, हरदोई (संडीला तहसील में गोसगंज तक), खेरी की मुहम्मदी तहसील तथा सीतापुर की मिस्रिख तहसील में बोली जाती है। स्पष्ट है कि उत्तर पांचाल के अनेक जनपदों में तथा दक्षिण पांचाल के लगभग समस्त जनपदों में 'कन्नौजी' का ही प्रचार-प्रसार है।

कन्नौजी का क्षेत्र

कन्नौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है, परन्तु भाषा के सम्बंध में यह कहावत बड़ी सटीक है कि-

कोस-कोस पर पानी बदले दुइ-दुइ कोस में बानी।

व्यवहार में देखा जाता है कि एक गाँव की भाषा अपने पड़ोसी गाँव की भाषा से कुछ न कुछ भिन्नता लिए होती है। इसी आधार पर कन्नौजी की उपबोलियों का निर्धारण किया गया है।

कन्नौजी उत्तर प्रदेश के कन्नौज, औरैया, मैनपुरी, इटावा, फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहांपुर, कानपुर, पीलीभीत जिलों के ग्रामीण अंचल में बहुतायत से बोली जाती है। कन्नौजी भाषा कनउजी, पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती हॅ।

कन्नौजी की उप बोलियाँ

कन्नौजी भाषा क्षेत्र में विभिन्न बोलियों का व्यवहार होता है, जिनको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है- मध्य कन्नौजी, तिरहारी, पछरुआ, बंग्रही, शहजहाँपुरिया, पीलीभीती, बदउआँ, अन्तर्वेदी। पहचान की दृष्टि से कन्नौजी ओकारान्त प्रधान बोली है। ब्रजभाषा और कन्नौजी में मूल अन्तर यही है कि कन्नौजी के ओकारान्त और एकारान्त के स्थान पर ब्रजभाषा में 'औकारान्त' और 'ऐकारान्त' क्रियाएँ आती हैं-

गओ - गयौ, खाओ - खायौ चले - चलै, करे - करै

कन्नौजी की ध्वनियाँ

इसकी ध्वनियो में मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है- जाहि, जाइ शब्दारम्भ में ल्ह, र्ह, म्ह् व्यंजन मिलते हैं- ल्हसुन, हँट, महंगाई आदि। अन्त्य अल्पप्राण महाप्राण में बदल जाता है- हाथ त हात। स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है- अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों (मुँह)। 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाता है- यमुना झ जमुना, यश-जस। 'व' के स्थान पर 'ब' का व्यवहार होता है- वर-बर, वकील- बकील। कहीं - कहीं पर 'व' के स्थान पर 'उ' भी प्रयुक्त होता है- अवतार-अउतार। उसमें अवधी की भाँति उकारान्त की प्रवृत्ति भी पाई जाती है- खेत-खेतु, मरत झ मत्तु। कहीं-कहीं 'ख' के स्थान पर 'क' उच्चरित होता है- भीख झ भीक, 'ण' 'ड़' हो जाता है- रावण-रावड़, गण झ गड़। 'स' के स्थान पर 'ह'- मास्टर झ महट्टर, सप्ताह झ हप्ताह। उपेक्षाभाव से उच्चरित संज्ञा शब्दों में 'टा' प्रत्यय का योग विशेष उल्लेखनीय है- बनियाँ-बनेटा, किसान-किसन्टा, काछी-कछेटा, बच्चा- बच्चटा अदि।

कन्नौजी का व्याकरण

कन्नौजी के स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है- अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों आदि। 'ऐ' और 'औ' स्वर संयुक्त

स्वर 'अइ' और 'अउ' के रूप में प्रयुक्त होते हैं- गैया झ गइया, ऐनक झ अइनक, औकात झ अउकात। कन्नॉजी के स्त्रीलिंग प्रत्यय- ई, न, नी, इया हैं। घोड़ी, धोबिन, मास्टरनी, जाटिन, कुतरिया। इसके क्रिया रूप इस प्रकार हैं- वर्तमान निश्चयार्थ रूप-

पुरुष एक वचन बहु वचन
उत्तम पुरुष चलौ चलउँ
मध्यम पुरुष उदाहरण उदाहरण
अन्य पुरुष उदाहरण उदाहरण
पुरुष एक वचन बहु वचन
उत्तम पुरुष चलौ, चलउँ चलैं, चलइँ
मध्यम पुरुष चलैं, चलइ चलौ, चलउ
अन्य पुरुष चलै, चलइ चलैं, चलइँ
भविष्य निश्चयार्थ-
उत्तम पुरुष चलिहौंध्चलिहउँ चलिहैंध्चलिहइँ
मध्यम पुरुष चलिहैध्चलिहइ चलिहौध्चलिहउ
अन्य पुरुष चलिहैध्चलिहइ चलिहैंध्चलिहइँ
आज्ञार्थ-
मध्यम पुरुष चल/चलु चलौ/चलउ
अन्य पुरुष चलै/चलइ चलइँ/
इसकी सहायता एवं अस्तित्त्ववाचक क्रिया के रूप हैं-
वर्तमान काल में- हूँ, हो, हैगो, हइँ, हैंगे।
भूतकाल में- हतो, रहो आदि।
भविष्यत काल में- हुइहो, हैहूँ, हुइहइ आदि।
वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय-
त, तु (खात, खातु), भूतकालिक ओ (गओ),
क्रियार्थक संज्ञा- न, नु, नो, बो (चलन, चलनु, चलनो, चलिबो),
पूर्वकालिक- के, इके (उठके, उठिके है।)

आज्ञासूचक क्रियापद प्रायः 'उ' के संयोग से निर्मित होते हैं- चलउ, गाबउ।

परामर्श बोधक शब्द 'अउ' व 'अइँ' के संयोग से बनते हैं- चलिअइ, चलअइँ, गइअउ, गइअइँ।

कुछ विशिष्ट क्रिया विशेषण- चट्ट सइ, गम्म दइ, भट्ट सइ, छल्ल सइ, झट्ट सइ, गप्प सइ, टन्न सइ आदि।

अवधी

अवधी हिंदी क्षेत्र की एक उपभाषा है। यह उत्तर प्रदेश में 'अवध क्षेत्र' (लखनऊ, सुल्तानपुर, बाराबंकी, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर, फैजाबाद, प्रतापगढ़) तथा फतेहपुर, मिरजापुर, जौनपुर आदि कुछ अन्य जिलों में भी बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखंड में बघेली नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति 'अयोध्या' से है। इस नाम का एक सूबा मुगलों के राज्यकाल में था। तुलसीदास ने अपने 'मानस' में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा है। इसी क्षेत्र का पुराना नाम 'कोसल' भी था जिसकी महत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है।

भाषा शास्त्री डॉ. सर 'जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन' के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार अवधी बोलने वालों की कुल आबादी 1615458 थी जो सन् 1971 की जनगणना में 28399552 हो गई। मौजूदा समय में शोधकर्ताओं का अनुमान है कि 6 करोड़ से ज्यादा लोग अवधी बोलते हैं। उत्तर प्रदेश के 19 जिलों- सुल्तानपुर, अमेठी, बाराबंकी, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, कौशांबी, फतेहपुर, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, गोंडा, फैजाबाद व अंबेडकर नगर में पूरी तरह से यह बोली जाती है। जबकि 6 जिलों- जौनपुर, मिर्जापुर, कानपुर, शाहजहांबाद, बस्ती और बांदा के कुछ क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता है। बिहार के 2 जिलों के साथ पड़ोसी देश नेपाल के 8 जिलों में यह प्रचलित है। इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों- मॉरीशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

गठन की दृष्टि से हिंदी क्षेत्र की उपभाषाओं को दो वर्गों-पश्चिमी और पूर्वी में विभाजित किया जाता है। अवधी पूर्वी के अंतर्गत है। पूर्वी की दूसरी उपभाषा छत्तीसगढ़ी है। अवधी को कभी-कभी बैसवाड़ी भी कहते हैं। परंतु बैसवाड़ी अवधी की एक बोली मात्र है, जो उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली और फतेहपुर जिले के कुछ भागों में बोली जाती है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस एवं मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत सहित कई प्रमुख ग्रंथ इसी बोली की देन है। इसका केन्द्र अयोध्या है। अयोध्या

लखनऊ से 120 किमी की दूरी पर पूर्व में है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राममनोहर लोहिया, कुंवर नारायण की यह जन्मभूमि है। उमराव जान, आचार्य नरेन्द्र देव और राम प्रकाश द्विवेदी की कर्मभूमि भी यही है। रमई काका की लोकवाणी भी इसी भाषा में गुंजरित हुई। हिंदी के रीतिकालीन कवि द्विजदेव के वंशज अयोध्या का राजपरिवार है। इसी परिवार की एक कन्या का विवाह दक्षिण कोरिया के राजघराने में अरसा पहले हुआ था। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने अवधी भाषा और व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। फाह्यान ने भी अपने विवरण में अयोध्या का जिक्र किया है। आज की अवधी प्रवास और संस्कृतिकरण के चलते खड़ी बोली और अंग्रेजी के प्रभाव में आ रही है।

अवधी के पश्चिम में पश्चिमी वर्ग की बुंदेली और ब्रज का, दक्षिण में छत्तीसगढ़ी का और पूर्व में भोजपुरी बोली का क्षेत्र है। इसके उत्तर में नेपाल की तराई है जिसमें था डिग्री आदि आदिवासियों की बस्तियाँ हैं जिनकी भाषा अवधी से बिलकुल अलग है।

व्याकरण

हिंदी खड़ीबोली से अवधी की विभिन्नता मुख्य रूप से व्याकरणात्मक है। इसमें कर्ता कारक के परसर्ग (विभक्ति) 'ने' का नितांत अभाव है। अन्य परसर्गों के प्रायः दो रूप मिलते हैं–ह्रस्व और दीर्घ। (कर्म–संप्रदान–संबंध–क, काय करण–अपादान–स–त, से–तेय अधिकरण–म, मा)।

संज्ञाओं की खड़ीबोली की तरह दो विभक्तियाँ होती हैं– विकारी और अविकारी। अविकारी विभक्ति में संज्ञा का मूल रूप (राम, लरिका, बिटिया, मेहरारू) रहता है और विकारी में बहुवचन के लिए 'न' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है (यथा रामन, लरिकन, बिटियन, मेहरारुन)। कर्ता और कर्म के अविकारी रूप में व्यंजनान्त संज्ञाओं के अंत में कुछ बोलियों में एक ह्रस्व 'उ' की श्रुति होती है (यथा रामु, पूतु, चोरु)। किंतु निश्चय ही यह पूर्ण स्वर नहीं है और भाषाविज्ञानी इसे फुसफुसाहट के स्वर–ह्रस्व 'इ' और]स्व 'ए' (यथा सांझि, खानि, ठेलुआ, पेहंटा) मिलते हैं।

संज्ञाओं के बहुधा दो रूप, ह्रस्व और दीर्घ (यथा नद्दी नदिया, घोड़ा घोड़वा, नाऊ नउआ, कुत्ता कुतवा) मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अवधी क्षेत्र के पूर्वी भाग में एक और रूप–दीर्घतर मिलता है (यथा कुतउना)। अवधी में

कहीं-कहीं खड़ीबोली का ह्रस्व रूप बिलकुल लुप्त हो गया है, यथा बिल्ली, डिब्बी आदि रूप नहीं मिलते बेलइया, डेबिया आदि ही प्रचलित हैं।

सर्वनाम में खड़ीबोली और ब्रज के 'मेरा तेरा' और 'मेरो तेरो' रूप के लिए अवधी में 'मोर तोर' रूप हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी अवधी में पश्चिमी अवधी के 'सो' 'जो' 'को' के समानांतर 'से' 'जे' 'के' रूप प्राप्त हैं।

क्रिया में भविष्यत्काल के रूपों की प्रक्रिया खड़ीबोली से बिलकुल भिन्न है। खड़ीबोली में प्रायः प्राचीन वर्तमान (लट्) के तद्भव रूपों में- गा-गी-गे जोड़कर (यथा होगा, होगी, होंगे आदि) रूप बनाए जाते हैं। ब्रज में भविष्यत् के रूप प्राचीन भविष्यत्काल (लट्) के रूपों पर आधारित हैं। (यथा होइहैंउ भविष्यति, होइहोंउ भविष्यामि)। अवधी में प्रायः भविष्यत् के रूप तव्यत् प्रत्ययांत प्राचीन रूपों पर आश्रित हैं (होइबाउ भवितव्यम)। अवधी की पश्चिमी बोलियों में केवल उत्तमपुरुष बहुवचन के रूप तव्यतांत रूपों पर निर्भर हैं। शेष ब्रज की तरह प्राचीन भविष्यत् पर। किंतु मध्यवर्ती और पूर्वी बोलियों में क्रमशः तव्यतांत रूपों की प्रचुरता बढ़ती गई है। क्रियार्थक संज्ञा के लिए खड़ीबोली में 'ना' प्रत्यय है (यथा होना, करना, चलना) और ब्रज में 'नो' (यथा होनो, करनो, चलनो)। परंतु अवधी में इसके लिए 'ब' प्रत्यय है (यथा होब, करब, चलब)। अवधी में निष्ठा एकवचन के रूप का 'वा' में अंत होता है (यथा भवा, गवा, खावा)। भोजपुरी में इसके स्थान पर 'ल' में अंत होनेवाले रूप मिलते हैं (यथा भइल, गइल)। अवधी का एक मुख्य भेदक लक्षण है अन्यपुरुष एकवचन की सकर्मक क्रिया के भूतकाल का रूप (यथा करिसि, खाइसि, मारिसि)। अवधी की सहायक क्रिया में रूप 'ह' (यथा हइ, हइं), 'अह' (अहइ, अइई) और 'बाटइ' (यथा बाटइ, बाटइं) पर आधारित हैं।

ऊपर लिखे लक्षणों के अनुसार अवधी की बोलियों के तीन वर्ग माने गए हैं-पश्चिमी, मध्यवर्ती और पूर्वी। पश्चिमी बोली पर निकटता के कारण ब्रज का और पूर्वी पर भोजपुरी का प्रभाव है। इनके अतिरिक्त बघेली बोली का अपना अलग अस्तित्त्व है।

विकास की दृष्टि से अवधी का स्थान ब्रज, कन्नौजी और भोजपुरी के बीच में पड़ता है। ब्रज की व्युत्पत्ति निश्चय ही शौरसैनी से तथा भोजपुरी की मागधी प्राकृत से हुई है। अवधी की स्थिति इन दोनों के बीच में होने के कारण इसका अर्धमागधी से निकलना मानना उचित होगा। खेद है कि अर्धमागधी का हमें जे प्राचीनतम रूप मिलता है वह पाँचवीं शताब्दी ईसवी का है और उससे

अवधी के रूप निकालने में कठिनाई होती है। पालि भाषा में बहुधा ऐसे रूप मिलते हैं जिनसे अवधी के रूपों का विकास सिद्ध किया जा सकता है। संभवत: ये रूप प्राचीन अर्धमागधी के रहे होंगे।

अवधी साहित्य

प्राचीन अवधी साहित्य की दो शाखाएँ हैं–एक भक्तिकाव्य और दूसरी प्रेमाख्यान काव्य। भक्तिकाव्य में गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' (सं. 1631) अवधी साहित्य की प्रमुख कृति है। इसकी भाषा संस्कृत शब्दावली से भरी है। 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त तुलसीदास ने अन्य कई ग्रंथ अवधी में लिखे हैं। इसी भक्ति साहित्य के अंतर्गत लालदास का 'अवधबिलास' आता है। इसकी रचना संवत् 1700 में हुई। इनके अतिरिक्त कई और भक्त कवियों ने रामभक्ति विषयक ग्रंथ लिखे।

संत कवियों में बाबा मलूकदास भी अवधी क्षेत्र के थे। इनकी बानी का अधिकांश अवधी में है। इनके शिष्य बाबा मथुरादास की बानी भी अधिकतर अवधी में है। बाबा धरनीदास यद्यपि छपरा जिले के थे तथापि उनकी बानी अवधी में प्रकाशित हुई। कई अन्य संत कवियों ने भी अपने उपदेश के लिए अवधी को अपनाया है।

प्रेमाख्यान काव्य में सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' है जिसकी रचना 'रामचरितमानस' से 34 वर्ष पूर्व हुई। दोहे चौपाई का जो क्रम 'पद्मावत' में है प्राय: वही 'मानस' में मिलता है। प्रेमाख्यान काव्य में मुसलमान लेखकों ने सूफी मत का रहस्य प्रकट किया है। इस काव्य की परंपरा कई सौ वर्षों तक चलती रही। मंझन की 'मधुमालती', उसमान की 'चित्रवली', आलम की 'माधवानल कामकंदला', नूरमुहम्मद की 'इंद्रावती' और शेख निसार की 'यूसुफ जुलेखा' इसी परंपरा की रचनाएँ हैं। शब्दावली की दृष्टि से ये रचनाएँ हिंदू कवियों के ग्रंथों से इस बात में भिन्न हैं कि इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की उतनी प्रचुरता नहीं है।

प्राचीन अवधी साहित्य में अधिकतर रचनाएँ देशप्रेम, समाज सुधार आदि विषयों पर और मुख्य रूप से व्यंग्यात्मक हैं। कवियों में प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल, चंद्रभूषण द्विवेदी 'रमई काका', गुरु प्रसाद सिंह 'मृगेश' और शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रबंध की परंपरा में 'रामचरितमानस' के ढंग का एक महत्वपूर्ण आधुनिक ग्रंथ द्वारिका प्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' है। इसकी भाषा और शैली 'मानस' के ही समान है और ग्रंथकार ने कृष्णचरित प्रायः उसी तन्मयता और विस्तार से लिखा है जिस तन्मयता और विस्तार से तुलसीदास ने रामचरित अंकित किया है। मिश्र जी ने इस ग्रंथ की रचना द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि प्रबंध के लिए अवधी की प्रकृति आज भी वैसी ही उपादेय है जैसी तुलसीदास के समय में थी।

बघेली

बघेली या बाघेली, हिन्दी की एक बोली है, जो भारत के बघेलखण्ड क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, एवं अनूपपुर में, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों में तथा चत्तगढ़ के बिलासपुर एवं कोरिया जनपदों में बोली जाती है। इसे 'बघेलखण्डी', 'रिमही' और 'रिवई' भी कहा जाता है।

छत्तीसगढ़ी भाषा

छत्तीसगढ़ी भारत में छत्तीसगढ़ प्रांत में बोली जाने वाली एक भाषा है। यह हिंदी के काफी निकट है और इसकी लिपि देवनागरी है। इसका अपना समृद्ध साहित्य है।

छत्तीसगढ़ी 2 करोड़ लोगों की मातृभाषा है। यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है और छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख भाषा है। राज्य की 82.56 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में केवल 17 प्रतिशत लोग रहते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि छत्तीसगढ़ का अधिकतर जीवन छत्तीसगढ़ी के सहारे गतिमान है। यह अलग बात है कि गिने-चुने शहरों के कार्य-व्यापार राष्ट्रभाषा हिन्दी व उर्दू, पंजाबी, उड़िया, मराठी, गुजराती, बाँग्ला, तेलुगू, सिन्धी आदि भाषा में एवं आदिवासी क्षेत्रों में हलबी, भतरी, मुरिया, माडिया, पहाड़ी कोरवा, उराँव आदि बोलियो के सहारे ही संपर्क होता है। इस सबके बावजूद छत्तीसगढ़ी ही ऐसी भाषा है, जो समूचे राज्य में बोली, व समझी जाती है। एक तरह से यह छत्तीसगढ़ राज्य की संपर्क भाषा है। वस्तुतः छत्तीसगढ़ राज्य के नामकरण के पीछे उसकी भाषिक विशेषता भी है।

छत्तीसगढ़ी की प्राचीनता

सन् 875 ईस्वी में बिलासपुर जिले के रतनपुर में चेदिवंशीय राजा कल्लोल का राज्य था। तत्पश्चात एक सहस्त्र वर्ष तक यहाँ हैहयवंशी नरेशों का राजकाज आरंभ हुआ। कनिंघम (1885) के अनुसार उस समय का "दक्षिण कोसल" ही "महाकोसल" था और यही "बृहत् छत्तीसगढ़" था, जिस में उडीसा, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के कुछ जिले, अर्थात् सुन्दरगढ़, संबलपुर, बलाँगीर, बौदफुलवनी, कालाहाँड़ी, कोरापुट, भंडारा, चंद्रपुर, शहडोल, मंडला, बालाघाट शामिल थे। हैहयवंशियों ने इस अंचल में अर्धमागधी से विकसित बोली का प्रचार कार्य प्रारंभ किया जो यहाँ कि पूर्ववर्ती स्थानीय द्रविड आदि बोलियों पर राजकीय प्रभुत्व वाली सिद्ध हुई। इससे वे बोलियाँ बिखर कर पहाड़ी एवं वन्यांचलों में सिमट कर रह गई और इन्हीं क्षेत्रों में छत्तीसगढ़ी का प्राचीन रूप स्थिर होने लगा। छत्तीसगढ़ी के प्रारंभिक लिखित रूप के बारे में कहा जाता है कि वह 1703 ईस्वी के दंतेवाडा के दंतेश्वरी मंदिर के मैथिल पंडित भगवान मिश्र द्वारा शिलालेख में है।

छत्तीसगढ़ी साहित्य

श्री प्यारेलाल गुप्त अपनी पुस्तक 'प्राचीन छत्तीसगढ़' में बड़े ही रोचकता से लिखते हैं – 'छत्तीसगढ़ी भाषा अर्धभागधी की दुहिता एवं अवधी की सहोदरा है ' (पृ 21 प्रकाशक रविशंकर विश्वविद्यालय, 1973)। 'छत्तीसगढ़ी और अवधी दोनों का जन्म अर्धमागधी के गर्भ से आज से लगभग 1080 वर्ष पूर्व नवीं-दसवीं शताब्दी में हुआ था।'

डॉ. भोलानाथ तिबारी, अपनी पुस्तक ' हिन्दी भाषा' में लिखते है – ' छत्तीसगढ़ी भाषा भाषियों की संख्या अवधी की अपेक्षा कहीं अधिक है और इससे यह बोली के स्तर के ऊपर उठकर भाषा का स्वरुप प्राप्त करती है।'

भाषा साहित्य पर और साहित्य भाषा पर अवलंबित होते है। इसीलिये भाषा और साहित्य साथ-साथ पनपते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि छत्तीसगढ़ी लिखित साहित्य के विकास अतीत में स्पष्ट रुप में नहीं हुई है। अनेक लेखकों का मत है कि इसका कारण यह है कि अतीत में यहाँ के लेखकों ने संस्कृत भाषा को लेखन का माध्यम बनाया और छत्तीसगढ़ी के प्रति जरा उदासीन रहे।

इसीलिए छत्तीसगढ़ी भाषा में जो साहित्य रचा गया, वह करीब एक हजार साल से हुआ है। अनेक साहित्यको ने इस एक हजार वर्ष को इस प्रकार विभाजित किया है –

(1) गाथा युग (सन् 1000 से 1500 ई. तक)

(2) भक्ति युग - मध्य काल (सन् 1500 से 1900 ई. तक)

(3) आधुनिक युग (सन् 1900 से आज तक)।

ये विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार किया गया है। यद्यपि प्यारेलाल गुप्त जी का कहना ठीक है कि - ' साहित्य का प्रवाह अखण्डित और अव्याहृत होता है।' श्री प्यारेलाल गुप्त जी ने बड़े सुन्दर अन्दाज से आगे कहते है - 'तथापि विशिष्ट युग की प्रवृत्तियाँ साहित्य के वक्ष पर अपने चरण-चिह्न भी छोड़ती है–प्रवृत्यानुरुप नामकरण को देखकर यह नहीं सोचना चाहिए कि किसी युग में किसी विशिष्ट प्रवृत्तियों से युक्त साहित्य की रचना ही की जाती थी। तथा अन्य प्रकार की रचनाओं की उस युग में एकान्त अभाव था।'

यह विभाजन किसी प्रवृत्ति की सापेक्षिक अधिकता को देखकर किया गया है।

एक और उल्लेखनीय बत यह है कि दूसरे आर्यभाषाओं के जैसे छत्तीसगढ़ी में भी मध्ययुग तक सिर्फ पद्यात्मक रचनाएँ हुई है।

मारवाड़ी भाषा

मारवाड़ी राजस्थान में बोली जाने वाली एक क्षेत्रीय भाषा है। यह राजस्थान की एक मुख्य भाषा है। इसकी लिपि देवनागरी है। इसकी कई उप बोलियां भी है।

राजस्थानी - राजस्थान की मुख्य भाषा राजस्थानी है इसकि खुद की लिपि जिसे मोड़िया लिपि भी हैं। परन्तु इस लिपि के विकास में राजपुताने राजस्थान के राजा-महाराजा (वर्तमान में राजस्थान राज्य) व राजस्थान सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। पिछले 40-50 सालों से इस भाषा के विकास पर बातें तो बहुत होती रही है पर कार्य के मामले में कोई विशेष प्रगति नहीं दिखी। इन दिनों सन् 2011 से कोलकाता के श्री शम्भु चौधरी इस दिशा में काफी कार्य किया है। राजस्थानी भाषा कि लिपि के संदर्भ में यह गलत प्रचार किया जाता रहा कि इसकी लिपि देवनागरी है जबकि राजस्थान के पुराने दस्तावेजों से पता चलता है कि इसकी लिपि मोड़िया है। उस लिपि को महाजनी भी कहा जाता

है। हांलाकि मोड़िया लिपि को भी महाजनी लिपि कहा जाता है। कुछ लोग मोड़ी लिपि को ही मोड़िया लिपि मानते रहे। जब इसके विस्तार में देखा गया तो दोनों लिपि में काफी अन्तर है। आगे विस्तार से इस बात पर चर्चा करेंगें।

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों के पारस्परिक संयोग एवं सम्बन्धों के विषय में लिखा तथा वर्गीकरण किया है। ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है – 1. पश्चिमी राजस्थान में बोली जाने वाली बोलियाँ - मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढारकी, बीकानेरी, बाँगड़ी, शेखावटी, खेराड़ी, मोड़वाडी, देवड़ावाटी आदि। 2. उत्तर-पूर्वी राजस्थानी बोलियाँ - अहीरवाटी और मेवाती। 3. मध्य-पूर्वी राजस्थानी बोलियाँ - ढूँढाड़ी, तोरावाटी, जैपुरी, काटेड़ा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़, नागर चोल, हड़ौती। 4. दक्षिण-पूर्वी राजस्थान - रांगड़ी और सोंधवाड़ी 5. दक्षिण राजस्थानी बोलियाँ - निमाड़ी आदि।

मालवी भाषा

भारत के पश्चिम मध्यप्रदेश में विन्ध्य की तलहटी में जो पठार है उसे कम से कम दो हजार वर्षों से मालव (मालवा) कहा जा रहा है।

यहां के लोग भाषा और पोषाक से कहीं भी पहचान में आते रहे। मौसम की यहां सदा कृपा रही है।

इसीलिए सदा सुकाल के सुरक्षित क्षेत्र के रूप में इसकी सर्वत्र मान्यता रही है।

इस मालवा की बोली मालवी कहलाती है। वह पन्द्रह जिलों के प्रायः डेढ़ करोड़ लोगों की भाषा है।

मालवा क्षेत्र की सदा से राजनीतिक पहचान रही है।

भौगोलिक समशीतोष्णता का आकर्षण रहा है।

धार्मिक उदारता, सामाजिक समभाव, आर्थिक निश्चिन्तता, कलात्मक समृद्धि से सम्पन्न विक्रमादित्य, भर्तृहरि, भोज जैसे महानायकों की यह भूमि रही है जहां कालिदास, वराहमिहिर जैसे दैदीप्यमान नक्षत्रों ने साधना की।

मालवा के वसुमित्र ने विदेशी ग्रीकों को, विक्रमादित्य ने शकों तथा प्रकाश धर्मा और यशोधर्मा ने हूणों को पराजित कर स्वतंत्रता संग्राम की परंपरा पुरातनकाल से ही स्थापित कर दी थी।

मालवा का अपना सर्वज्ञात विक्रम संवत् भी है।

यहां भीमबेटका जैसे विश्वविख्यात पुरातत्त्व के स्थान हैं।

उज्जयिनी, विदिशा, महेश्वर, धार, मन्दसौर जैसे यहां पारम्परिक सांस्कृतिक केन्द्र हैं जहां निरन्तर जीवन संस्कार पाता रहा।

यहां की बोली मालवी की चिरकाल से समृद्धि होती रही जो अब क्रमशः उजागर होती जा रही है।

मालवी का लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। लोक नाट्य माच, गीत, कथा वार्ताएँ, पहेलियॉं, कहावतें आदि मालवी की अपनी शक्ति है।

इसकी शब्द सम्पदा अत्यंत समृद्ध है।

इसकी उच्चारण पद्धति नाट्शास्त्र युग से आज तक वैसी ही है।

तुलनात्मक अध्ययन द्वारा मालवी बोली तथा संस्कृति की शक्ति तथा व्यापकता को अभी पूरी तरह प्रकट करने के लिए और प्रयासों की अपेक्षा है।

नई हवा में क्षरण होती मालवी लोक संस्कृति की विभिन्न धाराओं की सुरक्षा के लिए त्वरित उपाय करने होंगे।

इस सबके लिए साहित्य-संस्कृति के समर्पित मर्मज्ञ साधकों के साथ ही राजनीतिक-प्रशासनिक समर्थ सम्बल की भी अत्यंत आवश्यकता है।

मैथिली

मैथिली भारत के बिहार और झारखंड राज्यों और नेपाल के तराई क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है। यह हिन्द आर्य परिवार की सदस्य है। इसका प्रमुख स्रोत संस्कृत भाषा है जिसके शब्द 'तत्सम' वा 'तद्भव' रूप में मैथिली में प्रयुक्त होते हैं। यह भाषा बोलने और सुनने में बहुत ही मोहक लगता है।

मैथिली भारत में मुख्य रूप से दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, समस्तीपुर, मुंगेर, मुजफ्फरपुर, बेगूसराय, पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज, शिवहर, भागलपुर, मधेपुरा, अररिया, सुपौल, वैशाली, सहरसा, रांची, बोकारो, जमशेदपुर, धनबाद और देवघर जिलों में बोली जाती है।

नेपाल के आठ जिलों धनुषा,सिरहा,सुनसरी, सरलाही, सप्तरी, मोहतरी,मोरंग और रौतहट में भी यह बोली जाती है।

बँगला, असमिया और ओड़िया के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति मागधी प्राकृत से हुई है। कुछ अंशों में ये बंगला और कुछ अंशों में हिंदी से मिलती-जुलती है।

वर्ष 2003 में मैथिली भाषा को भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया। सन 2007 में नेपाल के अन्तरिम संविधान में इसे एक क्षेत्रीय भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। भारत के झारखंड राज्य में इसे द्वितीय राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

लिपि

पहले इसे मिथिलाक्षर तथा कैथी लिपि में लिखा जाता था जो बांग्ला और असमिया लिपियों से मिलती थी पर कालान्तर में देवनागरी का प्रयोग होने लगा। मिथिलाक्षर को तिरहुता या वैदेही लिपी के नाम से भी जाना जाता है। यह असमिया, बांगला व उड़िया लिपियों की जननी है। उड़िया लिपी बाद में द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क के कारण परिवर्तित हुई।

विकास

मैथिली का प्रथम प्रमाण रामायण में मिलता है। यह त्रेता युग में मिथिलानरेश राजा जनक की राज्यभाषा थी। इस प्रकार यह इतिहास की प्राचीनतम भाषाओं में से एक मानी जाती है। प्राचीन मैथिली के विकास का शुरूआती दौर प्राकृत और अपभ्रंश के विकास से जोड़ा जाता है। लगभग 700 इस्वी के आस-पास इसमें रचनाएं की जाने लगी। विद्यापति मैथिली के आदिकवि तथा सर्वाधिक ज्ञाता कवि हैं। विद्यापति ने मैथिली के अतिरिक्त संस्कृत तथा अवहट्ट में भी रचनाएं लिखीं। ये वह दो प्रमुख भाषाएं हैं जहाँ से मैथिली का विकास हुआ। भारत की लगभग 5.6 प्रतिशत आबादी लगभग 7-8 करोड़ लोग मैथिली को मातृ-भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं और इसके प्रयोगकर्ता भारत और नेपाल के विभिन्न हिस्सों सहित विश्व के कई देशों में फैले हैं। मैथिली विश्व की सर्वाधिक समृद्ध, शालीन और मिठास पूर्ण भाषाओं में से एक मानी जाती है। मैथिली भारत में एक राजभाषा के रूप में सम्मानित है। मैथिली की अपनी लिपि है, जो एक समृद्ध भाषा की प्रथम पहचान है। नेपाल हो या भारत कही भी सरकार के द्वारा मैथिली भाषा के विकास हेतु कोई खास कदम नहीं उठाया गया है। अब जा कर गैर सरकारी संस्था और मीडिया द्वारा मैथिली के विकास का थोड़ा प्रयास हो रहा है। अभी 15/20 रेडियो स्टेशन ऐसे है जिसमें मैथिली भाषा में कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। समाचार हो या नाटक कला और अन्तरवार्ता भी मैथिली हो रहा है। किसी किसी रेडिओ में तो

50% से अधिक कार्यक्रम मैथिली में हो रहा है। ये पिछले 2/3 वर्षो से विकास हो रहा है ये सिलसिला जारी है। टीवी में भी अब मैथिली में खबर दिखाती है। नेपाल में कुछ चौनल है जैसे नेपाल 1, सागरमाथा चौनल, तराई टीवी और मकालू टीवी है।

साहित्य

मैथिली साहित्य का अपना समृद्ध इतिहास रहा है और चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी के कवि विद्यापति को मैथिली साहित्य में सबसे ऊँचा दर्जा प्राप्त है। विद्यापति के बाद के काल में गोविन्द दास, चन्दा झा, मनबोध, पंडित सीताराम झा, जीवनाथ झा (जीवन झा) प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं।

स्थिति

भारत की साहित्य अकादमी द्वारा मैथिली को साहित्यिक भाषा का दर्जा पंडित नेहरू के समय 1965 से हासिल है। 22 दिसंबर 2003 को भारत सरकार द्वारा मैथिली को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया गया है और नेपाल सरकार द्वारा मैथिली को नेपाल में दूसरे स्थान में रखा गया है।

मैथिली मुख्यत: भारत के उत्तर-पूर्व बिहार एवम् नेपाल के तराई क्षेत्र की भाषा है। भारत के सोलह जिलों में (मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर,खगड़िया, कटिहार, अररिया, किशनगंज, सुपौल, मधेपुरा, मुंगेर, भागलपुर, सहरसा, पूर्णिया, सीतामढ़ी और बेगूसराय) और नेपाल के सात जिलों में (धनुषा जिला, महोत्तरी जिला, सिराहा जिला, सर्लाही जिला, सप्तरी जिला, सुनसरी जिला और मोरंग जिला) यह बोली जाती है। इसका क्षेत्र लगभग 30,000 वर्गमील में व्याप्त है। मैथिली भाषा का सांस्कृतिक केंद्र भारत में दरभंगा और नेपाल में जनकपुर है।

बांग्ला भाषा, असमिया और उड़िया के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति मागधी प्राकृत से हुई है। कुछ अंशों में ये बंगला और कुछ अंशों में हिंदी से मिलती जुलती है।

मैथिली लिपि

अन्य स्वतंत्र साहित्यिक भाषाओं की तरह मैथिली की अपनी प्राचीन लिपि है जिसे 'तिरहुता' या मिथिलाक्षर कहते हैं। इसका विकास नवीं शताब्दी ई. में

शुरू हो गया था। आजकल छपी हुई पुस्तकों में अधिकांश देवनागरी का ही प्रयोग होने लगा है।

मैथिली साहित्य का काल विभाजन

मैथिली के साहित्य को तीन कालों में विभक्त किया जाता है –

1. आदिकाल (1000 ई. – 1600 ई.),
2. मध्यकाल (1600 ई. –1860 ई.), और
3. आधुनिक काल (1860 ई. से .....)।

प्रथम काल में गीतिकाव्य, द्वितीय में नाटक और तृतीय में गद्य की प्रधानता रही है।

आदिकाल

मैथिली का सबसे प्राचीन साहित्य बौद्ध तांत्रिकों के अपभ्रंश दोहों और भाषा गीतों में पाया जाता है। इनकी भाषा मिथिला के पूर्वीय भाग की बोली का प्राचीन रूप है तथापि बँगला, उड़िया और असमिया भी अपना आदि–साहित्य इन्हीं को मानती हैं। इसके बाद इसवीं शताब्दी ईसवी के लगभग मिथिला में कार्णाट राजाओं का उदय हुआ। उन्होंने मैथिल संगीत की परंपरा स्थापित की जिसके कारण काणाटिवंश के हरसिंह देव का काल स्वर्णयुग (लगभग 1324 ई.) कहलाया। उनके समकालीन ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णन–रत्नाकर' नामक एक महान गद्यकाव्य मिलता है। इसमें विभिन्न विषयों पर कवियों के उपयोगार्थ उपमाओं और वर्णनों को सजाकर रखा गया है। (हाल ही में उन्हीं का 'धूर्तसमागम' नामक नाटक और मैथिली गीत भी उपलब्ध हुए हैं।)

ज्यातिरीश्वर के उपरांत विद्यापति ठाकुर का युग आता है (1350–1450)। इस युग में मिथिला में ओइनिवार वंश का राज्य था। बंगाल में जयदेव ने जिस कृष्ण प्रेम के संगीत की परंपरा चलाई, उसी में मैथिल कोकिल विद्यापति ने हजारों पदों में अपना सुर मिलाया और उसी के साथ मैथिली काव्यधारा की विशेषत: गीतिकाव्य की एक अनोधी परंपरा चल पड़ी जिसने तीन शताब्दियों तक पूर्वीय भारत में मैथिली का सिक्का जमा दिया।

विद्यापति की प्रसिद्धि बंगाल में, उड़ीसा में और असम में खूब हुई। इन देशों में विद्यापति को वैष्णव माना गया और उनके अनुकरण में अनेक कवियों ने मैथिली में पदावलियाँ रचीं। इस साहित्य की परंपरा आधुनिक काल तक चली

आई है। 20वीं शताब्दी में विश्वकवि रवींद्र ने 'भानुसिंहेर पदावली' के नाम से कई सुंदर ब्रजबुलीद पद लिखे।

विद्यापति की परंपरा मिथिला में भी चली। न केवल इनके राधाकृष्ण संबंधी श्रृंगारिक गीत, किंतु शक्ति और शिव विषयक कविताओं का भी (जिनहें क्रमशः गोसाउनिक गीत और नचारी कहते हैं) लोग अभ्यास करने लगे। विद्यापति के समकालीन कवियों में अमृतकर, चंद्रकला, भानु, दशावधान, विष्णुपुरी, कवि शेखर यशोधर, चतुर्भुज और भीषम कवि उल्लेखनीय हैं। विद्यापति के परवर्ती कवियों में, महाराज कंसनारायण (लगभग 1527 ई0) के दरबार में रहनेवाले कवियों का नाम लिया जाता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध लोकप्रिय कवि गोविंद हुए। ये गोविंददास से भिन्न थे और इनकी पदावली 'कंसनारायण पदावली' में मिलती है। विद्यापति परंपरा के परकालीन कवियों में महिनाथ ठाकुर, लोचन झा, हर्षनाथ झा और चंदा झा के नाम गिनाए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में तीन कवि प्रसिद्ध हुए जिन्होंने विद्यापति के शिव और शक्ति विषयक पदों का विशेष अनुकरण किया। उनके नाम हैं सिंह नरसिंह, भूपतींद्र मल्ल और जगतप्रकाश मल्ल।

मध्य काल

मध्यकाल में मुसलमानों के आक्रमणों के कारण मिथिला में कई वर्षो तक अराजकता रही। ओइनिवार वंश के नष्ट होने के बाद मिथिला के अधिकतर विद्वान कवि और संगीतज्ञ नेपाल के राजदरबारों में संरक्षण के लिये चले गए। वहाँ के मल्ल राजाओं की काव्य और नाटक का बड़ा शौक था। इसलिए मध्ययुगीन मैथिली साहित्य का एक बड़ा अंश नेपाल में ही लिखा गया।

नेपाल में रचित साहित्य में नाट्य साहित्य मुख्य था। पहले संस्कृत के नाटकों में मैथिली गानों का संनिवेश करना आरंभ हुआ। क्रमशः उनमें संस्कृत और प्राकृत का व्यवहार कम होने लगा और मैथिली में ही संपूर्ण नाटक लिखे जाने लगे। अंत में संस्कृत नाटक की भी रूपरेखा छोड़ दी गई और एक अभिनव गीतिनाट्य की परंपरा स्थापित हुई। इनमें संगीत की प्रधानता रहती थी। अधिकांश कथानक संकेत में ही व्यक्त होता था और गद्य का व्यवहार नहीं होता था। राजसभाओं में ही ये नाटक अभिनीत होते थे। रंगमंच खुला रहता था और अभिनय दिन में होता था। कथानक नवीन नहीं हुआ करते थे– बहुधा पुराने पौराणिक आख्यान या नाटक को ही फिर से गीतिनाट्य का रूप देकर अथवा केवल संशोधन करके ही उपस्थित कर देते थे।

नेपाली नाटककारों की कार्यभूमि मुख्यत: तीन स्थानों में रही- भक्तपुर, काठमांडू और पाटन। भक्तपुर में सबसे अधिक नाटक लिखे गए और अभिनीत हुए। मुख्य नाटककार पाँच हुए- जगज्योतिर्मल्ल, जगतप्रकाश मल्ल, जितामित्र मल्ल, भूपतींद्र मल्ल और रणजित मल्ल। इनमें सबसे अधिक नाटक रणजित मल्ल ने लिखे। इनके बनाए 19 नाटकों का पता अब तक लगा है। काठमांडू में सबसे प्रसिद्ध नाटककार वंशमणि झा हुए। पाटन में सबसे बड़े कवि और नाटककार सिद्धिनरसिंह मल्ल (1620-1657) हुए।

नेपाली नाटकों की परम्परा 1768 ईस्वी में नष्ट हो गई जब महाराज पृथ्वीनारायण शाह ने वहाँ के मल्ल राजाओं को हराकर गुरखों का राज्य स्थापित किया।

मध्यकाल-2 (1600-1660)

मैथिली नाटक मिथिला के राजदरबारों में गीतिनाट्य परंपरा बन रही थी जिसको 'कीर्तनिया नाटक' कहते हैं।

कीर्तनिया नाटक का आरम्भ प्राय: शिव या कृष्ण के चरित्र का कीर्तन करने से हुआ। परंतु वे धार्मिक नाटक नहीं होते थे। कीर्तनिया का अभिनय रात को होता था तथा इसका अपना विशेष संगीत हुआ करता था जिसे नादी कहते हैं।

कीर्तनिया नाटकों के आरंभ में भी केवल मैथिली गानों को संस्कृत नाटकों में रखा जाता था। ये गान संस्कृत श्लोकों या वाक्यों का अर्थमात्र ललित भाषा में स्पष्ट करते थे। हाँ, कभी-कभी स्वतंत्र गान का भी उपयोग होता था। क्रमश: लगभग संपूर्ण नाटक मैथिली गानमय होने लगा।

कीर्तनिया नाटककारों को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता हैं-1350-1700 तक, 1700-1900 तक और 1900-1950 तक।

पहले काल में विद्यापति का गोरक्षविजय, गोविंद कवि नलचरितनाट, रामदास का अनंदविजय, देवानन्द का उषाहरण, उमापति का पारिजातहरण और रमापति का रुकमणि परिणय गिने जा सकते हैं। इसमें सबसे लोकप्रिय और प्रसिद्ध उमापति उपाध्याय (18वीं शताब्दी) हुए।

दूसरे काल के मुख्य नाटककार हैं- लाल कवि, नंदीपति, गाकुलानंद, जयानंद कान्हाराम, रत्नपाणि, भानुनाथ और हर्षनाथ। इनमें लाल कवि का गौरी स्वयंवर और हर्षनाथ का उषाहरण तथा माघवानंद अधिक प्रसिद्ध और साहित्यक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

तीसरे काल के लेखक विश्वनाथ झा, 'बालाजी', चंदा झा और राजपंडित बलदेव मिश्र हैं। इनके नाटकों में प्राचीन कवियों के गानों और पदों की ही पुनरुक्ति अधिक हैं, नाटकीय संघर्ष का नितांत अभाव है।

मध्यकाल-3 (1600-1690ई.)

मैथिली नाटक (असम में) सोलहवीं और 17वीं शताब्दी में मैथिली नाटक का एक रूप असम में भी विकसति हुआ, सुखन जिसे अंकिया-नाट कहते हैं। यह उपर्युक्त दोनों नाटकों की परंपराओं से भिन्न प्रकार का हुआ। इसमें लगभग संपूर्ण नाटक गद्यमय ही होता था। सूत्रधार पूरे पूरे नाटक में अभिनय करता था। अभिनय से अधिक वर्णनचमत्कार या पाठ की ओर ध्यान था। इन नाटकों का उद्देश्य मनोविनोद मात्र नहीं था, वरन् वैष्णव धर्म का प्रचार करना था। अधिकतर ये नाटक कृष्ण की वात्सल्यमय लीलाओं का वर्णन करते थे। इनमें एक ही अधिक अंकर नहीं होते थे।

अंकिया नाटककारों में शंकरदेव (1449-1558), माधवदेव और गोपालदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध शंकर देव हुए। इनका रुक्मणीहरण नाटक असम में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं।

मध्यकाल-4 (1600-1890)

गद्य साहित्य- इस काल के प्राचीन दानपत्र एवं पत्रों से मैथिली गद्य के स्वरूप का विकास जाना जा सकता है। इनसे उस समय के दास प्रथा संबंधी विषयों का पूर्ण ज्ञान होता हैं। विद्यापति परंपरा के अतिरिक्त जो गीतिकाव्यकार हुए उनमें भज्जन कवि, लाल कवि, कर्ण श्याम प्रभृति मुख्य हैं। पद्य का एक नया विकास लंबे काव्य, महाकाव्य, चरित और सम्मर के रूप में हुआ इनके लेखकों में कृष्णजन्म कर्ता मनवोध, नंदापति रतिपति और चक्रपाणि उल्लेखनीय हैं।

तीसरी धारा काव्यकर्ताओं की वह हुई जिसमें संतों ने (विशेषकर वैष्णव संतों ने) गीत लिखे। इनमें सबसे प्रसिद्ध साइब रामदास हुए। इनकी 'पदावली' का रचनाकाल 1746 ई. है।

आधुनिक काल

सन् 1860 ई में मिथिला में आधुनिक जीवन का सूत्रपात हुआ। सिपाही विद्रोह से जो अराजकता छा गई थी वह दूर हुई। पश्चिमी शिक्षा का प्रचार होने

लगा, रेल और तार का व्यवहार आरंभ हुआ, स्वायत्त शासन की सुविधा हुई तथा मुद्रणालयों की स्थापना होने लगी। इसी समय कतिपय साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई जो नव जाग्रति के कार्य को पूर्ण करने में संलग्न हुई। फलस्वरूप लोगों की अभिरुचि प्राचीन साहित्य के अन्वेषण और अध्ययन की और गई और नवीन युग के अनुरूप साहित्य की नींव पड़ी।

नवयुग के निर्माण में कवीश्वर चंदा झा (मृत्यु 1907 ई.) का नाम सबसे महत्वपूर्ण है। इनके महाकाव्य 'रामायण' की रचना से मैथिली भाषा का गौरव ऊँचा हुआ।

आधुनिक युग गद्य का युग है। मैथिली समाचारपत्रों ने गद्य के विकास में महत्वपूर्ण सहायता दी। इसीलिये मैथिलहितसाधन, मिथिलामोद, मिथिलामिहिर और मिथिला के नाम मैथिली गद्य के इतिहास में अमर हैं। मैथिली लेखशैली की वैज्ञानिक पद्धति का निर्ण म. भ. डॉ. श्री उमेश मिश्र, रमानाथ झा और वैयाकरणों के द्वारा (विशेषत: दीनबंधु झा द्वारा) हो जाने से आधुनिक गद्य का रूप परिपक्व हो गया है।

किन्तु मैथिली के सर्वांगीण विकास में बाबू भोलालादास का जो योगदान है वह अप्रतिम है। उन्होने न केवल मैथिली को विश्वविद्यालय के अध्यापन क्षेत्र में प्रवेश दिलवाया अपितु मैथिली में लिखने हेतु अन्यान्य लेखको को प्रेरित किया और मैथिली में अनेक कथाकारों और निबन्धकारों के जन्मदाता साबित हुए। मैथिली के प्रथम व्याकरनाचार्य और बाल साहित्यकार अगर बाबू भोलालाल दास को माना जाय तो कोइ अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह भी उन्ही की देन है कि मैथिली भारतीय सन्विधान की 8वी अनुसूची में स्थान प्राप्त कर सका।

उपन्यास और कहानी आधुनिक युग की प्रमुख देन है। इन क्षेत्रों में पहले अनुवाद अधिक हुए, जिनमें परमेश्वर झा के सार्मतिनी आख्यान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आरंभ्भ में रासबिहारीलाल दास, जनार्दन झा, भोला झा और पुण्यानंद झा की कृतियों प्रसिद्ध हुई। इधर आकर हरिमोहन झा ने 'कन्यादान' और 'द्विरागमन' में मैथिली उपन्यास को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। व्यंग्य, चामत्कारिक भाषा और सजीव चित्रण इनकी विशेषताएँ हैं। 'सरोज यात्री', 'व्यास', झा प्रभृति गत दशक के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। इन्होंने सामाजिक जीवन के निकटतम पहलुओं को दिखलाने की चेष्टा की है। 21 वीं सदी में गौरीनाथ का उपन्यास दाग खासा चर्चित रहा है।

'गल्पलेखकों में विद्यासिंधु', 'सरोज', 'किरण', 'भुवन' आदि उल्लेखनीय कलाकर (हरिमोहन झा हास्य रस की अत्यंत हृदयग्राही कहानियाँ लिखते हैं)। यंगानंद सिंह, नगेंद्रकुमार, मनमोहन, उमानाथ झा और उपेंद्रनाथ झा हमारे उच्च श्रेणी के कहानीकार हैं। रमाकर, शेखर, यात्री और अमर कल्पनाशील कहानियाँ लिखते हैं।

निबंध के स्वरूप आदि में देशोन्नति की भावना व्याप्त है। गंगानंद सिंह, भुवन जी, उमेंश मिश्र प्रभृति गंभीर लेख लिखते हैं। भाषा और साहित्य पर लिखनेवालों में दीनबंधु झा, डॉ. सुभद्र झा, गंगापति सिंह, नरेंद्रनाथ दास प्रभृति अग्रगझय हैं। दार्शनिक गद्य क्षेमधारी सिंह, डॉ. सर गंगानाथ झा आदि ने लिखा है।

आधुनिक मैथिली काव्य की दो मुख्य धाराएँ हैं, एक प्राचीनतावादी और दूसरी नवीनतावादी। प्राचीनतावादी कवि महाकाव्य, खंडकाव्य, परंपरागत गीतिकाव्य, मुक्तक काव्य आदि लिखते हैं। इनमें मुख्य कवि चंदा झा, रघुनंवदनदास, लालदास, बदरीनाथ झा, दत्तबंधु, गणनाथ झा, सीताराम झा, ऋद्धिनाथ झा और जीवन झा हैं। नवीन धारा में देशभक्ति का काव्य, आधुनिक गतिकाव्य, वर्णनात्मक और हास्यात्मक काव्य गिनाए जा सकते हैं। इनमें यदुवर और राधवाचार्य, भुवन, सुमन, मोहन और यात्री, एवं अमर तथा हरिमोहन झा उल्लेखनीय हैं।

मैथिली के गौरवर्पूण इतिहास में पद्य के साथ-साथ गद्य साहित्य का अनुपम योगदान है। यहाँ के ग्रामीणों में गोनु झा के चतुराई की कहानियाँ अत्यन्त लोकप्रिय है। यहाँ की भूमि देवस्पर्श की धनी है। यहाँ की भूमि राम सिया के पावन विवाह की साक्षी बनी। यहाँ इस विवाह से संबंधित लोक गीत अति लोकप्रिय हैं।

नाटक की पुरानी परंपराएँ समाप्त हो गई हैं और जीवन झा ने प्रचुर आधुनिक गद्य का समावेश कर नवीन नाटक की नींव डाली है। आनंद झा और ईशनाथ झा के नाटकों का स्थान आधुनिक काल में महत्वपूर्ण है। इधर एकांकी नाटकों का विशेष प्रचार हुआ है। इनके लेखकों में तंत्रनाथ झा और हरिमोहन झा के नाम प्रमुख हैं।

भोजपुरी

भोजपुरी शब्द का निर्माण बिहार का प्राचीन जिला भोजपुर के आधार पर पड़ा। जहाँ के राजा 'राजा भोज' ने इस जिले का नामकरण किया था।भाषाई

परिवार के स्तर पर भोजपुरी एक आर्य भाषा है और मुख्य रुप से पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी झारखण्ड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यावहारिक रूप से भोजपुरी हिन्दी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिये मुख्यत: संस्कृत एवं हिन्दी पर निर्भर है कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भोजपुरी जानने-समझने वालों का विस्तार विश्व के सभी महाद्वीपों पर है जिसका कारण ब्रिटिश राज के दौरान उत्तर भारत से अंग्रेजों द्वारा ले जाये गये मजदूर हैं जिनके वंशज अब जहाँ उनके पूर्वज गये थे वहीं बस गये हैं। इनमे सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो, फिजी आदि देश प्रमुख है। भारत के जनगणना (2001) आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है।

भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार राज्य के आरा (शाहाबाद) जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। पूर्ववर्ती आरा जिले के बक्सर सब-डिविजन (अब बक्सर अलग जिला है) में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है जिसमें 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' दो गाँव हैं। मध्य काल में इस स्थान को मध्य प्रदेश के उज्जैन से आए भोजवंशी परमार राजाओं ने बसाया था। उन्होंने अपनी इस राजधानी को अपने पूर्वज राजा भोज के नाम पर भोजपुर रखा था। इसी कारण इसके पास बोली जाने वाली भाषा का नाम 'भोजपुरी' पड़ गया।

भोजपुरी भाषा का इतिहास 7वीं सदी से शुरू होता है - 1000 से अधिक साल पुरानी! गुरु गोरख नाथ 1100 वर्ष में गोरख बानी लिखा था। संत कबीर दास (1297) का जन्मदिवस भोजपुरी दिवस के रूप में भारत में स्वीकार किया गया है और विश्व भोजपुरी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

मगही

मगही या मागधी भाषा भारत के मध्य पूर्व में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। इसका निकट का संबंध भोजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएँ एक ही साथ बिहारी भाषा के रूप में रख दी जाती हैं। इसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलनेवालों की संख्या (2002) लगभग 1 करोड़ 30 लाख है। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर, नालंदा, जहानाबाद, अरवल, नवादा और औरंगाबाद के इलाकों में बोली जाती है।

मगही का धार्मिक भाषा के रूप में भी पहचान है। कई जैन धर्मग्रंथ मगही भाषा में लिखे गए हैं। मुख्य रूप से वाचिक परंपरा के रूप में यह आज भी जीवित है। मगही का पहला महाकाव्य गौतम महाकवि योगेश द्वारा 1960-62 के बीच लिखा गया। दर्जनो पुरस्कारो से सम्मानित योगेश्वर प्रसाद सिंह योगेश आधुनिक मगही के सबसे लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। 23 अक्तुबर को उनकी जयन्ति मगही दिवस के रूप में मनाई जा रही है।

मगही भाषा में विशेष योगदान हेतु सन् 2002 में डॉ.रामप्रसाद सिंह को साहित्य अकादमी भाषा सम्मान दिया गया।

मगही संस्कृत भाषा से जन्मी हिन्द आर्य भाषा है।

अंगिका भाषा

अंगिका एक भाषा है, जो झारखण्ड के उत्तर पूर्वी भागों में बोली जाती है जिसमें गोड्डा, साहिबगंज, पाकुड़, दुमका, देवघर, कोडरमा, गिरिडीह जैसे जिले सम्मिलित हैं। यह भाषा बिहार के भी पूर्वी भाग में बोली जाती है जिसमें भागलपुर, मुंगेर, खगड़िया, बेगूसराय, पूर्णिया, कटिहार, अररिया आदि सम्मिलित हैं। यह नेपाल के तराई भाग में भी बोली जाती है। अंगिका भारतीय आर्य भाषा है।

अंगिका को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। इसे अंग भाषा के नाम से भी पुकारा जाता है। देवनागरी में 12 स्वर (सहित) और 49 व्यंजन होते हैं और एक अवग्रह् भी होते हैं, इसे बाएं से दायें ओर लिखा जाता है।

यदि हिन्दी और संस्कृत शब्दों की बात की जाये तो कुल 49 व्यंजन और 12 स्वर हैं, परन्तु अंगिका को अगर हिन्दी और संस्कृत से रहित देखा जाये तो वर्णों की स्थिति बिल्कुल अलग तरह से होगी।

अंगिका मुख्य रूप से प्राचीन अंग यानि भारत के उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिण बिहार, झारखंड, बंगाल, आसाम, उड़ीसा और नेपाल के तराई के इलाकों में बोली जानेवाली भाषा है। यह मैथिली की एक बोली के तौर पर जानी जाती है। इसका यह प्राचीन भाषा कम्बोडिया, वियतनाम, मलेशिया आदि देशों में भी प्राचीन समय से बोली जाती रही है। अंगिका भाषा आर्य-भाषा परिवार का सदस्य है और भाषाई तौर पर बांग्ला, असमिया, उड़िया और नेपाली, खमेर भाषा से इसका काफी निकट का संबंध है। प्राचीन अंगिका के विकास के शुरूआती दौर को प्राकृत और अपभ्रंश के विकास से जोड़ा जाता है। लगभग 1.5 से 2 करोड़

लोग अंगिका को मातृ-भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं और इसके प्रयोगकर्ता भारत के विभिन्न हिस्सों सहित विश्व के कई देशों में फैले हैं। भारत की अंगिका को साहित्यिक भाषा का दर्जा हासिल है। अंगिका साहित्य का अपना समृद्ध इतिहास रहा है और आठवीं शताब्दी के कवि सरह या सरहपा को अंगिका साहित्य में सबसे ऊँचा दर्जा प्राप्त है। सरहपा को हिन्दी एवं अंगिका का आदि कवि माना जाता है। भारत सरकार द्वारा अंगिका को जल्द ही भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया जाएगा। अब ये तो भविष्य ही बातयेगा की अंगिका को जोड़ा जाता है की नहीं।

अंगिका हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है। हिन्द-आर्य भाषाएँ वो भाषाएँ हैं, जो संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। उर्दू, कश्मीरी, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, रोमानी, मराठी, मैथिली, नेपाली जैसी भाषाएँ भी हिन्द-आर्य भाषाएँ हैं।

अंगिका शब्द अंग से बना है। अंगप्रदेश (वर्तमान में भागलपुर के आस-पास का क्षेत्र) में बोली जाने वाली भाषा को अंगिका नाम दिया गया। अंगिका को लोग छेछा के नाम से भी जानते हैं।

अंगिका भाषा में निर्मित पहली फिल्म खगड़िया वाली भौजी (फिल्म) 2007 को बिहार में प्रदर्शित किया गया। सुनील छैला बिहारी ने नई अंगिका फिल्म बनाने के बारे में सोच रहे हैं। वो जब बांका आये थे तो उन्होंने इस विषय पर दैनिक जागरण से बातचीत की थी। उन्होंने कहा था कि लोगो के समक्ष अंगिका के अश्लील चलचित्र और संगीत परोसा जा रहा है जिससे अंगिका की छवि खराब हो रही है। उन्होंने अश्लील संगीत बनाने वालों पर निशाना साधा था। एक नई फिल्म अंग पुत्र अप्रैल 2010 को प्रदर्शित हुई थी, जिसमें अंगिका के लोक गीत में माहिर सुनील छैला बिहारी जी ने मुख्य भूमिका निभाया था।

बज्जिका

बज्जिका मैथिली भाषा की उपभाषा है, जो कि बिहार के तिरहुत प्रमंडल में बोली जाती है। इसे अभी तक भाषा का दर्जा नहीं मिला है, मुख्य रूप से यह बोली ही है। भारत में 2001 की जनगणना के अनुसार इन जिलों के लगभग 1 करोड़ 15 लाख लोग बज्जिका बोलते हैं। नेपाल के रौतहट एवं सर्लाही जिला एवं उसके आस-पास के तराई क्षेत्रों में बसने वाले लोग भी बज्जिका बोलते हैं। वर्ष 2001 के जनगणना के अनुसार नेपाल में 2,38,000 लोग बज्जिका बोलते

हैं। उत्तर बिहार में बोली जाने वाली दो अन्य भाषाएँ भोजपुरी एवं मैथिली के बीच के क्षेत्रों में बज्जिका सेतु रुप में बोली जाती है।

बज्जिका की प्राचीनता एवं गरिमा वैशाली गणतंत्र के साथ जुड़ी हुई है साथ ही जो ऐतिहासिक स्थल के रूप में जानी जाती है और महावीर की जन्मस्थली और महात्मा बुद्ध की कर्मभूमि के रूप में भी विख्यात है। लगभग 500ई.पू. भारत में स्थापित वैशाली गणराज्य (महाजनपद) का राज्य-संचालन करने वाले अष्टकुलों- लिच्छवी, वृज्जी (वज्जि), ज्ञात्रिक, विदेह, उगरा, भोग, इक्ष्वांकु और कौरव- में सबसे प्रधान कुलों बज्जिकुल एवं लिच्छवी द्वारा प्रयोग की जाने वाली बोली बज्जिका कहलाने लगी। राजकाज के लिए उस समय संभवत: प्राकृत का इस्तेमाल होता था जबकि धार्मिक कृत्य संस्कृत में होते थे। बज्जिका के शब्दों का विस्तार इन दोनों स्त्रोतों से हुआ है। आजकल इसमें उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बढ़ गया है। यह हिन्द-यूरोपीय भाषा-परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के बिहारी भाषा समूह के अन्तर्गत वर्गीकृत है।

वर्तमान में बज्जिका का दर्जा हिंदी की लोकभाषा के रूप में है। राज्याश्रय का अभाव, विद्वानों के असहयोग एवं पर्याप्त साहित्य-भंडार के अभाव में बज्जिका की पहचान भाषा के रुप में नहीं बन सकी है। बज्जिका के समान ही बोली जानेवाली मैथिली को इस क्षेत्र के नेताओं के द्वारा किए गए प्रयासों के चलते अब भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कर आधिकारिक मान्यता दे दी गई है। किंतु मैथिली भाषी के विपरित स्थानीय समाज के संपन्न तबकों में बज्जिका को लेकर गौरव का अभाव है। स्थिति ऐसी है कि अगर कोई अन्य बिहारी भाषा बोलने वाला सामने मौजूद हो तो दो बज्जिका भाषी आपस में हिंदी में ही बात करते हैं। भाषा विज्ञान को लेकर शोध करने वाली कई संस्थाएँ तथा बेवसाईट ने इसे विलुप्तप्राय भाषा की श्रेणी में रखा गया है। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि भारत की भाषायी जनगणना 2001 में बज्जिका, अंगिका, कवारसी, दक्खिनी, कन्नौजी आदि बहुसंख्य बोलियों को हिंदी की श्रेणी से गायब कर दिया गया है। जबकि सूचिबद्ध कई बोलियाँ ऐसी है जिनकी संख्या बहुत कम और अनजान है।

उत्तर बिहार के महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र एवं बज्जिका क्षेत्र की हृदय स्थली मुजफ्फरपुर से कुछ बज्जिका पत्रिकाएँ निकलती हैं। बज्जिकांचल विकास पार्टी, स्वयंसेवी संस्थाएँ तथा इस क्षेत्र के कई भाषाविद बज्जिका के विकास के प्रति

समर्पित हैं। भारत में राज्यों का गठन भाषायी आधार पर हुआ था। असम, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र की तरह बिहार में भी भाषा के आधार पर बज्जिकांचल बनाने की मांग हो रही है। नेपाल में त्रिभुवन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो योगेन्द्र प्रसाद यादव जैसे लेखक बज्जिका को उसका महत्व दिलाने हेतु प्रयासरत हैं। नेपाल के बज्जिका भाषी क्षेत्र में कविता पाठ एवं लेख प्रतियोगिता का आयोजन होता रहता है। संभव है, प्राचीन बज्जिसंघ की लोकभाषा बज्जिका, भविष्य में विपुल साहित्य-भंडार से परिपूर्ण होकर एक भाषा के रुप में अपनी एक पहचान बना ले या ऐसी सरस भाषा की उपेक्षा राजनीतिक रंग ले ले।

7

भारत की राजभाषा नीति

किसी भी प्रजातांत्रिक देश में राजकाज की भाषा उसकी जनता की भाषा होती है। इस विशाल भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से 15 भाषाओं को संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दी गई है। संघ सरकार के राजकाज के कार्य तथा केंद्र एवं राज्यों के बीच संपर्क भाषा की भूमिका निभाने का उत्तरदायित्व हिन्दी को ही सौंपा गया, क्योंकि इसे भारत देश के अधिकांश लोग बोलते और समझते हैं तथा यह भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परंपराओं से जुड़ी हुई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार देवनागरी में लिखित हिन्दी संघ की राजभाषा है, लेकिन 343 (2) के अंतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि संविधान के लागू होने के समय से 15 वर्ष की अवधि तक, अर्थात् सन 1965 तक संघ के सभी सरकारी कार्यों के लिए पहले की भांति अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रहेगा। यह व्यवस्था इसलिए की गई थी कि इस बीच हिन्दी न जानने वाले हिन्दी सीख जायेंगे और हिन्दी भाषा को प्रशासनिक कार्यों के लिए सभी प्रकार से सक्षम बनाया जा सकेगा। उपर्युक्त 15 वर्षों की अवधि में भी, अर्थात् 1965 के पहले भी राष्ट्रपति आदेश द्वारा किसी काम के लिए अंग्रेजी के अलावा हिन्दी के प्रयोग की अनुमति दे सकते थे। अनुच्छेद 334 (3) में संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह 1965 के बाद भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के बारे में व्यवस्था कर सकती है। अनुच्छेद 344

में यह कहा गया कि संविधान प्रारंभ होने के 5 वर्षों के बाद और फिर उसके 10 वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग बनाएँगे, जो अन्य बातों के साथ-साथ संघ के सरकारी कामकाज में हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर प्रयोग के बारे में और संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर रोक लगाए जाने के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करेगा। आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए इस अनुच्छेद के खंड 4 के अनुसार 30 संसद सदस्यों की एक समिति के गठन की भी व्यवस्था की गई।

1950 में हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किए जाने पर यह अनुभव किया गया कि हिन्दी के माध्यम से प्रकाशन का कार्य चलाने के लिए कुछ प्रारंभिक तैयारियों की आवश्यकता पड़ेगी, जैसे- प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं विधि-शब्दावली का निर्माण, प्रशासनिक एवं विधि-साहित्य का हिन्दी में अनुवाद, अहिन्दी भाषी सरकारी कर्मचारियों का हिन्दी प्रशिक्षण और हिन्दी टाइपराइटरों एवं अन्य साधनों की व्यवस्था आदि।

शब्दावली निर्माण

शब्दावली निर्माण के लिए शिक्षा मंत्रालय ने 1950 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी बोर्ड की स्थापना की। इसके मार्गदर्शन में शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी विभाग ने तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य चालू किया। बाद में हिन्दी विभाग का विस्तार होते होते सन 1960 में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना हुई। इसके कुछ समय बाद 1961 में राष्ट्रपति के आदेशानुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की भी स्थापना की गई। निदेशालय तथा आयोग ने अब तक विज्ञान, मानविकी, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, कृषि तथा प्रशासन आदि के लगभग 4 लाख अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों के हिन्दी पर्याय प्रकाशित कर दिए हैं। इसी प्रकार राजभाषा (विधायी आयोग) तथा राजभाषा खंड ने विधि शब्दावली का निर्माण कार्य लगभग पूरा कर लिया है।

प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद

केंद्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के मैनुअलों, संहिताओं, फार्मों आदि का अनुवाद कार्य पहले शिक्षा मंत्रालय के केंद्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा किया जाता था। बाद में मार्च, 1971 में यह कार्य गृह मंत्रालय के अधीन स्थापित केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो को सौंपा गया। ब्यूरो ने निदेशालय द्वारा अनूदित साहित्य के

अतिरिक्त अब तक अनेक मैनुअलों/फार्मोंधनिपोर्टों आदि का अनुवाद करके विभिन्न मंत्रालयों को उपलब्ध करा दिया है। इस समय ब्यूरो मंत्रालयों/विभागों के अतिरिक्त अन्य सरकारी कार्यालयों/उपक्रमों आदि के मैनुअलों का भी अनुवाद कर रहा है। उसी प्रकार विधि मंत्रालय के राजभाषा खंड ने भी अब तक अधिकांश केंद्रीय अधिनियमों एवं नियमों आदि का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है और यह कार्य निरंतर चल रहा है।

हिन्दी शिक्षण योजना

केंद्रीय सरकार के हिन्दी न जानने वाले सरकारी कर्मचारियों के हिन्दी शिक्षण का कार्य शिक्षा मंत्रालय की देखरेख में 1952 में प्रारंभ हुआ था, किंतु बाद में लिए गए निर्णय के अनुसार अक्टूबर, 1955 से यह कार्य गृह मंत्रालय के तत्त्वावधान में हो रहा है। प्रारंभ में यह प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उन लोगों के लिए था, जो स्वेच्छा से हिन्दी पढ़ना चाहते थे। बाद में अप्रैल, 1960 में राष्ट्रपति के आदेश के अधीन हिन्दी का सेवा कालीन प्रशिक्षण उन सभी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया जो 1. जनवरी.1961 को 45 वर्ष के नहीं हुए थे। इसी प्रकार टंककों और आशुलिपिकों के लिए भी टाइपिंग और हिन्दी आशुलिपि का प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया। इस समय देश भर में हिन्दी, हिन्दी टाइपिंग तथा हिन्दी आशुलिपि प्रशिक्षण के लगभग 150 केंद्र चल रहे हैं।

उपर्युक्त प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दी के विकास एवं प्रसार में अच्छी प्रगति हुई है, किंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस प्रगति का जायजा लेने के लिए संविधान की धारा 344 के अनुसार 1955 में एक राजभाषा आयोग बनाया गया था, जिसने अपनी रिपोर्ट 1956 में प्रस्तुत की। उसकी सिफारिशों पर विचार करने के लिए 1957 में एक संसदीय समिति बनाई गई थी। इन दोनों की राय यह थी कि 1965 के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग चलते रहना चाहिए, तदनुसार 1963 में राजभाषा अधिनियम बनाया गया, जिसका 1967 में संशोधन किया गया। इसकी प्रमुख विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं-

राजभाषा के संबंध में सांवैधानिक व्यवस्थाएँ

अधिनियम की धारा 3 के अनुसार (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का

प्रयोग किया जा रहा था और (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए 26 जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।

केंद्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्रचार अंग्रेजी में होगा, बशर्ते उस राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग करना स्वीकार न किया हो। उसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्राचार करेंगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती हैं तो साथ-साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेंगी। पारस्परिक समझौते से यदि कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

केंद्रीय सरकार के कार्यालयों आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन जब तक संबंधित कार्यालयों, आदि के कर्मचारी हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त न कर लें, तब तक पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा।

राजकाज अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसार निम्नलिखित कागज-पत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है-

1. संकल्प,
2. सामान्य आदेश,
3. नियम,
4. अधिसूचनाएँ,
5. प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट,
6. प्रेस विज्ञप्तियाँ,
7. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट एवं सरकारी कागज-पत्र,
8. संविदाएँ,
9. करार,
10. सुनज्ञप्तियाँ,
11. अनुज्ञापन,
12 टेंडर नोटिस और
13. टेंडर फार्म।

धारा 3 (4) के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि यदि केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या

अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा में प्रवीण हो, तो अपना सरकारी कामकाज उसी भाषा में कर सकता है और केवल इस आधार पर कि वह दोनों भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित नहीं होना चाहिए।

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा अधिनियम की धारा 3 (5) के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारित न कर दे।

अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए अथवा पारित किसी निर्णय, डिक्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापि यदि कोई निर्णय, डिक्री या आदेश अंग्रेजी से भिन्न किसी भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ-साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी किया जायेगा। अब तक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार के राज्यपालों ने अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए राष्ट्रपति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति ली है।

राजभाषा अधिनियम पारित करने के साथ-साथ दिसम्बर 1967 में संसद के दोनों सदनों ने सरकार की भाषा नीति के संबंध में एक सरकारी संकल्प भी पारित किया। इस संकल्प के पैरा-1 के अनुसार केंद्रीय सरकार हिन्दी के प्रसार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए, उसके प्रयोग में तेजी लाने के लिए एक अधिक गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी। इसके अतिरिक्त इस संबंध में किये गए उपायों तथा उसमें हुई प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद के दोनों सदनोंके सभा पटल पर प्रस्तुत करेगी। सब 1968 से निरंतर वार्षिक कार्यक्रम बनाया जा रहा है, जिसमें केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों से अनुरोध किया जाता है कि हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए, उसके अनुसार कार्यवाई करे। अब तक इस प्रकार की 12 रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जा चुकी हैं और 13वीं रिपोर्ट मुद्रणाधीन है

इस प्रसंग में भी हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के संबंध में भारत के विभिन्न राज्यों के मनीषियों द्वारा किये गए प्रयासों का उल्लेख करना चाहूँगा, क्योंकि इस बात का महत्त्व तब तक हृदयंगम नहीं किया जा सकता, जब तक इस दिशा में किए गए अनवरत परिश्रम, उद्योग और निष्ठा पर विचार न किया जाए। स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों से ही भारत के राष्ट्रीय नेताओं और कर्णधारों ने यह अनुभव कर लिया था कि स्वतंत्रता प्राप्ति का तब तक कोई महत्त्व नहीं होगा, जब तक देश की अपनी कोई भाषा राष्ट्रभाषा न हो। प्रश्न यह था कि इस विशाल देश में जहाँ अनेक समृद्ध और प्राचीन भाषाएँ प्रचलित हों, वहाँ किस भाषा को राष्ट्रभाषा या राजभाषा का दर्जा दिया जाये। ऊपर से यह समस्या भले ही जटिल मालूम होती हो, किंतु सारे भारतवर्ष को एक सूत्र में पिरोने की कामना करने वाले और भारतीय स्तर पर समस्याओं का समाधान खोजने वाले सभी राष्ट्र नेता, चाहे वे किसी भी प्रदेश अथवा क्षेत्र के रहे हों, हृदय से इस तथ्य को स्वीकार करते थे कि हिन्दी ही ऐसी भाषा है, जिसे देश की राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा का गौरव प्रदान किया जा सकता है। भारत में अनेक प्राचीन भाषाएँ हैं। हर एक अपने आप में बहुत समृद्ध और देश का गौरव है। परंतु हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जिसका देश के अधिकांश भागों में प्रचलन है। हिन्दी भाषी क्षेत्र तथा इसके निकटवर्ती भागों में तो इसका प्रयोग आसानी से किया ही जाता है, पर इसके अतिरिक्त अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी यह भाषा आसानी से समझी और बोली जा सकती है। हिन्दी की इस व्यापकता और सरलता को देखते हुए सभी मनीषियों का ध्यान इसी की ओर आकृष्ट होता रहा और इसे राजभाषा बनाए जाने के लिए विचार व्यक्त किये जाते रहे।

इस सदी के दूसरे दशक में मराठी साहित्य परिषद ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया था और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, डाक्टर भंडारकर, राय बहादुर चिंतामणि विधायक वैद्य आदि मराठी चिंतकों ने हिन्दी को प्रबल समर्थन प्रदान किया था। हिन्दी की व्यापकता तथा लोकप्रियता को देखते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिन्दी में ही लिखा तथा अपने भाषण भी वे हिन्दी में ही दिया करते थे। हिन्दी के क्षेत्र में बापू का अंशदान तो सर्वविदित ही है। 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' गांधी जी के हिन्दी प्रेम और विश्वास का जीवंत उदाहरण है। इसके गठन के लिए उन्होंने अपने पुत्र श्री देवदास गांधी को मद्रास भेजा था। बंगाल के मनीषियों ने हिन्दी के सर्वव्यापक तथा देशव्यापी स्वरूप को परखा और समझा था। राजा राममोहन राय ने 1826

में प्रकाशित 'बंगदूत' में हिन्दी को स्थान दिया था। इसी प्रकार आचार्य केशवचंद्र सेन, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, जस्टिस शारदाचरण मित्र, सर गुरुदास चटर्जी, श्री रमेश चंद्र दत्त आदि प्रमुख चिंतकों ने हिन्दी के सर्वव्यापी स्वरूप को पहचान कर उसकी हिमायत की थी।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देश की स्वतंत्रता और उत्थान के लिए जहाँ अनेक रचनात्मक कार्यक्रम प्रारंभ किए वहीं उन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार और प्रयोग को भी अपने रचनात्मक कार्यक्रमों का अंग बनाया। इसके लिए उन्होंने तत्कालीन हिन्दी की संस्थाओं को सबल और सुदृढ़ बनाने का कार्य तो किया ही, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा जैसी संस्थाओं की भी स्थापना कराई और इनके माध्यम से अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में व्यापक रूप से हिन्दी के प्रचार का अभियान चलाया। उन्होंने देश में अनेक हिन्दी प्रचारक तैयार किये और उन्हें यह मंत्र दिया कि वे राष्ट्र की एकता और समृद्धि के लिए हिन्दी के शिक्षण, प्रचार और प्रसार का कार्य देश सेवा का कार्य समझ कर करें।

हिन्दी के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए महात्मा जी ने कहा था-

'मैं अपने देश के बच्चों के लिए जरूरी नहीं समझता कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर पर ढोएँ और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें।.....

उन्होंने कहा-

दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश को जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना तक नहीं कर सकते, क्योंकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मैं उसकी भयंकरता का अंदाजा लगा सकता हूँ, क्योंकि मैं निरंतर करोड़ों मूक, दलित और पीड़ित लोगों के संपर्क में आता रहता हूँ।

गांधी जी ने यह भी कहा था-

"अगर हमारे देश का स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए... है तो निस्संदेह अंग्रेजी ही राज्यभाषा हो ..... लेकिन अगर हमारे देश के करोड़ों भूखे मरने वालों, करोड़ों निरक्षर बहनों और दलित अंत्यजों का है और इन सबके लिए... है तो हमारे देश में हिन्दी ही एकमात्र राजभाषा है।"

बापू जी की धारणा थी कि किसी भाषा को राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा तभी बनाया जा सकता है, जब उसमें निम्नलिखित गुण विद्यमान हों-

1. उस भाषा को देश के अधिकांश निवासी बोलते हों।
2. वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो।
3. वह भाषा क्षणिक या अल्प स्थायी हितों के ऊपर निर्भर न हो।
4. उस भाषा के द्वारा देश के परस्पर धार्मिक और आर्थिक व्यवहार निभ सकें।
5. वह भाषा राज्य कर्मचारियों के लिए सरल हो।

उनकी दृष्टि में उपर्युक्त पाँचों गुण हिन्दी में विद्यमान रहे हैं। अत: उन्होंने हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा बनाए जाने का सतत प्रयास किया। वास्तव में स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में हिन्दी बोलना और हिन्दी का प्रयोग करना एक गौरव और प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी और यह राष्ट्रीय एकता की प्रतीक थी।

महात्मा गांधी तथा अन्य मनीषियों ने विदेशी भाषा के स्थान पर भारतीय भाषा की जो संकल्पना की थी वह संविधान निर्माताओं के मन को सदैव आंदोलित करती रही। संविधान सभा में इस विषय पर बहसें हुई और अंत में 14 सितम्बर, 1949 को यह फैसला हुआ कि राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को ही राजभाषा बनाया जाए और यह भी व्यवस्था की गई कि राज्यों की विधान सभाएँ अपने-अपने राज्य की एक या अधिक क्षेत्रीय भाषाओं को अथवा हिन्दी को अपनी राजभाषा बना सकती हैं। किंतु संविधान निर्माताओं ने उन लोगों की कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुए, जिन्हें पहले से हिन्दी का अच्छा ज्ञान नहीं था, यह भी व्यवस्था की कि संविधान के लागू होने के बाद 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा, ताकि इस बीच हिन्दी को प्रशासनिक कार्य के लिए पूरी तरह सक्षम बनाया जा सके और धीरे-धीरे इसका प्रयोग बढ़ाया जा सके।

राष्ट्रपति जी के विभिन्न आदेशों के अनुसार हिन्दी का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में धीरे-धीरे बढ़ने लगा। राष्ट्रपति जी ने 1956 में एक राजभाषा आयोग का गठन भी किया, जो राजभाषा के प्रगामी प्रयोग के विषय में सिफारिश कर सके। 30 सदस्यों की एक संसदीय समिति ने आयोग की सिफारिशों पर विचार किया और राष्ट्रपति के समक्ष अपनी राय प्रस्तुत की। इसके आधार पर राष्ट्रपति जी ने अप्रैल 1960 में हिन्दी के विकास तथा प्रगामी प्रयोग के लिए विस्तृत निदेश जारी किए। उसके बाद सघन रूप से राजभाषा के विषय में कार्रवाई बढ़ी। तब से प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकि विषयों की लगभग 4 लाख हिन्दी शब्दावली तैयार की गई हैं। इसके अतिरिक्त 35 हजार शब्दों के भी हिन्दी पर्याय तैयार किये गए हैं।

विभिन्न मंत्रालयों ने तथा उपक्रमों ने भी अपनी-अपनी विशेष शब्दावली बनाई है। अनुवाद का भी कार्य तेजी से शुरू हुआ।

परिणामस्वरूप अब हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में कार्य विधि साहित्य सुलभ हो गया है, जिसमें मैनुअल, संविदा तथा फार्म आदि शामिल हैं। हिन्दी भाषा में जिनको ज्ञान नहीं था, उनको भी प्रशिक्षित करने का क्रम प्रारंभ किया गया। अब तक साढ़े चार लाख अहिन्दी भाषी कर्मचारियों ने हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएँ पास की हैं। केंद्रीय सरकार के लगभग 50 मंत्रालयों और विभागों में 80 प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों को हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान प्राप्त हो गया है। इनमें से बहुत से अपने सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग करने लगे हैं। इसी प्रकार आशु लिपिकों और टाइपिस्टों को भी हिन्दी में काम का प्रशिक्षण दिया गया और लगभग 35 हजार कर्मचारियों ने हिन्दी आशुलिपि एवं हिन्दी टाइपिंग की परीक्षाएँ पास कर ली हैं। इसके अलावा बहुत से ऐसे लोग भी हैं, जो पहले ही से इस कला को जानते हैं। ये लोग भी हिन्दी में काम कर रहे हैं। इस प्रकार केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग करने के लिए आवश्यक आधार भूमि तैयार हो गई है और हिन्दी का प्रयोग भी उत्तरोत्तर किया जा रहा है।

संविधान में यह भी व्यवस्था की गई थी कि संसद यदि चाहे तो अधिनियम बनाकर 1965 के बाद भी अंग्रेजी के प्रयोग की व्यवस्था कर सकती है। तदनुसार संसद ने 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया, जिसके अनुसार संसद तथा संघ सरकार के सभी कामों के लिए हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी के भी चलते रहने की व्यवस्था की गई है। बाद में इस अधिनियम में कुछ और भी संशोधन किए गए और सरकार ने नियमावली भी बनाई। उनके अनुसार केंद्र के कुछ कार्यों में द्विभाषिकता की स्थिति शुरू हुई। यह जरूरी हो गया कि केंद्रीय कार्यालयों के कुछ प्रमुख दस्तावेज जैसे संकल्प, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचना, प्रेस विज्ञप्तियाँ, प्रशासनिक रिपोर्ट, करार, टेंडर आदि को हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में जारी किया जाए। कई और कामों में भी द्विभाषिकता अनिवार्य हो गई। केंद्र तथा हिन्दी भाषी राज्यों के बीच परस्पर हिन्दी में ही पत्र व्यवहार करने की व्यवस्था की गई है तथा जिन राज्यों ने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, उनके साथ अंग्रेजी में पत्र व्यवहार करने की भी व्यवस्था की गई है।

मेरे विचार से यह स्थिति जहाँ एक ओर गंभीर चुनौती है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर राजभाषा के सभी प्रेमियों को हिन्दी की सेवा के लिए पर्याप्त

अवसर प्रदान करती है। क्योंकि एक तरफ तो अंग्रेजी के अनिश्चित काल तक चलते रहने की व्यवस्था है तो दूसरी ओर अनेक कामों के लिए हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है तथा इसके प्रगामी प्रयोग की व्यवस्था है। फिर भी यह समझना भूल है कि केवल कानून द्वारा हिन्दी को राजभाषा घोषित कर देने से हिन्दी वास्तविक रूप से राजभाषा बन गई है और हमें अब और कुछ नहीं करना है। यह दूसरी भ्राँति होगी यदि हम समझते रहें कि इस संबंध में सभी उत्तरदायित्व केवल सरकार पर ही हैं। इसमें से प्रत्येक नागरिक को ऐसे उपाय करने हैं, जिससे अंग्रेजी अनिश्चित काल तक हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के मार्ग में अवरोध बनकर न रहने पाए। साथ ही हम सभी को दृढ़ संकल्प होकर समर्पण की भावना से हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार के कार्य में जुट जाना चाहिए।

भाषा सरकार और जनता के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होती है। सरकार की नीतियों को जनता तक पहुँचाने का यह एकमात्र माध्यम है और इन नीतियों को निष्ठापूर्वक प्रतिबिंबित करना ही उसका विशिष्ट दायित्व है। देश में गणतंत्र की जड़ें जितनी गहरी होती जा रही हैं, उतना ही प्रशासन साधारण जनता के निकट होता जा रहा है। अत: साधारण जनता में प्रशासन के प्रति आस्था उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासन का सारा कामकाज जनता की भाषा में हो, जिससे प्रशासन और जनता के बीच की खाई को प्रभावी ढंग से पाटा जा सके।

इस दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी तथा क्षेत्रीय स्तर पर हिन्दी अथवा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का विशेष महत्त्व और उनकी भूमिका है। जहाँ तक केंद्र का संबंध है, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष वार्षिक कार्यक्रम बनाकर उसके माध्यम से केंद्र के कार्यालयों में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। जनता के अधिक संपर्क में आने वाले 27 मंत्रालयों में हिन्दी सलाहकार समितियाँ बनाई गई हैं, जिनके अध्यक्ष मंत्रीगण होते हैं। इनमें संसद सदस्य, हिन्दी के विशिष्ट विद्वान् तथा मंत्रालय के वरिष्ठतम अधिकारी शामिल होते हैं। यांत्रिक साधनों द्वारा भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के प्रबंध किए जा रहे हैं। देवनागरी के सामान्य टाइप राइटरों के उत्पादन में तो वृद्धि हो ही रही है, साथ ही इलेक्ट्रॉनिक तथा इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटरों, टेलीप्रिंटरों, कम्प्यूटरों आदि के उत्पादन पर भी जोर दिया जा रहा है। इन सभी व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग में काफी वृद्धि हुई है।

यह प्रसन्नता की बात है कि विभिन्न मंत्रालयों और इसके कार्यालयों के अतिरिक्त सरकारी निगमों, निकायों तथा प्रतिष्ठानों आदि में हिन्दी का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। जनता से संपर्क रखने वाले, रेलवे, डाक-तार, रेडियो, दूरदर्शन, रक्षा जैसे बड़े-बड़े सरकारी विभागों एवं बैंकों तथा सरकारी उपक्रमों ने हिन्दी में कार्य करने में रुचि लेना प्रारंभ कर दिया है। इस संबंध में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाय नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसीय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रासय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागय केंद्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद, नई दिल्ली एवं देश भर में फैली इसकी विभिन्न शाखाओं ने तथा ऐसी ही अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं का प्रयास प्रशंसनीय है।

एक बात ध्यान देने योग्य है। प्रशासन के कामकाज में हिन्दी का प्रयोग प्रेम, प्रोत्साहन तथा प्रेरणा के आधार पर किया जाना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के अधिकांश लोगों की शिक्षा अपनी मातृभाषा अथवा अंग्रेजी के माध्यम से हुई है। अत: इस संबंध में किसी प्रकार का दबाव स्वयं हिन्दी के लिए अहितकर सिद्ध हो सकता है।

यह बात भी महत्त्व की है कि शासकीय कामकाज में प्रयुक्त हिन्दी सरल और समृद्ध होनी चाहिए। सरकारी परिपत्र, चिट्ठियों, टिप्पणी आदि की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे साधारण हिन्दी जानने वाला व्यक्ति भी सरलता से समझ सके। अंग्रेजी तथा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग करने से कतराना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे न केवल हिन्दी भाषा समृद्ध होगी, अपितु वह अन्य प्रादेशिक भाषाओं के अधिकाधिक समीप हो सकेगी, जो भावात्मक एकता की पुष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

समग्रता से देखा जाए तो यह कार्य बहुत बड़ा है और 36 वर्षों की आजादी के बाद भी हमारा लक्ष्य काफी दूर है। परंतु निष्ठा, प्रेम व सदभावना के साथ आगे बढ़ने पर सफलता अवश्य मिलेगी। इसी में राष्ट्र का गौरव, सम्मान और व्यक्तित्त्व निहित है।

संघ की राजभाषा

अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा के संबंध में जो कहा गया है, उसका सार यह है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष के लिए सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के प्रयोग के विषय में उस अनुच्छेद के खंड 2 में तथा उस कालावधि के पश्चात् अंग्रेजी भाषा

के प्रयोग और अंकों के देवनागरी रूप के प्रयोग के विषय में उसी अनुच्छेद के खंड 3 में बताया गया है। खंड 1 में ही राजभाषा के संबंध में बताने के साथ-साथ भारतीय अंकों के अंतराष्ट्रीय रूप के प्रयोग के बारे में भी बताया गया है।

उपर्युक्त अनुच्छेद 343 के खंड 2 के अधीन राष्ट्रपति का एक आदेश 1952 में जारी किया गया, जिसमें राज्यों के राज्यपालों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति अधिपत्रों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त देवनागरी के अंकों के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया एवं 1955 में जारी किए गए राष्ट्रपति के एक और आदेश के अनुसार संघ के निम्नांकित राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया -

जनता के साथ पत्र व्यवहार

प्रशासनिक रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाएँ और संसद में प्रयुक्त की जाने वाली रिपोर्ट, सरकारी संकल्प और विधायी अधिनियम, जिन राज्य सरकारों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में अपना लिया है उनके साथ पत्र-व्यवहार

संधियाँ और करार

अन्य देशों की सरकारों और उनके दूतों और अंतराष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र व्यवहार, राजनीयिक तथा कौंसली अधिकारियों और अंतराष्ट्रीय संगठनों में भारत के प्रतिनिधियों को जारी किए जाने वाले औरचारिक कागज पत्र।

संघ की राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए अनुच्देद 351 में जो निर्देश दिया गया है, वह इस प्रकार है - "हिन्दी भाषा की प्रसार, वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक सांस्कृतिक के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में (अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भाषाएँ हैं- तेलुगू, पंजाबी, बंगला, मराठी, असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, मलयालम, संस्कृत, और हिन्दी)" उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप में शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए जहाँ आवश्यक या वांछित हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का

कर्तव्य होगा। हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बधरों के लिए संचार की भाषा के संबंध में निर्णय करने के लिए तथा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए अनुच्छेद 344 में एक आयोग गठित करने तथा तदनुसार आदेश जारी करने का अधिकार 'राजभाषा आयोग ' है। उसके तीस सदस्यों में बीस सदस्य लोकसभा के तथा दस सदस्य राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित हुए। उक्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राष्ट्रपति ने 1960 में एक आदेश जारी किया, जिसमें निम्नांकित महत्वपूर्ण बातें हैं

1. वैज्ञानिक तक तकनीकी शब्दावली के निर्माण के लिए शिक्षा मंत्रालय को एक स्थायी आयोग स्थापित करना चाहिए।

शिक्षा मंत्रालय सांविधिक नियमों, विनियमों और आदेशों के अतिरिक्त सभी मैन्युअलों तथा कार्य विधि साहित्य का अनुवाद अपने हाथ में ले ले और भाषा में एक रूपपता सुनिश्चित करने की आवश्यकता की दृष्टि से यह काम केवल एक ही अभिकरण को सौंपा जाए।

एक मानक विधि शब्दकोष बनाने, हिन्दी में विधि के पुनः अधिनियम और विधि शब्दावली के निर्माण के लिए विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कानून के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग स्थापित किया जाए।

तृतीय श्रेणी के नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक संस्थाओं के कर्मचारियों और कार्य प्रभारित कर्मचारियों को छोड़कर उन सभी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी का सेवाकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए जिनकी आयु दिनांक 1-1-61 को 45 वर्ष से कम हो। गृह मंत्रालय टंकणों और आशुलिपिकों को हिन्दी टंकण तथा आशुलेखन का प्रशिक्षण देने के लिए भी प्रबंध करें।

राष्ट्रपति के उपर्युक्त आदेश के तथा राजभाषा अधिनियम, 1963 जो 1967 में संशोधित हुआ और राजभाषा नियम, 1976 के अनुसार हिन्दी को संघ की राजभाषा के आसन पर पूर्णरूपेण आसीन करने का प्रयत्न किया जा रहा है यद्यपि इस प्रयत्न के सभी अंग समान रूप से प्रभावशील और फलकारी सिद्ध नहीं हुए हैं। तमिलनाडु जैसे अहिन्दी राज्य में हिन्दी विरोधी आंदोलन होने से तथा संसद में अहिन्दी भाषी सदस्यों द्वारा आग्रह होने से पंद्रह वर्ष की कालावधि के लिए अंग्रेजी को संघ की राजभाषा के रूप में पहले जो स्वीकार किया गया था,

वह 1965 के बाद भी जारी रखकर कालावधि की बात ही हटा दी गई अर्थात अनिश्चित काल के लिए संघ की राजभाषा वाला प्रश्न वैसा ही छोड़ दिया गया, इसलिए यह निश्चित नहीं है कि हिन्दी पूर्ण रूप से संघ की राजभाषा के रूप में सहराजभाषा के रूप में नहीं एकमात्र राजभाषा के रूप में कब प्रतिष्ठित होगी। संविधान निर्माताओं ने बहुत सोच समझकर संविधान के लागू होने से पंद्रह वर्ष की कालावधि तक अंग्रेजी के प्रयोग को स्वीकार करना कोई शुभकर बात नहीं कही जा सकती। जिस प्रकार संविधान निर्माताओं ने प्रारंभ में कालावधि निश्चित की थी उसी प्रकार अहिन्दी भाषाभाषियों को इस संबंध में आश्वासन कालावधि निश्चित करके दिया जा सकता था। वांछित होने पर कालावधि बाद में बढ़ाई जा सकती थी, जैसा कि अन्य मामलों में किया गया है। यह सर्वथा सत्य है कि संविधान के अनुच्छेद 344 के खंड 2 में राजभाषा आयोग द्वारा लोक सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों की सम्यक रक्षा की बात कही गई है। संपूर्ण देश के हित के विचार से, राजभाषा के निश्चय के विचार से अनिश्चित काल की संज्ञा भ्रमकारक सिद्ध होती है। इस कारण नई भाषा सीखने वालों के मन में एक प्रकार का ढीलापन और ताटस्थ्य भाव उत्पन्न हो जाता है तथा उस भाषा के लोगों के मन में भी विचित्र भावों की शबलता दृष्टिगोचर होने लगती है। आज दिन तो हम ये सब देख रहे हैं। यह मानते हुए भी कि हिन्दी के विकास के लिए अनेक योजनाएँ कार्यान्वित हो रही हैं, सरकारी कार्योलयों में उसकी बढ़ोत्तरी के प्रयन्त हो रहे हैं, तथा देश के नेता और गण्यमान व्यक्ति उसके संबंध में अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं। यह भी मानना पड़ेगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हिन्दी के प्रति जो निष्ठा थी, हिन्दी के प्रति जो प्रेम था, अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी सीखने के लिए जो अदम्य उत्साह था और हिन्दी का कार्यक्रम एक राष्ट्रीय कार्यक्रम समझकर उसमें प्रवृत होने की जो मनोभावना थी, वह आज नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जैसे कुछ लोग कहते थे कि हमारे समय में देश आजाद नहीं होगा, वैसे ही आज कुछ लोग, गई हिन्दी प्रेमी सेवक यह बताते हैं कि हमारे जीवनकाल में हिन्दी राजभाषा के आसन परपूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं होगी और यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रतिष्ठित होगी भी या नहीं। यह नैराश्य काअपस्वर नहीं है, बल्कि वस्तुस्थिति का अवलोकन है। ताप्या से सब कुछ मिलता सकता है, भाषा भी एक तपस्या है, उसके लिए कठोर तपस्या करनी पड़ेगी, राजभाषा हिन्दी के लिए की जाने वाली हमारी तपस्या व्यर्थ नहीं होगी, यह भावना भी कई लोगों के मन में है। जहाँ तक राजभाषा का सवाल

है, यह कहा जा सकता है कि हम लोग संधिकाल में हैं। अस्तु, सरकार के द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों के संबंध में विचार करने के पहले राजभाषा अधिनियम के संबंध में तथा अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में अंगीकृत कुछ महत्वपूर्ण बातों के विषय में विचार करें।

राजभाषा अधिनियम

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 तथा राजभाषा नियम, 1976 के अनुसार हिन्दी के राजभाषा पात्र निर्वहण की स्थिति का परिचय यत्किंचित् रूप में मिल जाता है। राजभाषा अधिनियम की धारा (1) में राज्यों की बीच पत्रादि की भाषा के संबंध में बताते हुए अंग्रेजी की स्थिति का जहाँ स्पष्ट कर दिया गया है, वहाँ यह भी बताया गया है कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को? जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा को प्रयोग बाध्यकर न होगा। हिन्दी को उसके लिए सर्वथा उपयुक्त स्थान देने की दृष्टि से यह उपबंध महत्वपूर्ण होते हुए भी यह नहीं का जा सकता कि अहिन्दी राज्य इसका समुचित उपयोग कर रहे हैं या निकट भविष्य में करेंगे। उक्त स्थिति में पहुँचने के लिए अहिन्दी राज्यों को और भी मानसिक तैयारी करनी पड़ती है। हाँ, स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं से इस दशा में यथोचित सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग किन किन संदर्भों में करना चाहिए, इसके संबंध में उपधारा (3) में बताया गया हैं –

संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं

संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज पत्रों के लिए एवं

केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या किसी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी नियम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा प्रारूपों के लिए। राजभाषा नियम, 1976 के उपनियम 6 में भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि 'अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही प्रयोग में लाई जायेगी और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह दायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार किए जातें हैं, निष्पादित किए जाते हैं या जारी किए जाते हैं। राजभाषा नियम 7 और 8 की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, जिसमें आवेदन, अभ्यावेदन आदि प्रस्तुत करने तथा टिप्पणी आदि लिखे जाने के संबंध में बताया गया हे। नियम 7 के तीन उपनियम यों हैं –

कर्मचारी कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है।

कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन जब भी हिन्दी में किया जाए या उसमें हिन्दी में हस्ताक्षर किए जाएँ तो उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा।

जब कोई कर्मचारी या बाँछा करता है कि सेवा विषयों में (जिसमें अनुशासनिक कार्यवाहियाँ सम्मिलित हैं) संबंधित कोई आदेश या सूचना जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो सह उसे बिना किसी अनुचित विलंब के उसी भाषा में दी जाएगी। टिप्पणी आदि के लेखन में हिन्दी के प्रयोग के विषय में नियम 8 में निर्दिष्ट किया गया है, यथा

कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पणी या कार्यवृत्त हिन्दी या अंग्रेजी में लिख सकता है या और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करें।

केंद्रीय सरकार का कर्मचारी, जिसे हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है, किसी हिन्दी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुंवाद की माँग तब के सिवाय नहीं कर सकता, जब दस्तावेज विधिय या तकनीकी प्रकृति का हो।

यदि ऐसा कोई प्रश्न उठता है कि अमुख दस्तावेज विधिक या कार्यालय के अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा।

केंद्रीय सरकार आदेश द्वारा ऐसा अधिसूचित कार्यालय विनिर्दिष्ट कर सकती है जहाँ टिप्पणी, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजन के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएँ, उन कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा। यह द्विभाषा प्रयोग की स्थिति केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों, कार्यालयों आदि में कामकाज संबंधी साहित्य-साम्रग्री पर भी वैसी ही है। नियम 11 में निर्दिष्ट किया गया है कि

केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में संबंधित सभी मैन्युअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया संबंधी साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में द्विभाषिक रूप में, यथास्थिति, मुद्रित किया जाएगा, साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।

केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए लिख गए मुद्रित या उत्कीर्ण सभी नामपट्ट, सूचनापट्ट पत्र शीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा स्टेशनरी की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में होगी। परंतु केन्द्री सरकार, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझती है तो साधारण या विशेष आदेश द्वारा केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्ही उपबंधों से छूट दे सकती है।

उपर्युक्त विवरण के साथ-साथ सन् 1968 में संसद में पारित संकल्प के कुछ अंशों पर भी ध्यान देना उपयोगी सिद्ध होगा। तदनुसार हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि और विकास के लिए अधिक गहन और व्यापक कार्यक्रम तैयार करने तथा उसे कार्यान्वित करने की बात स्वीकार कर दी गई है। कई कार्यक्रम संपन्न भी हो रहे हैं। अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भारतीय भाषाओं के देश की शैक्षिणिक तथा सांस्कृतिक उन्नति की दृष्टि से पूर्ण विकास हेतु वांछित सामूहिक उपाय किए जाने एवं त्रिभाषा सूत्र को कार्यान्वित करने की बात संकल्प में स्पष्ट कर दी गई है। यह वाक्य महत्वपूर्ण है कि 'हिन्दी भाषी क्षेत्रों में, हिन्दी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबंध किया जाना चाहिए। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि सैद्धांतिक रूप से यह वाक्य महत्वपूर्ण होते हुए भी व्यावहारिक रूप से इसकावह परिणाम नहीं हुआ जो होना चाहिए था। कई राज्यों ने त्रिभाषा सूत्र को ठीक प्रकार से कार्यान्वित नहीं किया और कुछ राज्यों ने तो उसको अस्वीकार भी कर दिया।

जिन राज्यों ने उसको स्वीकार किया, वहाँ अभी कुछ भ्रांतियाँ हुई। यह विचित्र बात भी देखने में आई समय के बाद राज्यों ने उसे स्वीकार किया, वहाँ की जनता ने कुछ समय बात उसका विरोध किया अथवा यह कहिए कि यह तर्क किया जाना कतिपय लोगों की दृष्टि में उचित प्रतीत हुआ कि त्रिभाषा सूत्र के बदले द्विभाषा सूत्र ही क्यों न अपनाएँ जैसा कि तमिलनाडु में हिन्दी विरोधी आन्दोलन के बाद त्रिभाषा सूत्र को छोड़कर द्विभाषा सूत्र को ही उपयुक्त मानकर स्वीकार किया गया। संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों की पूर्ण रक्षा करने का सरकार द्वारा आश्वासन तथा संसद में पारित संकल्प की निम्नांकित बातें भी सर्वथा उचित हैं

उन सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐस किसी सेवा अथवा पद के कर्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन के हेतु केवल अंग्रेजी अथवा हिन्दी दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने के हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिन्दी अथवा अंग्रेजी में किसी एक का ज्ञान अनिवार्यत: अपेक्षित होगा और परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंध पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केंद्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी। परंतु, व्यावहारिक दृष्टि से इस कारण राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में शैथिल्य भी स्वाभावत: आ गया है। नई पीढ़ी के लोगों के मन में भी (जहां तक अहिन्दी प्रदेशों का संदर्भ है) एक प्रकार की अनासक्ति के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। ऐसे लोगों का कहना है कि अंग्रेजी से जब काम चल सकता है तो हिन्दी की क्या जरूरत है? संघ की राजभाषा हमारे देश की ही भाषा होनी चाहिए, यह पुराना तर्क हे, अंग्रेजी को ही तदर्थ रूप में चालू रख सकते हैं। आज दिन अंग्रजी भी तो हमारे देश की ही भाषा है, परायी नहीं। शिक्षा के क्षेत्र में तथा सरकार की भाषा नीति में जब तक अपेक्षित कुछ परिवर्तन नहीं होते तब तक ऐसी विचारधारा को भी रोक नहीं सकते।

वर्तमान परिस्थिति में हिन्दी, अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाएँ समानान्तर रेखाओं के एक त्रिकोण के समान हैं। यत्र तत्र उन रेखाओं की लंबाई में अंतर भी दृष्टिगोचर हो तो कोई आश्चर्य नहीं। संघ की राजभाषा हिन्दी और अंग्रेजी के विचार के साथ-साथ राज्यों की राजभाषाओं के विषय में थोड़ा सविचार कर लेना इस कारण उपयुक्त ही है।

राज्यों की राजभाषाएँ

हमारे संविधान के अनुच्छेद 345, 346 और 347 में इस संबंध में बताया गया है – एक राज्य और दूसरे राज्य अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिए राजभाषा तथा राज्य के किसी जनसमुदाय की किसी भाषा को मान्यता प्रदान करने के संबंध में अनुच्छेद 346 और 347 में उपबंध किए गए हैं जब कि अनुच्छेद 345 में यह बताया गया है कि अनुच्देद 346 और 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा। परंतु जब तक राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा इससे अन्यथ उपबंधन करें तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजना के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग की जाती थी।

राज्यों की राजभाषाओं के आसन पर अब तक तत् प्रदेश की प्रादेशिक भाषाएँ प्रतिष्ठित हो जाती और उन भाषाओं के द्वारा राज्य की सभी कामकाज सभी स्तरों पर चलते तो भाषा संबंध कुछ समस्याएँ, जो आज दिखाई पड़ रही है, संभवतः अपने आप हल हो जाती। इस बात के लिए अब संतोष कर लेना पड़ेगा कि धीरे-धीरे प्रदेशिक भाषाओं को यथोचित स्थान देने के विषय में विचार हो रहा है। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित परीक्षा योजना में संघ की राजभाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का यथोचित स्थान और सम्मान देने का प्रयत्न किया गया है, यह सर्वथा श्लाघनीय है। तथापि उम्मीदवारों की जो संख्या है, उसके तुलनात्मक परिशीलन से यह बात विदित हो जाए कि भारतीय भाषाओं की वर्तमान प्रगति स्थिति कोई आकर्षक नहीं है और प्रतिशत की दृष्टि से इन भाषाओं में परीक्षा लिखने वालों की संख्या अत्यल्प है। हम सुदृढ़ प्रगति के चिह्न तब देख सकते हैं जबकि केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें शिक्षा क्षेत्र में तदर्थ रूप में वांछित प्रबंध और उपबंध करें।

संसद में प्रयोग होने वाली भाषा

संविधान के अनुच्छेद 120 (1) के अनुसार संसद में हिन्दी तथा अंग्रेजी में कार्य सम्पन्न किया जाएगा। उसके परंतुक में बताया गया है कि 'राज्यसभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष या ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति

किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।' उसी अनुच्छेद के खंड (2) में पंद्रह वर्ष की कालावधि के पश्चात् या अंग्रेजी में ये शब्द लुप्त करने की जो बात थी, वह तो राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 के अधीन 26 जनवरी 1965 के बाद लुप्त भी न करने की स्थिति में रह गई। अर्थात अंग्रेजी का प्रयोग पूर्ववत् जारी है। दूसरे शब्दों में अंग्रेजी की धाक वैसे ही जमी हुई है। इस संदर्भ में श्री शंकर दयाल सिंह की इन पंक्तियों का उद्धृत करना समीचीन होगा - 'संविधान द्वारा स्वीकृत 15 भाषओं में भी संसद में बोलने का अधिकार किसी भी सदस्य को है और उसके भाषण के हिन्दी तथा अंग्रजी में अनुवाद की व्यवस्था भी साथ-साथ 'इयरफोन' द्वारा उपलब्ध है। इस भांति संसद पटन पर किसी प्रकार की कोई रिपोर्ट, बिल कागज, टिप्पणी रखी जाएगी, तो यह आवश्यक है कि अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी उसकी प्रतियाँ रखनी होगी अन्यथा संसदीय कार्यसंहिता के प्रतिकूल माना जाएगा। अमूमन यही होता है। लेकिन यह सारी की सारी बातें एक शृंगार-साधन मात्र अथवा आँसू पोंछने के समान है। सिद्धांत और व्यवहार में वही फर्क होता है, जो किसी देहाती मेले-ठेले और दिल्ली में विशाल प्रगति मैदान में आयोजित मेले की बीच में अंतर होता है।' सारांश यह है कि राजभाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति शुद्ध और निष्ठा वांछित या अपेक्षित रूप में नहीं है।

कानून बनाने के लिए तथा उच्चतम और उच्च न्यायालयों आदि की भाषा संविधान के अनुच्छेन 348 (1) में यह बताया गया है कि जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें तब तक उच्चतक न्यायालय और उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियाँ अंग्रेजी में हों तथा अधिनियमों नियमों आदेशों, विधेयकों आदि का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में हों। उस अनुच्छेद के खंड (2) में यह उपबंध किया गया है कि राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से किसी राज्य का राज्यपाल हिन्दी या अन्य भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालयों में कार्यवाहियों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा। उसी अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन किसी भी राज्य का विधान मंडल राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश या किसी आदेश, नियम, अधिनियम आदि के प्रयोग के लिए अंग्रजी से किसी अन्य भाषा का प्रयोग विहित कर सकता है और उस राज्य के राजपत्र में प्रकाशित किया जाने वाला तत्सबंधी अंग्रेजी अनुवाद ही उसका प्राधिकृत पाठ माना जाएगा। लेकिन राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अनुसार उस राज्य का राज्यपाल प्राधिकार से,

राजपत्र में प्रकाशित हिन्दी अनुवाद को हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ माना जाएगा। उसी अधिनियम की धारा 7 के अनुसार उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा के वैकल्पिक प्रयोग को, अंग्रेजी अनुवाद के साथ स्वीकार किया गया है।

आचरण पक्ष

उपर्युक्त उपबंधों के अतिरिक्त कपितय सरकारी संकल्प भी ऐसे हैं जिनसे सरकार की भाषा संबंधी नीति का स्पष्टीकरण होता है। हर बात में सिद्धांत पक्ष और आचरण पक्ष ये दो पक्ष होते हैं। सरकार के जो उपबंध और संकल्प हैं, वे यदि सिद्धांत पक्ष के अंतर्गत तो उनका कार्यान्वयन आवारण पक्ष के अंतर्गत है। केंद्रीय सरकार ने विविध कार्यक्रमों के अनुष्ठान के द्वारा सिद्धांत पक्ष को आचरित करने का सही मार्ग अपनाया है। राजभाषा हिन्दी के विकास और प्रचार-प्रसार वृद्धि के लिए उसने प्रथम बार अखिल भारतीय स्तर पर सन् 1978 में राजभाषा सम्मेलन आयोजित किया था। सरकारी कामकाज तथा सरकारी उपक्रमों में ही नहीं, लोक सेवाओं और विधि के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के प्रयोग के संबंध में उक्त सम्मेलन में की गई सिफारिशों को कार्य रूप देने की सरकार की प्रवृत्ति हर्षदायक है। सरकार ने अनेक स्तरों पर भिन्न-भिन्न सलाहकार समितियों तथा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया है और राजभाषा हिन्दी के प्रगमी प्रयोग के लिए वह प्रयत्नशील है।

उसने यांत्रिक सुविधाएँ जेसै टाइपराइटर, टेलीप्रिंटर कंम्प्यूटर आदि उपलब्ध कराने के लिए कदम उठाए हैं। हाल ही में पिलानी के बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड साइंस के वैज्ञानिक ने 'सिद्धार्थ देव संगणक' नाम से देवनागरी कम्प्यूटर तैयार किया है। हिन्दी प्रशिक्षण संबंधी कई योजनाएं भी सरकार कार्यान्वित कर रही है और पुरस्कार आदि से कर्मचारियों को प्रोत्साहन भी दिया जा रहा है। केंद्रीय गृह मंत्रालय के अंतर्गत राजभाषा विभाग तथा अनुवाद ब्यूरो के द्वारा विशेष प्रगति के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं को, अहिन्दी प्रदेशों के हिन्दी लेखकों को क्रमशः अनुदान तथा पुरस्कार आदि देकर यथोचित प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह ध्यान देने की बात है कि स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं में साधन सीमित होते हुए भी विशेष गति से कार्य संपन्न होते हैं। सरकार की कुछ योजनाएँ उनके द्वारा जल्दी पूर्ण हो सकती हैं। आंध्र, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में हिन्दी अकादमी की संस्थापना से हिन्दी के प्रचार-प्रसार में

गतिशीलता आई हैं। अन्य अहिन्दी राज्यों में भी हिन्दी अकादमी की स्थापना होनी चाहिए।

राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए जहाँ बाह्य साधन सुविधाएँ वांछित हैं, वहाँ यह भी आवश्यक है कि आंतरिक अर्थात् मानसिक संसिद्धि का उचित मार्ग भी प्राप्त कर लिया जाए। इसके लिए सब प्रकार के संदेहों और भ्रमों का निवारण होना चाहिए। हिन्दी के राजभाषा पद पर पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो जाने से हिन्दी न जानने वालों अर्थात अहिन्दी भाषा-भाषियों को विशेष रूप से कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा तथा सरकार की सेवाओं में उनको समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा, यह संदेह कई लोगों के मन में है। यह स्वाभाविक भी है। इस प्रकार के संदेहों को निवृत्ति के लिए आवश्यक है कि लोकसभा, विधानसभा के लिए जिस प्रकार सदस्यों की संख्या राज्यों के अनुरूप निर्धारित की गई है और प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व हो रहा है, उसी प्रकार सरकार को सेवाओं के लिए उम्मीदवारों को चुनते समय प्रत्येक राज्य को तदनुरूप प्रतिनिधित्व दिया जाए और तत्संबंधी नियम आदि का निर्धारण किया जाए। इससे प्रत्येक राज्य आश्वस्त हो सकता है और हिन्दी की प्रतिष्ठा में सबका योगदान संतोषजनक रीति से प्राप्त हो सकता है।

राजभाषा अधिनियम, 1976

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए 1976 में राजभाषा नियम बनाया गया है। यह एक महत्वपूर्ण कदम था, जिससे हिन्दी के प्रयोग में काफी सहायता मिली है। इस नियम की महत्वपूर्ण व्यवस्थाएँ इस प्रकार है: (क) केंद्र सरकार के कार्यालयों के 'क' क्षेत्र के लिए राज्य व संघ राज्य क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश राज्य और संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली) को ऐसे राज्यों में स्थित किसी अन्य कार्यालय या व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्र आदि हिन्दी में भेजे जाएँगे। यदि किसी खास मामलें में कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा।(ख) केंद्र सरकार के कार्यालयों से 'ख' क्षेत्र के किसी राज्य व संघ राज्य क्षेत्र (पंजाब, गुजरात, और महाराष्ट्र तथा चंडीगढ़ और अंडमान निकोबार द्वीप समूह संघ राज्य क्षेत्र) के प्रशासनों को भेजे जाने वाले पत्र आदि सामान्यत: हिन्दी में भेजे जाएँगे। यदि ऐसा कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जह1

ाता है तो उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ भेजा जाएगा। इन राज्यों में रहने वाले किसी व्यक्ति को भेजे जाने वाले पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी, किसी भी मात्र में हो सकते हैं। (ग) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से 'ग' क्षेत्र के किसी राज्य व संघ राज्य क्षेत्र ('क' और 'ख' क्षेत्र में शामिल न होने वाले सभी राज्य और संघ राज्य क्षेत्र) के किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाएँगे। यदि ऐसा कोई पत्र हिन्दी में भेजा जाता है तो उसका अंग्रेजी अनुवाद साथ भेजा जाएगा। (घ) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्र व्यवहार हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकता है, किंतु केंद्र सरकार के किसी मंत्रालय-विभाग और 'क' क्षेत्र में स्थिति संबंद्ध और अधीनस्था कार्यालयों के बीच होने वाला पत्र व्यहार सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात में हिन्दी में होगा। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार कम से कम दो तिहाई पत्र व्यवहार हिन्दी में होना चाहिए। 'क' क्षेत्र में स्थित केंद्र सरकार के किन्दी दो कार्यालयों के बीच सभी पत्र व्यवहार हिन्दी में ही किए जाने का प्रावधान है। (ड.) हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में ही दिए जाएँगे।

हिन्दी में लेख या हिन्दी में इस्ताक्षर किए गए आवेदनों या अभ्यावेदनों के उत्तर भी हिन्दी में दिए जाएंगे। (च) राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाएगा और इसे सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति की होगी।(छ) केंद्रीय सरकार का कोई कर्मचारी फाइलों में हिन्दी या अंग्रेजी में टिप्पणी या मसौदे लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करें।(ज) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों में द्विभाषिक रूप में तैयार और प्रकाशित किए जाएँगे। सभी फार्मो और रजिस्टरों के शीर्ष, नामपट्ट, स्टेशनरी, आदि की अन्य मदें भी हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में होगी। (झ) प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह दायित्व होगा कि वह राजभाषा अधिनियम और उसके अधीन बने नियमों का समुचित रूप से अनुपालन सुनिश्चित करें।

राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों पर है। इस नीति के समन्वय का कार्य राजभाषा विभाग करता है। यह विभाग समन्वय के लिए वार्षिक कार्यक्रमों को जारी करने के अलावा

कई प्रकार की समितियों का गठन करके यह कार्य कर रहा है, जिनका विवरण इस प्रकार है:

(1) केंद्रीय हिन्दी समिति–हिन्दी के विकास और प्रसार तथा सरकारी कामकाज में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के संबंध में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे कार्यक्रमों का समन्वय करने और नीति संबंधी दिशा निर्देश देने वाली यह सर्वोच्च समिति है। प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में गठित इस समिति में केंद्रीय सरकार के 11 मंत्री तथा राज्य मंत्री, राज्यों के 8 मुख्यमंत्री, 7 संसद सदस्य तथा हिन्दी के 10 विशिष्ट विद्वान् शामिल है। राजभाषा विभाग के सचिव एवं भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार इसके सदस्य सचिव हैं।

(2) हिन्दी सलाहकार समितियाँ–सरकार का यह निर्णय है कि राजभाषा नीति का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने और इस संबंध में आवश्यक सलाह देने के लिए जनता के साथ अधिक संपर्क में आने वाले विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में हिन्दी सलाहकार संमितियाँ गठित की जाएँ। इस निर्णय के अनुसार 25 मंत्रालयों में उनके मंत्रियों की अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समितियों का गठन किया गया है, जिनमे संदस्यों तथा हिन्दी के विशिष्ट विद्वानों के अतिरिक्त मंत्रालय विशेष के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते हैं। वे अपने मंत्रालय में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के संबंध में आवश्यक विचार विर्मश करके निर्णय लेते हैं।

(3) राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ–केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों की संख्या (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को छोड़कर) 25 या इससे अधिक है, वहाँ राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाई गई हैं। मंत्रालयों व विभागों की राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के अध्यक्षों को मिला कर एक केंद्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति बनाई गई है, जो उसकी समस्याओं पर आंतरिक रूप से विचार करके उनका समाधान ढूँढ़ती है। 1976 में लिए गए एक निर्णय के अनुसार ऐसे 55 नगरों में भी, जहाँ 10 या इनसे अधिक केंद्रीय कार्यालय है, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है।

उपर्युक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों विभागों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ा है। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में कुल 423990 पत्र हिन्दी में प्राप्त हुए। इनमें से 233030 पत्रों का उत्तर हिन्दी में दिया गया तथा केवल 5088 पत्रों का उत्तर अंग्रेजी में। इसी अवधि में विभिन्न मंत्रालयों/विभागों

से 345899 पत्र मूल रूप से हिन्दी में भेजे गए। इसी प्रकार अधीनस्थ कार्यालयों में भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा हे। राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) के अनुसार सामान्य आदेश (जिनमें परिपत्र भी शामिल है) संकल्प, नियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट, प्रेस विज्ञप्तियाँ, संविदा, करार, अनुज्ञप्ति आदि द्विभाषी रूप में जारी किए जाने चाहिए। इस संबंध में राजभाषा विभाग की ओर से सभी मंत्रालयों व विभागों से यह कहा गया है कि वे उन्हें अनिवार्य रूप से द्विभाषी रूप में जारी करें। अधिकतर मंत्रालय व विभाग ऐसा ही कर रहे हैं। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में जारी होने वाले विभाग ऐसा ही कर रहे हैं। वर्ष 1981 की 3 तिमाहियों में जारी होने वाले इन कागज पत्रों की कुल संख्या 73341 थी। इनमें 61297 कागजपत्र द्विभाषी रूप में जारी हुए। इसके अतिरिक्त सभी मंत्रालयों व विभागों द्वारा हिन्दी में प्राप्त पत्रों के उत्तर प्रायः हिन्दी में दिए जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होगा कि राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास, प्रचार और प्रयोग में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किंतु अभी भी हम अपेक्षित लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके हैं। इसका कारण यह है कि जो सरकारी कर्मचारी हिन्दी जानते भी हैं, वे भी द्विभाषिक रूप में कार्य करने की छूट होने के कारण हिन्दी के बजाय अंग्रेजी में काम करना पसंद करते हैं, क्योंकि एक तो वे पहले से अंग्रेजी में काम करने के अभ्यस्त रहे हैं दूसरे हिन्दी में काम करने में वे कुछ हीनता अथवा संकोच का अनुभव करते हैं। यह हीनता और संकोच की भावना इस समय सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग करने के लिए अभी जितने यांत्रिक साधन और सुविधाएँ उपलब्ध है, वे हिन्दी में सुलभ नहीं है। इससे विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग अपेक्षित रूप में नहीं हो पा रहा है। अतः विभिन्न प्रकार के टाइपराइटरों, कंप्यूटरों आदि की अपेक्षित सुविधाएँ हिन्दी में सुलभ कराने के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। हिन्दी भाषी राज्य सरकारें भी, जहाँ अधिकांश कर्मचारी हिन्दी जानते हैं, अभी तक संपूर्ण कार्य हिन्दी में नहीं कर पा रही है। इससे अन्य राज्यों में हिन्दी का प्रयोग करने पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि राजभाषा अधिनियम एवं राजभाषा नियम के अनुसार अनेक कागज पत्रों एवं प्रकाशनों को द्विभाषिक रूप में अथवा केवल हिन्दी में जारी करना पड़ता है। किंतु सरकारी प्रेसों की हिन्दी की मुद्रण-क्षमता अभी भी

संतोषजनक नहीं है। इससे न तो हिन्दी के प्रकाशन समय पर निकल पाते हैं और न ही समुचित मात्र में हिन्दी का प्रयोग बढ़ पाता है। यह भी देखा गया है कि राजभाषा नीति के कार्यन्वयन के लिए अभी तक मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों आदि में समुचित हिन्दी स्टाफ की व्यवस्था नहीं हो पाई है। हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उपयुक्त वातावरण न होने की है। प्राय: सभी सही सोचते हैं कि उनके बजाय किसी और को हिन्दी में काम करना है। फिर भी, विविध प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दी का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागो, कार्यालयों, उपक्रमों आदि में वार्षिक कार्यक्रमों को पूरा करने का भरकस प्रयास किया जा रहा है। हिन्दी में सर्वाधिक काम करने वाले मंत्रालयों व विभागों को शील्ड देने की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में पर्याप्त काम करने वाले को आर्थिक प्रोत्साहन देने की योजना भी विचाराधीन है। राजभाषा विभाग अपने विभिन्न प्रकाशनों के माध्यम से राजभाषा नीति, राजभाषा अधिनियम तथा राजभाषा नियमों की जानकारी देने का पूरा प्रयास कर रहा हे। विभिन्न मंत्रालयों की हिन्दी सलाहकार समितियाँ तथा राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठा रही है। हिन्दी कार्यशालाओं के आयोजन से भी कर्मचारियों की झिझक दूर करके उन्हें हिन्दी में काम करने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि हिन्दी में काम करने का वातावरण बनाने के लिए हर संभव उपाय किए जा रहे हैं। यद्यपि हमारी मंजिल कुछ दूर अवश्य है, किंतु हम सब का सहयोग लेते हुए सशक्त और संतुलित कदमों से उसकी तरफ बढ़ रहे हैं। हमें आशा है, हम देर सवेर अपनी मंजिल तक अवश्य पहुँचेंगे।

सा.का.नि. 1052 –राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है।

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ

(क) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है।

(ख) इनका विस्तार, तमिलनाडु राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है।

(ग) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. परिभाषाएँ

इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो–

(क) 'अधिनियम' से राजभाषा अधिनियम, 1963 अभिप्रेत है,

(ख) 'केन्द्रीय सरकार के कार्यालय' के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है–

(ii) केन्द्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय,

(iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालयय और

(ग) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कम्पनी का कोई कार्यालय,

(ग) 'कर्मचारी' से केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है,

(घ) 'अधिसूचित कार्यालय' से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय, अभिप्रेत है,

(ड़) 'हिन्दी में प्रवीणता' से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है,

(च) 'क्षेत्र क' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(छ) 'क्षेत्र ख' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमन और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं,

(ज) 'क्षेत्र ग' से खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(झ) 'हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान' से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है।

3. राज्यों आदि और केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि

(1) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

(2) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से-(क) क्षेत्र 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा, परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य या संघ राज्य क्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिए आशयित पत्रादि संबद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जाएंगे,

(ख) क्षेत्र 'ख' के किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं।

(3) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'ग' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो)या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे।

(4) उप नियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र 'ग' में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' या 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं। परन्तु हिन्दी में पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे।

4. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि

(क) केन्द्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं,

(ख) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र 'क' में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करे,

(ग) क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगेय

(घ) क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं,

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे, जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करेय

(ङ) क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं,

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे,

परन्तु जहां ऐसे पत्रादि-

(i) क्षेत्र 'क' या क्षेत्र 'ख' किसी कार्यालय को संबोधित हैं, वहां यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा,

(ii) क्षेत्र 'ग' में किसी कार्यालय को संबोधित है, वहां उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेजा जाएगा,

परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

5. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर

नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे।

6. हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग

अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर

हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेजें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती हैं, निष्पादित की जाती हैं और जारी की जाती हैं।

7. आवेदन, अभ्यावेदन आदि

(1) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है।

(2) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो या उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा।

(3) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक विलम्ब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी।

8. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना

(1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत्त हिन्दी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे।

(2) केन्द्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है, अन्यथा नहीं।

(3) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा।

(4) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है, जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा, जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा।

9. हिन्दी में प्रवीणता

यदि किसी कर्मचारी ने–

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो, या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है,

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

10. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान

(1) (क) यदि किसी कर्मचारी ने-

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है, या

(ii) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी परीक्षा योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के सम्बन्ध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(3) केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं।

(4) केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे,

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा।

11. मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि

(1) केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।

(2) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्रारूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।

(3) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगीय

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है।

12. अनुपालन का उत्तरदायित्व

(1) केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह–

(i) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है,

(ii) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करे।

❐❐❐